VISIONIAS

130/-

भारतीय संविधान एवं शासन

भाग-1

क्रम संख्या	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	भारतीय संवैधानिक योजना की अन्य देशों के साथ तुलना	1-62
2.	ऐतिहासिक आधार, विकास, विशेषताएं, संशोधन, महत्वपूर्ण प्रावधान और बुनियादी संरचना	63-107
3.	संविधान की उद्देशिका	108-121
4.	संघ और उसका राज्य क्षेत्र	122-143
5.	नागरिकता	144-169
6.	मूल अधिकार	170-236
7.	मूल कर्त्तव्य	237-247

भारतीय संवैधानिक योजना की अन्य देशों के साथ तुलना

विषय सूची

1. परिचय 7

2. ब्रिटिश संविधान (British Constitution) 7

2.1. मुख्य विशेषताएँ 7

2.1.1. अलिखित (Unwritten) 7

2.1.2. क्रमिक विकास (Evolutionary) 7

2.1.3. लचीलापन (Flexibility) 7

2.1.4. एकात्मक बनाम संघीय विशेषताएँ (Unitary Vs Federal Features) 8

2.1.5. संसदीय कार्यकारी (Parliamentary Executive) 8

2.1.6. संसद की संप्रभुता (Sovereignty of Parliament) 9

2.1.7. परिपाटियों की भूमिका (Role of Conventions) 9

2.1.8. विधि का शासन (Rule of Law) 9

2.1.9. न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Independence Of Judiciary) 10

2.2. राज्य के अंग (Organs of the State) 10

2.2.1. कार्यपालिका (Executive) 10

2.2.1.1. **क्राउन:** राजा मृत है। राजा अमर रहे। (King is dead. Long live the King.) 10

2.2.1.2. राजतंत्र की प्रकृति (Nature of Monarchy) 11

2.2.1.3. ब्रिटिश प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् 12

2.2.1.3.1. ब्रिटेन का प्रधानमंत्री 12

2.2.1.3.2. प्रधानमंत्री समकक्षों में प्रथम होता है 12

2.2.1.3.3. प्रधानमंत्री विभिन्न तारों के बीच एक चन्द्रमा की भांति होता है (P.M. As Moon Among Stars) 13

2.2.1.4. ब्रिटिश और भारतीय प्रधानमंत्री के मध्य अंतर 13

2.2.1.5. प्रिवी काउंसिल 13

2.2.1.6. स्थायी सिविल सेवक/ब्रिटिश नौकरशाह 13

2.2.2. विधायिका (Legislature) 14

2.2.2.1. दो प्रणालियों के मध्य मौलिक अंतर 14

2.2.2.2. हाउस ऑफ लॉर्ड्स 14

2.2.2.2.1. हाउस ऑफ लॉर्ड्स और संयुक्त राज्य अमेरिका के सीनेट के मध्य तुलना 15

2.2.2.2.2. हाउस ऑफ लॉर्ड्स में सुधार 16

2.2.2.2.3. लंबित सुधार 16

2.2.2.3. हाउस ऑफ़ कॉमंस 16

2.2.2.4. भारतीय और अमेरिकी स्पीकर (अध्यक्ष) के साथ हाउस ऑफ कॉमंस के स्पीकर की स्थिति की तुलना 17

2.2.2.4.1. ब्रिटिश स्पीकर की विशेषताएँ 17

2.2.2.4.2. अमेरिका में स्पीकर (हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स का अध्यक्ष) 17

2.2.2.4.3. भारत में लोकसभा का अध्यक्ष 17

2.2.3. न्यायपालिका 17

2.2.3.1. भारतीय और ब्रिटिश न्यायपालिका के मध्य तुलना 18

2.4. उपर्युक्त तुलना का एक संक्षिप्त सारांश 18

2.4.1. ब्रिटिश संविधान 18

2.4.2. ब्रिटिश सम्राट और भारत के राष्ट्रपति के मध्य तुलना 19

2.4.3. ब्रिटिश सम्राट और अमेरिकी राष्ट्रपति के मध्य तुलना 19

3. संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान 19

3.1. प्रमुख विशेषताएँ 19

3.1.1. संविधान की प्रकृति 20

3.1.2. संघवाद की प्रकृति 20

3.1.3. सरकार का स्वरूप 21

3.2. राष्ट्रपति 21

3.2.1. अमेरिकी राष्ट्रपति पद के लिए अर्हता 21

3.2.2. राष्ट्रपति का निर्वाचन 22

3.2.3. संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का प्रकार्य 22

3.2.4. विधायी प्रस्ताव 23

3.2.5. शपथ और सेवानिवृत्ति की तिथि 23

3.2.6. प्राइमरीज (Primaries) 24

3.2.7. संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग 24

3.2.8. संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की कुछ शब्दावलियां 24

3.3. उप-राष्ट्रपति 25

3.3.1. उप-राष्ट्रपति का चुनाव 25

3.3.2. राष्ट्रपति के रूप में उप-राष्ट्रपति का कार्यकाल 25

3.3.3. संयुक्त राज्य अमेरिका के उप-राष्ट्रपति के प्रकार्य 25

3.4. अमेरिकी विधायिका/अमेरिकी कांग्रेस 25

3.4.1. हाउस ऑफ़ रिप्रजेन्टेटिव्स 25

3.4.2. सीनेट 26

3.5. संयुक्त राज्य अमेरिका में समिति प्रणाली (Committee System In USA) 26

3.6. केंद्रीय स्तर पर इन प्रतिनिधि निकायों की अवधि 26

3.6.1. संयुक्त राज्य अमेरिका 26

3.6.2. भारत 26

3.7. शक्ति के पृथक्करण का सिद्धांत और नियंत्रण एवं संतुलन की प्रणाली 26

3.7.1. संयुक्त राज्य अमेरिका 27

3.7.2. भारत 27

3.7.3. नियंत्रण एवं संतुलन 27

3.8. मूल अधिकार (Fundamental Rights) 28

3.9. विधायी शक्ति का वितरण (Distribution Of Legislative Power) 29

3.9.1. भारत 29
3.9.2. संयुक्त राज्य अमेरिका 30
3.10. आपात-काल और रिट का निलंबन 30
3.11. न्यायपालिका 30
3.12. संविधान का संशोधन 31
3.12.1. अमेरिकी संविधान में संशोधन 31
3.12.2. भारतीय संविधान में संशोधन 31
4. चीन का संविधान 31
4.1. चीन के संविधान की प्रमुख विशेषताएं (Salient Features Of The Constitution) 32
4.1.1. प्रस्तावना 32
4.1.2. संविधान की प्रकृति 32
4.1.3. आधारभूत सिद्धांत 32
4.1.4. एकात्मक प्रणाली 32
4.1.5. लोकतांत्रिक केंद्रवाद (Democratic Centralism) 33
4.1.6. एक दलीय प्रणाली (One Party System) 33
4.1.7. विधायिका (Legislature) 33
4.1.8. कार्यपालिका (Executive) 35
4.1.8.1. राज्य परिषद (स्टेट काउंसिल) 35
4.1.8.2. प्रधानमंत्री (Premier) 36
4.1.8.3. राष्ट्रपति 36
4.1.9. न्यायपालिका 36
4.1.10. केंद्रीय सैन्य आयोग (Central Military Commission) 37
4.1.11. अधिकार और कर्तव्य 37
4.1.12. चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (Communist Party of China) 37
4.1.12.1. विचारधारात्मक आधार (Ideological Foundations) 37
4.1.12.2. पार्टी संगठन 38
4.1.12.3. पोलित ब्यूरो 38
4.1.12.4. नेशनल कांग्रेस ऑफ़ कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ चाइना (NCCPC) 38
4.1.12.5. केंद्रीय समिति 38
4.1.12.6. अन्य दल और समूह 38
5. फ्रांसीसी संविधान (French Constitution) 39
5.1. भूमिका 39
5.2. राष्ट्रपति 39
5.2.1. राष्ट्रपति का हटाया जाना 40
5.2.2. राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियां 40
5.2.3. अमेरिका और फ्रांस के राष्ट्रपतियों का तुलनात्मक विश्लेषण 40
5.2.4. फ्रांस के राष्ट्रपति और ब्रिटिश प्रधानमंत्री का तुलनात्मक विश्लेषण 41

5.3. विधयिका (Legislature) 41
5.3.1. नेशनल असेंबली (National Assembly) 41
5.3.2. सीनेट (The Senate) 41
5.4. फ्रांसीसी संविधान की प्रमुख विशेषताएँ 42
5.5. संविधान का संशोधन 42
6. जर्मनी का संविधान (Germany's Constitution) 42
6.1. प्रमुख विशेषताएँ 42
6.1.1. चांसलर डेमोक्रेसी (Chancellor's Democracy) 42
6.1.2. कैबिनेट सिद्धांत (Cabinet Principle) 43
6.1.3. रचनात्मक अविश्वास प्रस्ताव (Constructive Vote of No-Confidence) 43
6.1.4. संसद 43
6.1.4.1. बुंदेस्टैग (The Bundestag) 43
6.1.4.2. बुंदेस्रत (The Bundesrat) 44
7. जापान का संविधान 45
8. कनाडा का संविधान 45
8.1. प्रमुख विशेषताएं 45
8.1.1. संवैधानिक राजतंत्र 45
8.1.2. संसदीय सरकार 46
8.1.3. संघवाद (Federalism) 47
8.1.4. न्यायपालिका 47
8.1.5. अधिकार 47
9. ऑस्ट्रेलिया का संविधान (Constitution of Australia) 48
9.1. प्रमुख विशेषताएं 48
9.1.1. शासन के प्रकार (Form of Government) 48
9.1.2. संविधान की प्रकृति 49
9.1.2.1 संशोधन की प्रक्रिया 49
9.1.3. संसद 49
9.1.4. निर्वाचन की प्रकृति 50
9.1.5. मतदान 50
9.1.6. सरकार के स्तरों के मध्य संबंध 50
10. स्विट्ज़रलैंड का संविधान 51
10.1. भारतीय संविधान से तुलना 51
10.2 प्रत्यक्ष लोकतंत्र की व्यवस्था 51
11. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएँ एवं तुलनात्मक अध्ययन 51
11.1. उद्देशिका 51

11.2. लिखित संविधान 52

11.3. नाममात्र का राज्य प्रमुख 52

11.4. मंत्रिमंडलीय प्रणाली (Cabinet System) 52

11.5. द्विसदनात्मक संसदीय व्यवस्था 52

11.6. निचले सदन के अधिक शक्तिशाली होने की अवधारणा 52

11.7. निम्न सदन का अध्यक्ष (Speaker in the Lower House) 53

11.8. न्यायपालिका 53

11.8.1. उच्चतम न्यायालय की संकल्पना 53

11.8.2. उच्चतम न्यायालय की कार्यप्रणाली 54

11.8.3. न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक पुनर्विलोकन 54

11.8.4. उच्चतम/उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को पद से हटाने की विधि 54

11.9. मूल अधिकार 55

11.9.1. आपातकाल के दौरान मूल अधिकारों का निलंबन 55

11.10. मूल कर्त्तव्य 55

11.11. संघीय व्यवस्था 56

11.11.1. सुदृढ़ केंद्र के साथ संघीय व्यवस्था 56

11.11.2. अमेरिकी संघवाद के साथ भारतीय संघवाद की तुलना 56

11.12. व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता 57

11.13. राज्य की नीति के निदेशक तत्व (DPSP) 58

11.14. राष्ट्रपति द्वारा संसद सदस्यों को मनोनीत करना 58

11.15. संविधान के प्रमुख उपबंधों के स्रोतों की सूची 58

12. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions) 59

1. परिचय

- भारत के संविधान के विभिन्न देशों के संविधान से तुलनात्मक अध्ययन के दौरान इस अध्याय में निम्नलिखित **दो प्रमुख पहलुओं** पर ध्यान केंद्रित किया गया है:
    - विभिन्न देशों के संविधान के संक्षिप्त ज्ञान, उनकी वर्तमान स्थिति और महत्व या इस तथ्य पर विचार करना कि भारतीय संविधान में उनसे अव्यक्त रूप से या स्पष्टतया क्या ग्रहण किया गया है; तथा
    - संविधान की विभिन्न विशेषताओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन {जैसे- मूल अधिकार, राज्य की नीति के निदेशक तत्व (DPSPs), संघवाद आदि}।

2. ब्रिटिश संविधान (British Constitution)

2.1. मुख्य विशेषताएँ

2.1.1. अलिखित (Unwritten)

- ब्रिटिश संविधान की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक इसका अलिखित होना है। यह कहना सम्यक् रूप से उचित है कि ऐसा कोई लिखित, नियमनिष्ठ और सुगठित दस्तावेज़ नहीं है जिसे ब्रिटिश संविधान जैसा कुछ कहा जा सकता है।
- इसका प्रमुख कारण यह है कि यह एक हजार वर्षों से अधिक की अवधि के दौरान निरंतर हुए विभिन्न समझौतों (Conventions) और राजनीतिक परंपराओं (Political traditions) पर आधारित है, जो किसी दस्तावेज़ में लिखित रूप में नहीं हैं। इस प्रकार यह उन लिखित संविधानों से भिन्न है, जो सामान्यतः एक संविधान सभा द्वारा निर्मित होते हैं।
- ब्रिटिश संविधान की तुलना में भारतीय संविधान विश्व का सबसे लंबा लिखित संविधान है।

2.1.2. क्रमिक विकास (Evolutionary)

- ब्रिटिश संविधान, क्रमिक विकास का एक उदाहरण है। इसे किसी संविधान सभा द्वारा कभी तैयार नहीं किया गया। यह एक हजार वर्ष से अधिक की अवधि के दौरान निरंतर विकसित हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि ब्रिटिश संविधान समझ एवं परिस्थिति की उपज है।
- इस विशेष पहलू के संदर्भ में भारतीय संविधान की इससे कुछ समानताएं एवं असमानताएं हैं। यह ब्रिटिश संविधान से उस सीमा तक भिन्न है कि यह एक लिखित दस्तावेज़ है और इसमें सभी प्रावधानों को बेहतर तरीके से परिभाषित किया गया है। परंतु, यह भी क्रमिक विकास के लिए खुला है। इसमें संशोधन के प्रावधान इस तरह शामिल हैं कि समय की मांग और समझ के अनुसार इसे विकसित किया जा सके।

2.1.3. लचीलापन (Flexibility)

- ब्रिटिश संविधान, लचीले संविधान का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। चूंकि यहाँ संवैधानिक कानून और साधारण कानून दोनों के साथ एक समान व्यवहार किया जाता है तथा उनके मध्य कोई विभेद नहीं किया जाता है, अतः इसके विभिन्न प्रावधानों को संसद के साधारण बहुमत (उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का 50%) के द्वारा पारित, संशोधित और निरसित किया जा सकता है। लचीलेपन के तत्व ने ब्रिटिश संविधान को अनुकूलन एवं सामंजस्य की विशेषता प्रदान की है। इस विलक्षणता ने इसे समय की मांग के अनुरूप विकसित होने में सक्षम बनाया है।

- इसके विपरीत, भारतीय संविधान में लचीलापन एवं कठोरता, दोनों का मिश्रण है। यह भारतीय संविधान की आधारभूत विचारधारा को बेहतर तरीके से प्रतिबिंबित करता है, जहाँ संप्रभुता, पंथनिरपेक्षता और गणतंत्र जैसी कुछ विशेषताओं को अनुल्लंघनीय माना गया है, लेकिन अन्य सभी मामलों में संविधान संशोधन करने के लिए अनुमति देता है।

2.1.4. एकात्मक बनाम संघीय विशेषताएँ (Unitary Vs Federal Features)

- ब्रिटिश संविधान, संघीय विशेषता के विपरीत एकात्मक विशेषता धारण करता है। सरकार की सभी शक्तियां ब्रिटिश संसद में निहित हैं, जो कि एक संप्रभु संस्था है। राज्य के कार्यकारी अंग संसद के अधीनस्थ हैं, प्रत्यायोजित शक्तियों का उपयोग करते हैं तथा इसके प्रति जवाबदेह हैं। वहाँ सिर्फ एक ही विधान-मंडल है। इंग्लैंड, स्कॉटलैंड, वेल्स आदि प्रशासनिक इकाइयां हैं और राजनीतिक रूप से स्वायत्त इकाइयां नहीं हैं।
- दूसरी तरफ, भारतीय संविधान संघीय विशेषताओं से युक्त है।

एकात्मक (Unitary)	संघात्मक (Federal)	अधिसंघ (Confederation)
सभी शक्तियां केंद्र में निहित होती हैं।	प्रांतीय सरकारें, संविधान से शक्तियां प्राप्त करती हैं।	कई इकाइयां एक साथ मिलकर राज्य का निर्माण करती हैं।
केंद्र सरकार, प्रांतीय सरकारों को शक्तियां प्रत्यायोजित करती है।		वास्तविक शक्तियां, इकाइयों में निहित होती हैं (अर्थात् एकात्मक के विपरीत)।
उदाहरण: **ब्रिटेन**	उदाहरण: **भारत**	उदाहरण: **यूरोपीय संघ, संयुक्त राज्य अमेरिका**

2.1.5. संसदीय कार्यकारी (Parliamentary Executive)

- यह ब्रिटिश और भारतीय संविधान के मध्य एक महत्वपूर्ण समानता है। (संसद की संप्रभुता के अतिरिक्त)
- ब्रिटेन में शासन की संसदीय प्रणाली (Parliamentary form of government) है। सम्राट, जो कि संप्रभु है, उसे सभी शक्तियों और अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। वास्तविक प्राधिकार मंत्रियों में निहित होते हैं, जो संसद में बहुमत प्राप्त दल से संबंधित होते हैं और जब तक उन्हें (संसद के प्रति) बहुमत प्राप्त होता है तब तक वे पद पर बने रहते हैं।
- प्रधानमंत्री और मंत्री अपने कृत्यों और नीतियों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रणाली में, शासन की राष्ट्रपतीय प्रणाली (Presidential form of government) की भांति कार्यपालिका और विधायिका को पृथक नहीं किया जाता है।

2.1.6. संसद की संप्रभुता (Sovereignty Of Parliament)

- संप्रभुता का अर्थ सर्वोच्च शक्ति है। ब्रिटिश संविधान की एक अति महत्वपूर्ण विशेषता ब्रिटिश संसद की संप्रभुता है (एक लिखित संविधान की अनुपस्थिति के बावजूद)।
- ब्रिटिश संसद, बंधन-मुक्त विधायन शक्ति से परिपूर्ण देश का एकमात्र विधायी निकाय है। यह किसी भी कानून का निर्माण, संशोधन या उसे निरसित कर सकती है।
- हालांकि, भारत के मामले में राज्य स्तर पर भी विधायिका उपस्थित हैं, फिर भी भारतीय संसद की कानून निर्माण की शक्ति मुख्यतः ब्रिटिश संसद के समान है।
- न्यायालयों को ब्रिटिश संसद द्वारा पारित कानूनों की वैधता पर प्रश्न करने (न्यायिक पुनर्विलोकन) की शक्ति नहीं है। ब्रिटिश संसद देश के साधारण कानून के समान अपने प्राधिकार का उपयोग संविधान में संशोधन के लिए कर सकती है। यह अवैध को वैध बना सकती है तथा वैध को अवैध बना सकती है।
- इस संदर्भ में भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट अंतर विद्यमान है। भारतीय न्यायपालिका की शक्ति निर्मित कानून की वैधता की जांच करने की है। इसके अतिरिक्त, 'मूल ढांचे' के सिद्धांत, कानून की वैधता के संबंध में प्रश्न करने के लिए भारतीय न्यायपालिका को शक्ति प्रदान करता है। इस तथ्य के आलोक में भारत का उच्चतम न्यायालय भारत के संविधान का सबसे बड़ा व्याख्याकार है।

2.1.7. परिपाटियों की भूमिका (Role Of Conventions)

- परिपाटी को संविधान के अलिखित सिद्धांतों (नियम) के रूप में जाना जाता है। ये संविधान को नम्यता प्रदान कर इसे संशोधित होने से संरक्षण प्रदान करती हैं।
- विश्व के अधिकांश संविधान कुछ परिपाटियों से युक्त हैं। ब्रिटिश संविधान के अलिखित चरित्र के लिए एक आवश्यक उपप्रमेय यह है कि ये परिपाटियाँ, ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उदाहरण के लिए, यद्यपि साम्राज्ञी के पास ब्रिटिश संसद द्वारा पारित कानून को अस्वीकृत करने का विशेषाधिकार है, लेकिन परिपाटी यह है कि वह ऐसा नहीं करती हैं और यह अपने आप में उस संविधान का एक सिद्धांत बन गया है।
- हालांकि, परिपाटियों की कानूनी स्थिति लिखित कानून के अधीनस्थ है।

2.1.8. विधि का शासन (Rule Of Law)

- ब्रिटिश संविधान की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता विधि का शासन है। संविधानवाद या सीमित सरकार, विधि के शासन का सार है। यह कार्यकारिणी की मनमानी कार्यवाही को नियंत्रित करता है। डायसी के अनुसार, ब्रिटेन में विधि के शासन के तीन सिद्धांत विद्यमान हैं:
    - मनमाने ढंग से गिरफ्तारी के विरुद्ध संरक्षण और स्वयं प्रतिवाद करने का अवसर।
    - **विधि के समक्ष समता (Equality before Law):** सभी व्यक्ति, अपनी स्थिति या पद से पृथक विधि के समक्ष समान हैं। प्रशासनिक कानून की अवधारणा विधि के समक्ष समता से भिन्न है, जो सरकारी कर्मचारियों के लिए विभिन्न प्रकार की उन्मुक्ति प्रदान करता है। ब्रिटेन में संविधान और मूल अधिकारों की अनुपस्थिति में न्यायपालिका इस विधि की रक्षा करती है। इसलिए इस प्रणाली को "सामान्य विधि का सिद्धांत" (Principle of Common Laws) कहा जाता है **{संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत (मेनका गांधी वाद के पश्चात्) में "नैसर्गिक विधि/कानून का सिद्धांत" (Principle of Natural Law)}**।

- ब्रिटेन में लोगों के अधिकारों की गारंटी न्यायपालिका द्वारा प्रदान की गई है। न्यायपालिका सामान्य विधि को मान्यता प्रदान करती है। इस प्रकार, ब्रिटेन में लोगों को **बिल ऑफ़ राइट्स या मौलिक अधिकारों** के अभाव में भी अधिकार प्राप्त हैं।

- हालांकि यह देखा गया है कि कई बार वास्तविक अर्थों में विधि के शासन का प्रचलन नहीं है। इसके लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं:
  - प्रशासनिक विधि का विकास;
  - प्रत्यायोजित विधान की वृद्धि;
  - आंतरिक एवं बाह्य आपातकाल; आदि।
- इन विकासक्रमों को 'नवीन स्वेच्छाचारिता' (New Despotism) का नाम दिया गया है।
- **नवीन स्वेच्छाचारिता (New Despotism):** इसे उस प्रचलित स्थिति के रूप में परिभाषित किया जाता है जहां लोकतांत्रिक व्यवस्था के अस्तित्व में होने के बावजूद, नौकरशाही को असाधारण शक्तियां प्राप्त हैं। यहीं कारण है कि नौकरशाहों के लिए प्राय: 'नवीन स्वेच्छाचारी' पद का प्रयोग किया जाता है, जो लोकतांत्रिक देश में भी असाधारण शक्ति का उपभोग करते हैं।

2.1.9. न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Independence Of Judiciary)

- ब्रिटेन में विधि का शासन इस प्रावधान से संरक्षित है कि न्यायाधीशों को केवल गंभीर दुर्व्यवहार के मामले में हीं पद से हटाया जा सकता है और इस हेतु संसद के दोनों सदनों की सहमति की आवश्यकता होती है। इसलिए, न्यायाधीश बिना किसी भय या पक्षपात के निर्णय देने में सक्षम हैं।
- भारत में भी इसे अपनाया गया है। यहाँ न्यायपालिका की स्वतंत्रता को संविधान में समाविष्ट किया गया है। (यह 'मूल ढांचे' के सिद्धांत की विशेषताओं में से एक है)

2.2. राज्य के अंग (Organs Of The State)

2.2.1. कार्यपालिका (Executive)

- ब्रिटेन में कार्यपालिका को **"क्राउन"** कहा जाता है। इससे पूर्व क्राउन, राजा का प्रतीक माना जाता था। अब राजा क्राउन का एक अंग मात्र है।
- एक संस्था के रूप में, क्राउन में निम्नलिखित शामिल होते हैं:
  - राजा,
  - प्रधानमंत्री,
  - मंत्रिपरिषद् (CoM),
  - स्थायी कार्यपालिका (सिविल सेवक), और
  - प्रिवी काउंसिल।

2.2.1.1. क्राउन: राजा मृत है। राजा अमर रहे। (King is dead. Long live the King.)

"ब्रिटेन में, प्रारंभ में सभी शक्तियां राजा में निहित थीं। बाद में, राजा से शक्तियों का हस्तांतरण प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाले मंत्रिपरिषद्, स्थायी कार्यपालिका, प्रिवी काउंसिल आदि संस्थाओं को कर दिया गया। वर्तमान में, क्राउन में ये सभी संस्थान शामिल हैं। इसलिए, कथन के पहले भाग में राजा का वर्णन एक व्यक्ति के रूप में किया गया है, जबकि दूसरे भाग में राजा या क्राउन का वर्णन एक संस्था के रूप में है।"

2.2.1.2. राजतंत्र की प्रकृति (Nature of Monarchy)

- ब्रिटेन में संवैधानिक राजतंत्र है और संवैधानिक राजतंत्र, लोकतंत्र से असंगत नहीं होता है। इसका कारण यह है कि संवैधानिक राजतंत्र में अनिवार्य रूप से राज्य प्रमुख के रूप में राजा की शक्तियों (वर्तमान में महारानी एलिजाबेथ-II) की प्रकृति औपचारिक प्रकार की होती हैं। इसमें वास्तविक शक्तियाँ संसद सदस्यों में निहित होती हैं जो सरकार का गठन करते हैं, लेकिन निरपवाद रूप से राजा द्वारा इस परिपाटी का पालन किया जाता है। अतः अब वास्तविक कार्यपालिका शक्ति हाउस ऑफ कॉमंस में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल या गठबंधन के नेता के पास होती है।
- वास्तविक शक्ति की कमी के बावजूद, समकालीन ब्रिटेन में राजशाही की अभी भी कई महत्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं। इसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं:
  - देश और विदेश में UK का प्रतिनिधित्व करना;
  - नागरिकता और पारिवारिक जीवन के मानकों को निर्धारित करना;
  - मतभेदों के बावजूद लोगों को एकजुट रखना;
  - सशस्त्र बलों की राजनिष्ठा;
  - ब्रिटिश परंपराओं की निरंतरता को बनाए रखना;
  - ईसाई धर्म संबंधी नैतिकता का संरक्षण; आदि।

इसके अतिरिक्त, निम्नलिखित पर भी विचार करना आवश्यक है:

- संसदीय प्रणाली में दो प्रमुखों की आवश्यकता होती है:
  - **प्रथम प्रमुख (फर्स्ट हेड)** वस्तुतः राज्य प्रमुख होता है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है और प्रशासन को निरंतरता प्रदान करता है; तथा
  - **द्वितीय प्रमुख (सेकंड हेड)** वस्तुतः सरकार का प्रमुख होता है। उसके पास वास्तविक शक्तियाँ होती हैं क्योंकि सदन को प्रधानमंत्री में विश्वास होता है। प्रधानमंत्री सदन का नेता होता है। वह सदन के बहुमत का प्रतिनिधित्व करता है।
- राजपद (kingship) की व्यवस्था वस्तुतः मनोवैज्ञानिक संतुष्टि का एक स्रोत है। यह कहा जाता है कि, "बकिंघम पैलेस में राजा की उपस्थिति से, ब्रिटेनवासी अपने घरों में चैन की नींद से सोते हैं"।
- राजा द्वारा संकटकालीन परिस्थितियों में अत्यधिक सहायता की जाती है। उन्हें सामान्यतः अत्यधिक अनुभव प्राप्त होता है और वे देश हित में बहुमूल्य सलाह दे सकते हैं।
- बजहॉट के अनुसार, राजा के पास निम्नलिखित तीन अधिकार हैं:
  - चेतावनी देने का अधिकार;
  - प्रोत्साहित करने का अधिकार; और
  - सूचित किए जाने का अधिकार।
- राजपद को समाप्त करने के लिए एक निर्वाचित प्रधान की आवश्यकता होगी। निर्वाचित प्रमुख, जिसके पास कोई वास्तविक शक्तियां नहीं होती हैं, स्वयं कुछ नयी समस्याएं उत्पन्न करेगा।
- इसके विपरीत, राजशाही का कोई प्रावधान भारतीय संविधान में मौजूद नहीं है। वास्तव में, राजा आदि जैसी पदवी को संविधान के अनुच्छेद 18 (मूल अधिकार) के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। इस प्रकार, यहाँ सभी भारतीय नागरिकों की समानता पर बल दिया गया है।

2.2.1.3. ब्रिटिश प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद्

- ब्रिटेन में मंत्रिमंडल (कैबिनेट) स्वरूप वाले सरकार का प्रावधान है। कैबिनेट वस्तुतः सरकार का एक बहुल या कॉलेजिएट रूप है। इसके अंतर्गत शक्ति किसी एक व्यक्ति में निहित न होकर संपूर्ण मंत्रिपरिषद् में निहित होती है। इसके पीछे सिद्धांत यह है कि "सभी मंत्री या तो सामूहिक रूप से सदन में बने रहते है या बहुमत न रहने पर उनके द्वारा सामूहिक रूप से त्यागपत्र दिया जाता है" ("All Ministers sink and swim together.")। यह निचले सदन के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व पर आधारित है।
- कैबिनेट की उत्पत्ति राजा को सलाह देने के लिए गठित प्रिवी काउंसिल से हुई है। कैबिनेट की भूमिका में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:
    - नीति को स्वीकृति प्रदान करना (प्रमुख नीति-निर्माण निकाय),
    - विवादों का समाधान,
    - प्रधानमंत्री को विवश करना,
    - एकीकृत सरकार,
    - संसदीय दल को एकीकृत करना, आदि।
- इसके अतिरिक्त, कैबिनेट, संसदीय प्रणाली में कानून निर्माण हेतु सर्वश्रेष्ठ निकाय के रूप में मौजूद होता है। यह उस दल/समूह से गठित होता है, जिसे सदन में बहुमत प्राप्त होता है। कैबिनेट की बैठक का आयोजन गुप्त रूप से किया जाता है।

2.2.1.3.1. ब्रिटेन का प्रधानमंत्री

प्रधानमंत्री की स्थिति

- प्रधानमंत्री, राज्य प्रमुख होता है (राज्य रूपी जहाज का कप्तान)।
- प्रधानमंत्री, मंत्रिमंडल का प्रमुख होता है।
- प्रधानमंत्री, सदन में बहुमत प्राप्त दल से संबंधित व्यक्ति होता है।
- वह राजा और कैबिनेट तथा राजा और संसद के बीच कड़ी का कार्य करता है।
- सदन का कार्यकाल प्रधानमंत्री पर निर्भर करता है। वह सदन को भंग करने की सलाह भी दे सकता है।
- अन्य मंत्री, प्रधानमंत्री की सलाह पर नियुक्त किए जाते हैं।
- मंत्रियों का कार्यकाल भी प्रधानमंत्री पर निर्भर करता है।

2.2.1.3.2. प्रधानमंत्री समकक्षों में प्रथम होता है

- इसे *Primus Inter Pares* अथवा *Inter Stella Luna Minores* भी कहा जाता है। यह अन्य मंत्रियों के संबंध में प्रधानमंत्री की स्थिति को व्यक्त करता है। कैबिनेट प्रणाली में सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत लागू होता है; इसलिए प्रधानमंत्री के साथ-साथ अन्य मंत्री भी महत्वपूर्ण होते हैं।
- संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों की सापेक्षिक स्थिति की तुलना राष्ट्रपतीय प्रणाली में राष्ट्रपति और उसके सचिव की सापेक्षिक स्थिति से की जा सकती है।
- राष्ट्रपतीय प्रणाली (Presidential system) में, मंत्रिमंडल के सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा चुना जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, **स्पॉइल्स सिस्टम (spoils system)** मौजूद है। अमेरिका में सचिव, कांग्रेस के सदस्य नहीं होते हैं।

- संसदीय प्रणाली में मंत्री किसी भी सदन के सदस्य हो सकते हैं। प्रधानमंत्री उनके साथ अपने अधीनस्थ के रूप में व्यवहार नहीं कर सकता है। सैद्धांतिक रूप से, प्रधानमंत्री को स्वयं को अपने समकक्षों में प्रथम मानना चाहिए तथा मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों को सम्मान देना चाहिए और उनके साथ विचार-विमर्श कर निर्णय लेने चाहिए।
- हालांकि, व्यवहार में प्रधानमंत्री की स्थिति सर्वोच्च होती है क्योंकि:
    - उसे ही सर्वप्रथम नियुक्त किया जाता है तथा वह हाउस ऑफ कॉमंस का नेता होता है।
    - अन्य मंत्रियों को उसकी सलाह पर नियुक्त किया जाता है।
    - अन्य मंत्रियों को उसकी सलाह पर हटाया जा सकता है।

2.2.1.3.3. प्रधानमंत्री विभिन्न तारों के बीच एक चन्द्रमा की भांति होता है (P.M. As Moon Among Stars)

- यह कथन प्रधानमंत्री की अधिक वास्तविक स्थिति को प्रस्तुत करता है। व्यवहार में, प्रधानमंत्री को विशिष्टता प्राप्त होती है और वह केवल समकक्षों के मध्य प्रथम नहीं होता है। औपचारिक और अनौपचारिक दोनों कारक इसके लिए उत्तरदायी हैं।
    - **औपचारिक कारक:** वह संसद और राजा के बीच की कड़ी है और उसकी सलाह पर मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है अथवा उन्हें हटाया जाता है।
    - **अनौपचारिक कारक:** व्यक्तित्व कारक, उसके दल की स्थिति, बाह्य/आंतरिक आपातकाल जैसी स्थिति।

2.2.1.4. ब्रिटिश और भारतीय प्रधानमंत्री के मध्य अंतर

- भारतीय प्रधानमंत्री की संवैधानिक स्थिति एक अंतर के साथ ब्रिटिश प्रधानमंत्री के समान है। भारत में, प्रधानमंत्री संसद के किसी भी सदन (अर्थात् लोकसभा या राज्यसभा) का सदस्य हो सकता है। हालांकि, ब्रिटेन में ऐसा नहीं है। ब्रिटेन में एक परंपरा है कि प्रधानमंत्री सदैव केवल निचले सदन (हाउस ऑफ कॉमंस) का सदस्य होगा।

2.2.1.5. प्रिवी काउंसिल

- यह राजा के सलाहकारी निकायों में से एक होता था, परंतु वर्तमान में यह कैबिनेट के उद्भव के कारण अपनी प्रासंगिकता खो चुका है। वर्तमान में कैबिनेट के निर्णय ही प्रिवी काउंसिल के निर्णय होते हैं। इनकी ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय आदि के संबंध में कुछ पर्यवेक्षी भूमिका है। यह एडमिरल्टी मामलों में अपीलीय अदालत के साथ-साथ चर्च से संबंधित विवादों के समाधान में भी कुछ भूमिका निभाती है।

2.2.1.6. स्थायी सिविल सेवक/ब्रिटिश नौकरशाह

- भारतीय नौकरशाही, ब्रिटिश नौकरशाही प्रणाली के काफी समरूप है।
- प्रमुख विशेषताएँ:
    - ब्रिटेन में नौकरशाही सामान्यज्ञ (generalist) है।
    - नौकरशाहों से राजनीतिक रूप से तटस्थ रहने की अपेक्षा की जाती है।
    - प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से भर्ती।
    - कई उन्मुक्तियां प्राप्त।
    - यह माना जाता है कि ब्रिटिश नौकरशाही प्रतिनिधिवादी नहीं है। यह अभी भी संभ्रांतवादी है।
    - नौकरशाहों को नवीन स्वेच्छाचारी (New Despots) के रूप में जाना जाता है।
    - यह कहा जाता है कि नौकरशाही, मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्वों के तहत कार्य करती है।
    - इसकी तुलना फ्रेंकस्टीन के राक्षस से की गई है (मंत्रियों की अत्यधिक शक्तिशाली स्थिति)।

2.2.2. विधायिका (Legislature)

2.2.2.1. दो प्रणालियों के मध्य मौलिक अंतर

- स्वाभाविक रूप से ब्रिटिश संसद के साथ भारतीय संसद की तुलना की जाती रही है। लेकिन हमारी संसद तथा संसदीय संस्थाएं और प्रक्रियाएं, वेस्टमिंस्टर प्रणाली का केवल एक प्रतिरूप नहीं हैं। उनकी प्रणाली और हमारी प्रणाली के मध्य मौलिक अंतर हैं।
- ब्रिटिश संसद का विकास लगभग तीन सौ वर्षों के दौरान हुआ है। ब्रिटेन में संसद संप्रभु शक्तियों का उपयोग करने वाली एकमात्र संस्था है क्योंकि वहाँ कोई लिखित संविधान नहीं है।
- दूसरी तरफ, भारत में लिखित संविधान है। यहाँ सरकार के सभी अंग और प्रत्येक प्राधिकारी की शक्तियां व प्राधिकार संवैधानिक दस्तावेजों द्वारा परिभाषित और सीमांकित हैं।
- संसद की शक्तियां भी स्वयं संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से परिभाषित और सीमांकित की गयी हैं। हालांकि, संसद अपने ही क्षेत्र के भीतर सर्वोच्च है। इसके अतिरिक्त, संसद लोगों की प्रतिनिधि संस्था है। लेकिन यह ब्रिटिश संसद के समान संप्रभु नहीं है जो कुछ भी कर सकती है या पूर्ववत स्थिति को स्थापित कर सकती है। उल्लेखनीय है कि संवैधानिक संप्रभुता के अर्थ में ब्रिटिश संसद की शक्तियां किसी संवैधानिक दस्तावेज के द्वारा सीमित नहीं हैं।
- वहीं हमारा संविधान व्यक्ति को मूल अधिकार प्रदान करता है। इन्हें निषेधात्मक अधिकार भी कहा जाता है और ये न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय (न्यायोचित) हैं। संसद द्वारा पारित कोई भी कानून जो किसी भी मूल अधिकार को न्यून करते हैं, उसे न्यायालयों द्वारा अधिकारातीत घोषित किया जा सकता है।
- न्यायालय द्वारा विवादों पर निर्णय दिए जाते हैं और इस क्रम में वे संविधान और कानूनों की व्याख्या कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, संसद को संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं और कुछ सीमाओं के भीतर यह संविधान में उपयुक्त संशोधन कर सकती है।
- ब्रिटिश संसद द्विसदनीय है, यथा- हाउस ऑफ लॉर्ड्स (संख्या निर्धारित नहीं) और हाउस ऑफ कॉमंस (650 सदस्य)। हाउस ऑफ लॉर्ड्स में वंशानुगत सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त, हाउस ऑफ लॉर्ड्स में सर्वाधिक संख्या में लाइफ पियर्स, चर्च/रिलीजियस पियर्स (चर्च संबंधी पियर्स) और लॉ लॉर्ड्स हैं।

2.2.2.2. हाउस ऑफ लॉर्ड्स

- हाउस ऑफ लॉर्ड्स वस्तुतः यूनाइटेड किंगडम के द्विसदनात्मक संसद का दूसरा चैम्बर या उच्च सदन है। वर्तमान समय में इसमें लगभग 800 सदस्य हैं।
- यूनाइटेड किंगडम की संसद का गठन हाउस ऑफ कॉमंस, हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स और क्राउन से मिलकर हुआ है। हाउस ऑफ लॉर्ड्स में निम्नलिखित प्रकार के सदस्य होते हैं:
    - **लाइफ पियर्स (Life peers):** इनकी संख्या (लगभग 700) सदन में सर्वाधिक है। इन्हें नियुक्त करने की शक्ति औपचारिक रूप से क्राउन के पास है, लेकिन सदस्यों को अनिवार्य रूप से प्रधानमंत्री की सलाह पर क्वीन (queen) द्वारा नियुक्त किया जाता है। लाइफ पियर्स की उपाधि मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाती है।
    - **बिशप (Bishops):** इंग्लैंड के चर्च के 26 वरिष्ठ बिशपों को सदन की सदस्यता प्रदान की गयी है। इसका कारण यह है कि इंग्लैंड के चर्च राज्य द्वारा 'स्थापित' चर्च हैं। जब ये बिशप चर्च से सेवानिवृत होते हैं, तो सदन से इनकी सदस्यता भी समाप्त हो जाती है।

- **निर्वाचित वंशानुगत पियर्स (Elected Hereditary peers):** हाउस ऑफ लॉर्ड्स अधिनियम, 1999 द्वारा वंशानुगत पियर्स के हाउस ऑफ लॉर्ड्स में उपस्थित होने और मतदान करने का अधिकार समाप्त कर दिया गया था। तब तक वहाँ लगभग 700 वंशानुगत पियर्स थे। परंतु इस विधेयक पर विचार की प्रक्रिया के दौरान ही एक संशोधन कर (लॉर्ड वेदरईल द्वारा प्रस्तावित वेदरईल संशोधन के रूप में प्रसिद्ध) मौजूदा वंशानुगत पियर्स में से 92 पियर्स को सदस्य बने रहने की अनुमति दी गयी।

- हाउस ऑफ लॉर्ड्स के सदस्य किसी संशोधन को प्रस्तावित कर सकते हैं या कोई संशोधन कर सकते हैं। हालांकि, हाउस ऑफ लॉर्ड्स की शक्तियां सीमित हैं; यदि यह किसी कानून के भाग का अनुमोदन नहीं करता है, तो इसके द्वारा कानून के पारित होने की अवधि को केवल एक वर्ष (धन विधेयक को अधिकतम एक माह) तक के लिए विलंबित किया जा सकता है। साथ ही, यह सुनिश्चित करने के लिए कठोर नियम विद्यमान हैं कि हाउस ऑफ कॉमंस की इच्छाओं और उस समय की सरकार के निर्णय का अनुपालन किया जाए।
- वास्तव में, हाउस ऑफ लॉर्ड्स को विश्व के सबसे कमजोर ऊपरी सदनों में से एक के रूप में चिह्नित किया जा सकता है। 1919 और 1949 के अधिनियम के पारित होने के उपरांत हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने सभी वास्तविक विधायी शक्तियों को खो दिया है। वर्तमान में यह केवल एक विलंबकारी सदन बन गया है। यह साधारण विधेयक के मामले में अधिकतम एक वर्ष की अवधि के लिए और धन विधेयक के मामले में अधिकतम एक महीने की अवधि के लिए विलंब कर सकता है।
- राज्यसभा की तुलना में, हाउस ऑफ लॉर्ड्स एक कमजोर सदन है। राज्यसभा के पास साधारण विधेयक के मामले में (हालांकि, संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान है लेकिन यह एक असाधारण उपकरण है) लोकसभा के समान अधिकार हैं।
- जहाँ तक संविधान संशोधन का प्रश्न है,राज्यसभा को लोकसभा के समान शक्तियां प्राप्त हैं। धन विधेयक के संबंध में राज्यसभा भी हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के समान विलंब करने वाला सदन है। राज्यसभा अधिकतम चौदह दिनों के लिए धन विधेयक को विलंबित कर सकता है। राज्यसभा के पास कुछ विशेष शक्तियां हैं, जो लोकसभा के पास नहीं हैं (उदाहरण के लिए: **अनुच्छेद 249 और अनुच्छेद 312)**।

2.2.2.2.1. हाउस ऑफ लॉर्ड्स और संयुक्त राज्य अमेरिका के सीनेट के मध्य तुलना

- सीनेट को शक्तिशाली ऊपरी सदन कहा जाता है। इसे साधारण विधेयक, संवैधानिक विधेयक और यहां तक कि धन विधेयक को पारित करने के संदर्भ में हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स के समान शक्तियाँ प्राप्त हैं। निचले सदन में धन विधेयक को प्रस्तुत करना प्रथागत है।
- सीनेट को कुछ विशेष शक्तियां भी प्राप्त हैं, जो हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स के लिए उपलब्ध नहीं है। उदाहरण के लिए, अंतर्राष्ट्रीय संधियों का अनुसमर्थन, उच्चतर नियुक्तियों का अनुसमर्थन इत्यादि।
- हाउस ऑफ लॉर्ड्स को पूर्व में एक विशेषाधिकार प्राप्त था कि यह ब्रिटेन में अपील का सर्वोच्च न्यायालय था। परंतु संवैधानिक सुधार अधिनियम, 2005 द्वारा सुप्रीम कोर्ट के सृजन के साथ (उच्चतम न्यायालय वर्ष 2009 में स्थापित) ही अब इसका अस्तित्व समाप्त हो गया।

2.2.2.2.2. हाउस ऑफ लॉर्ड्स में सुधार

* हाउस ऑफ लॉर्ड्स में लंबी अवधि से सुधार किए जा रहे हैं। कुछ प्रमुख किए गए सुधार निम्नलिखित हैं:
    * लाइफ पियर्स का समावेशन।
    * वंशानुगत पियर्स की संख्या को सीमित करना।
    * 1919 और 1949 के अधिनियम ने इसे एक विलंबकारी संस्था बना दिया है।
    * संवैधानिक सुधार अधिनियम, 2005 द्वारा अपील की सर्वोच्च न्यायालय के रूप में इसकी भूमिका को समाप्त कर दिया गया।
    * लॉर्ड चांसलर के स्थान पर अब यहाँ लार्ड स्पीकर द्वारा अध्यक्षता का प्रावधान किया गया है।

2.2.2.2.3. लंबित सुधार

* इसके नाम को परिवर्तित करना, क्योंकि यह अलोकतांत्रिक है।
* इसकी सदस्य संख्या को कम करना क्योंकि इसमें बड़ी संख्या में मनोनीत सदस्य हैं। प्रस्ताव है कि सदस्यों को निर्वाचित किया जाए।
* वंशानुगत पियर्स का दर्जा समाप्त करना।

2.2.2.3. हाउस ऑफ़ कॉमंस

* यह निचला सदन है, लेकिन सर्वाधिक अधिकार इसी के पास हैं। इसकी अध्यक्षता स्पीकर (अध्यक्ष) द्वारा की जाती है। अमेरिकी हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स के स्पीकर के विपरीत, यह पद गैर-राजनीतिक है और वास्तव में, परंपरा के अनुसार, विभिन्न राजनीतिक दल अध्यक्ष के संसदीय क्षेत्र में अपने उम्मीदवार खड़े नहीं करते।
* सदस्यों की संख्या समय-समय पर जनसंख्या परिवर्तन को प्रतिबिंबित करने हेतु परिवर्तित होती जाती है।
* वर्तमान परिवेश में, प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख होता है और सदैव बहुमत प्राप्त दल या हाउस ऑफ कॉमंस में गठबंधन वाले दल का सदस्य होता है। कैबिनेट में मुख्य रूप से हाउस ऑफ़ कॉमंस में बहुमत प्राप्त दल के सदस्य सम्मिलित होते हैं, हालांकि हाउस ऑफ लॉर्ड्स के सदस्यों ने भी कैबिनेट मंत्री के रूप में कार्य किया है। वास्तव में विगत कुछ वर्षों में यह देखने को मिला है कि, संसद से बाहर के किसी व्यक्ति को "लाइफ पियर्स" के रूप में नामित करना, निजी जीवन से किसी व्यक्ति को सरकार में सम्मिलित करने का एक माध्यम बन गया है।
* यद्यपि, प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख और एक सांसद होता है, तथापि वह सामान्यतः हाउस ऑफ कॉमंस का नेता नहीं होता है। हाउस ऑफ कॉमंस का नेता सरकार का एक सदस्य होता है तथा हाउस ऑफ कॉमंस के आंतरिक संचालन के मामलों में बहुमत दल का मुख्य प्रवक्ता होता है। सदन (हाउस ऑफ कॉमंस) के नेता का कार्यालय हाउस ऑफ़ कॉमंस के आगामी कार्यक्रम की घोषणा करता है।
* हाउस ऑफ कॉमंस में पार्टी संगठन (रिपब्लिकन कांफ्रेंस या डेमोक्रेटिक कॉकस के सदृश) नियमित रूप से नीतियों पर चर्चा करने के लिए बैठक करते हैं और एक निजी मंच पर मंत्रियों या छाया मंत्रिमंडल (shadow cabinet) के सदस्यों के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करने हेतु पार्टी के बैक बेंचर्स सदस्यों (जिन्हें सरकार में पद प्राप्त नहीं होता है) को एक अवसर प्रदान करते हैं।

2.2.2.4. भारतीय और अमेरिकी स्पीकर (अध्यक्ष) के साथ हाउस ऑफ कॉमंस के स्पीकर की स्थिति की तुलना

2.2.2.4.1. ब्रिटिश स्पीकर की विशेषताएँ

- यहाँ स्पीकर के पद को अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। ब्रिटेन में एक परंपरा है कि एक बार अध्यक्ष बनने के पश्चात् वह सदैव के लिए अध्यक्ष बन जाता है। उल्लेखनीय है कि अध्यक्ष का निर्वाचन क्षेत्र निर्विरोध होता है। एक बार जब किसी व्यक्ति को अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया जाता है तो वह अपने राजनीतिक दल से औपचारिक रूप से त्यागपत्र दे देता है। उसके पास निर्णायक मत देने और सदन के संचालन तथा सांसदों के आचरण के संबंध में अंतिम अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का अधिकार होता है।

2.2.2.4.2. अमेरिका में स्पीकर (हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स का अध्यक्ष)

- सामान्यतः वह किसी पार्टी का सदस्य होता है तथा उससे तटस्थ रहने की अपेक्षा नहीं की जाती है। वह अपनी पार्टी का पक्ष-समर्थन करता है। उनके पास अंतिम अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की शक्तियां नहीं होती हैं, जो स्वयं सदन में निहित होती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में अध्यक्ष प्रारंभिक मतदान कर सकता है।

2.2.2.4.3. भारत में लोकसभा का अध्यक्ष

- हालांकि, भारत की स्थिति ब्रिटिश और अमेरिकी मॉडल के मध्य की है। यह सैद्धांतिक रूप से ब्रिटिश मॉडल के करीब है। लेकिन यहाँ समान परंपरा मौजूद नहीं है। उदाहरणार्थ:
    - यहाँ अध्यक्ष के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि वह अपनी पार्टी से त्यागपत्र दे।
    - **यदि उसने त्यागपत्र देने का निर्णय किया है तो उसे दल-बदल विरोधी कानून के तहत निरर्ह घोषित नहीं किया जाएगा।**
    - भारत में अध्यक्ष के निर्विरोध निर्वाचित किए जाने की कोई परंपरा नहीं है।

2.2.3. न्यायपालिका

- संसदीय संप्रभुता के सिद्धांत के तहत, न्यायपालिका के पास संसद के अधिनियम को समाप्त करने के लिए स्वाभाविक शक्ति का अभाव है। हालांकि, सांविधिक कानून के सामान्य कानून के अधीनस्थ होने का तात्पर्य यह नहीं है कि न्यायपालिका कार्यपालिका के अधीनस्थ है। ब्रिटेन में न्यायालयों को कुछ शक्तियाँ प्राप्त हैं, यथा:
    - सांविधिक क़ानून के अर्थ की सटीक व्याख्या।
    - अधिकारातीत (शक्तियों से परे) के सिद्धांत को लागू कर मंत्रियों और अन्य सरकारी अधिकारियों के कार्यों की समीक्षा।
    - मंत्रियों और दूसरों के कार्यों पर प्राकृतिक न्याय की अवधारणा को लागू करना।
- चूंकि यहाँ संसद संप्रभु है, अतः यहाँ सरकार संशोधन कानून पारित करके न्यायालयों के निर्णयों को उलटने का प्रयास कर सकती है। न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति, नीति प्रक्रिया में न्यायपालिका को संभावित महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है।
- हाल के दशकों में, वहाँ कई कारणों से न्यायिक सक्रियता (judicial activism) में वृद्धि देखी गई है:
    - न्यायाधीश, मंत्री की कार्यवाही की समीक्षा करने और उन्हें रद्द करने के लिए अधिक इच्छुक हैं।
    - यूरोपियन कन्वेंशन ऑन ह्यूमन राइट (ECHR) को घरेलू कानून में समावेश करना।

- स्कॉटलैंड, वेल्स और उत्तरी आयरलैंड में निर्वाचित विधानसभाओं के लिए शक्तियों का हस्तांतरण।
- वर्ष 2009 में सुप्रीम कोर्ट का गठन।

2.2.3.1. भारतीय और ब्रिटिश न्यायपालिका के मध्य तुलना

अंतर

- ब्रिटिश प्रणाली के मामले में, 'मूल ढांचे (Basic Structure)' की अवधारणा के अभाव के कारण संशोधन करने की संसद की शक्ति किसी भी न्यायिक निर्णय का अतिक्रमण कर सकती है। जबकि, भारतीय न्यायपालिका प्रणाली के मामले में, 'मूल ढांचे' की अवधारणा ने न्यायपालिका को एक शक्तिशाली उपकरण प्रदान किया है, जिसके द्वारा यह किसी भी ऐसी कार्यपालिका या विधायी कार्यवाही को निरस्त कर सकती है जो संविधान की मूल भावना के विरुद्ध प्रतीत होती है।
- ब्रिटिश विधिक प्रणाली पूरी तरह से 'सामान्य विधि प्रणाली' (Common Law System) पर आधारित है। सामान्य विधि प्रणाली का तात्पर्य यह है कि कानून, न्यायाधीशों के फ़ैसलों, आदेशों या निर्णयों (पूर्व निर्णयों से भी संबंधित) के माध्यम से विकसित हुए हैं। हालांकि, ब्रिटिश प्रणाली जो पूरी तरह से सामान्य विधि प्रणाली (ब्रिटेन में उद्भव) पर आधारित है, के विपरीत, भारतीय प्रणाली में सामान्य विधि प्रणाली के साथ वैधानिक और नियामक कानूनों को भी सम्मिलित किया गया है।

समानताएं

- दोनों प्रणालियों में कार्यपालिका की कार्यवाही को अधिकारातीत घोषित किया जा सकता है।
- न्यायपालिका को संविधान का सबसे बड़ा व्याख्याकार माना जाता है।
- हाल के समय में, ब्रिटेन में न्यायिक सक्रियता में वृद्धि हुई है और न्यायपालिका अत्यधिक सक्रिय होती जा रही है। भारतीय संदर्भ में भी न्यायिक सक्रियता में वृद्धि हुई है।

नोट: ब्रिटेन में संवैधानिक सुधार अधिनियम, 2005 के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय को अपील के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में स्थापित किया गया। एक राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को प्रस्तावित किया गया।

2.4. उपर्युक्त तुलना का एक संक्षिप्त सारांश

2.4.1. ब्रिटिश संविधान

- ऐतिहासिक आधार पर उद्भव और विकास का परिणाम।
- सिद्धांत और व्यवहार के मध्य अंतर।
- लचीला और एकात्मक संविधान।
- संसदीय सरकार।
- विधि का शासन और नागरिक स्वतंत्रता लागू।

भारतीय संविधान	ब्रिटिश संविधान
लिखित	अलिखित
संघीय	एकात्मक
केंद्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन	शक्ति केंद्र में निहित
राजतंत्र नहीं/गणतंत्र	राजा/रानी की स्थिति/संवैधानिक राजतंत्र

2.4.2. ब्रिटिश सम्राट और भारत के राष्ट्रपति के मध्य तुलना

ब्रिटिश सम्राट	भारत के राष्ट्रपति
राजा की स्थिति वंशानुगत	निर्वाचित
राजा को पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त है; यह कहा जाता है कि राजा कोई भी गलती नहीं कर सकता।	भारत में राष्ट्रपति पर संविधान के उल्लंघन के आधार पर महाभियोग चलाया जा सकता है।
राजा के पास कोई विवेकाधीन शक्तियां नहीं है। उसे **'गोल्डन जीरो'** के रूप में जाना जाता है।	भारत में भारतीय राष्ट्रपति के संबंध में स्पष्टता का अभाव है। इस संबंध में भी भ्रांति बनी हुई है कि क्या उसके पास कोई विवेकाधीन शक्ति है या वह केवल एक रबर स्टाम्प है। • **24वें संविधान संशोधन अधिनियम** द्वारा स्पष्ट किया गया कि उसके पास कोई विवेकाधीन शक्तियां नहीं हैं। वास्तविक शक्ति, प्रधानमंत्री के पास निहित है, जबकि राष्ट्रपति केवल एक 'रबर स्टाम्प' है। • 44वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से पुनः इस स्थिति को उलट दिया गया तथा राष्ट्रपति को कुछ विवेकाधीन शक्तियां प्रदान की गई। वर्तमान में वह किसी कानून को मंत्रिपरिषद (CoM) के पास पुनर्विचार हेतु भेज (केवल एक बार) सकता है।

2.4.3. ब्रिटिश सम्राट और अमेरिकी राष्ट्रपति के मध्य तुलना

ब्रिटिश सम्राट	अमेरिकी राष्ट्रपति
राजा नाममात्र का प्रमुख	राष्ट्रपति वास्तविक प्रमुख और नाममात्र का प्रमुख दोनों होता है।
वंशानुगत	निर्वाचित; और महाभियोग चलाया जा सकता है।
कोई विवेकाधीन प्राप्त शक्तियां नहीं	वास्तविक कार्यकारी शक्तियां, हालांकि नियंत्रण एवं संतुलन के अधीन।

3. संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान

3.1. प्रमुख विशेषताएँ

- विश्व के प्रमुख देशों के संविधान की तुलना में अमेरिकी संविधान सबसे छोटा और प्रथम लिखित संविधान है, जबकि भारतीय संविधान विश्व का सबसे लंबा लिखित संविधान है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान को अत्यंत कठोर (संशोधन प्रक्रिया कठिन) संविधान माना जाता है जिसमें केवल 7 अनुच्छेद ही हैं और अभी तक इसमें केवल 27 बार संशोधन किया गया है। मूल रूप से, भारतीय संविधान में 8 अनुसूचियां 22 भाग और 395 अनुच्छेद शामिल थे। वर्तमान समय में इसमें 12 अनुसूचियां 25 भाग और 448 अनुच्छेद सम्मिलित हैं।

- संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान को 17 सितम्बर 1787 को आयोजित एक कंवेंशन में अंतिम रूप दिया गया था, जिसे लागू करने के लिए कम से कम 9 राज्यों के अनुसमर्थन की आवश्यकता थी। जुलाई 1788 तक 11 राज्यों द्वारा इसका अनुमोदन कर दिया गया था और 13 सितम्बर 1788 को अमेरिकी संविधान को लागू किया गया। दूसरी तरफ भारतीय संविधान को 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा द्वारा अंगीकृत किया गया और यह 26 जनवरी 1950 को अस्तित्व में आया।
- संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिकता और संविधान के मामले में दोहरी नीति के सिद्धांत को अपनाया गया है, जिसके तहत दो संविधान हैं, पहला, संपूर्ण देश के लिए और दूसरा प्रत्येक राज्य का अपना संविधान। इसके साथ ही अमेरिकी नागरिकों के लिए दोहरी नागरिकता का प्रावधान किया गया है। पहला, संयुक्त राज्य अमेरिका की नागरिकता और दूसरी, प्रत्येक संबंधित राज्य की नागरिकता। दूसरी तरफ, भारत में सभी नागरिकों के लिए एक संविधान और एकल नागरिकता की संकल्पना को अपनाया गया है।

3.1.1. संविधान की प्रकृति

- अमेरिकी संविधान को मूलतः संघीय संविधान के रूप में वर्णित किया जाता है, जिसे 50 स्वतंत्र राज्यों द्वारा अनुमोदित किया गया है। इसके अतिरिक्त संघ सरकार और राज्य सरकारों का अपना संविधान है और ये दोनों एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते हैं।
- दूसरी तरफ, भारत में एक संविधान है तथा राज्य सरकार के कार्यकलापों में संघ सरकार निम्नलिखित रूप में हस्तक्षेप करती है:
  - राज्यपालों की नियुक्तियां।
  - राज्यपाल के पास राज्य विधान-मंडल द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित रखने की शक्ति।
  - राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने की संघ सरकार की शक्ति।

3.1.2. संघवाद की प्रकृति

- अमेरिका एक द्वैध संघ (Dual Federation) का जबकि भारत एक सहकारी संघ (Cooperative Federation) का उदाहरण है।

द्वैध संघ (संयुक्त राज्य अमेरिका)	**सहकारी संघ (भारत)**
• ऐसे संघ में केंद्र और राज्य दोनों पूर्ण रूप से स्वतंत्र होते हैं और वे अपने आप में पूर्ण सरकार होते हैं। • **अपकेंद्रीय संघवाद (Centrifugal federalism)**	• ऐसे संघ में केंद्र और राज्य दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं होते हैं, बल्कि अपने कार्यनिष्पादन के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। सामान्यतः केंद्र के पास अधिक नियंत्रणकारी शक्तियाँ होती हैं। • **अभिकेंद्रीय संघवाद (Centripetal federalism)**
• **समरूप संघवाद (Symmetrical federalism):** सीनेट में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है।	• **असममित संघवाद (Asymmetrical federalism):** ○ राज्यों को उनकी जनसंख्या के आधार पर राज्य सभा में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। ○ संविधान के अनुच्छेद 370 और 371 में कुछ राज्यों के लिए विशेष उपबंध किए गए हैं। (उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 370 के अधिकांश प्रावधानों को निरसित कर दिया गया है।)

• संयुक्त राज्य अमेरिका एक विधायी संघ है, जिसका तात्पर्य यह है कि विधि निर्माण की प्रक्रिया में राज्यों का प्रभुत्व होता है।	• भारत एक कार्यकारी संघ है, जिसका तात्पर्य यह है कि राज्य की स्थिति केवल कार्यकारी स्तर पर ही महत्वपूर्ण होती है।
• संयुक्त राज्य अमेरिका **अविनाशी राज्यों का एक अविनाशी संघ** है।	• भारत **विनाशी राज्यों का एक अविनाशी संघ** है।
• संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान राज्यों को सीनेट के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय संधियों को अनुमोदित करने की शक्ति प्रदान करता है।	• भारतीय संविधान में राज्यों के लिए ऐसा कोई प्रावधान (अंतर्राष्ट्रीय संधियों के अनुमोदन से संबंधित) नहीं किया गया है।

3.1.3. सरकार का स्वरूप

संयुक्त राज्य अमेरिका

- संयुक्त राज्य अमेरिका में शासन की **राष्ट्रपतीय प्रणाली (Presidential system)** को अपनाया गया है, जिसमें जनता सीधे कार्यकारी राष्ट्रपति का चुनाव करती है।
- राष्ट्रपति शक्तिशाली होता है और वह कांग्रेस (अमेरिकी संसद) के प्रति **जवाबदेह नहीं** होता है।
- अमेरिकी राष्ट्रपति का **कार्यकाल 4 वर्षों** (नियत काल) का होता है।
- कोई भी **व्यक्ति केवल दो कार्यकाल** के लिए ही राष्ट्रपति का पद धारण कर सकता है।
- सरकार के प्रशासनिक कार्यों में सहयोग करने हेतु राष्ट्रपति अपने कर्मचारियों की नियुक्ति स्वयं करता है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स या सीनेट के सदस्य हों। कर्मचारी अमेरिकी संसद (कांग्रेस) के सदनों के प्रति उत्तरदायी नहीं होते हैं।

इसका अर्थ यह है कि सरकार के प्रशासन में अमेरिकी राष्ट्रपति पूर्णत: स्वतंत्र है तथा प्रत्यक्ष रूप से अमेरिकी जनता के प्रति उत्तरदायी होता है।

भारत

- भारत में शासन की **संसदीय प्रणाली** को अपनाया गया है।
- भारत का राष्ट्रपति सरकार का **कार्यकारी प्रमुख** होता है। उसका निर्वाचन परोक्ष रीति से संसद सदस्यों और राज्य विधान-मंडल के सदस्यों (नामनिर्दिष्ट सदस्य नहीं) द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है।
- राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल की सहायता और परामर्श से देश की सरकार का संचालन करता है।
- अमेरिकी राष्ट्रपति के विपरीत भारत का राष्ट्रपति अपने पद पर **5 वर्षों** तक बना रहता है।
- एक व्यक्ति **अनेक बार के लिए राष्ट्रपति पद** पर निर्वाचित हो सकता है।

राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की प्रक्रिया के संदर्भ में भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में समानता है।

3.2. राष्ट्रपति

- अमेरिका में राष्ट्रपति की स्थिति सरकार के प्रमुख के साथ-साथ राज्य प्रमुख की भी है।

3.2.1. अमेरिकी राष्ट्रपति पद के लिए अर्हता

- अमेरिकी राष्ट्रपति पद के लिए, प्राकृतिक रूप से अमेरिका में जन्मे अमेरिकी नागरिक ही अर्ह होते हैं, न कि किसी अन्य देश का व्यक्ति जिसने अमेरिकी नागरिकता प्राप्त की हो। इसके अतिरिक्त, वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो तथा साथ ही कम से कम 14 वर्षों से अमेरिका में अधिवासित हो।

- दूसरी तरफ, भारत के राष्ट्रपति पद हेतु व्यक्ति को भारत का नागरिक होना चाहिए, चाहे वह जन्म-जात नागरिक हो या अर्जित नागरिकता धारक।

3.2.2. राष्ट्रपति का निर्वाचन

- अमेरिकी राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक मंडल द्वारा अप्रत्यक्ष रीति से किया जाता है।

निर्वाचक मंडल (Electoral College)

- निर्वाचक मंडल की सदस्य संख्या = हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स में कुल सदस्यों की संख्या + सीनेट के सदस्य + वाशिंगटन डी.सी. से 3 सदस्य (अर्थात् 435+100+3 = 538)
- विजयी सदस्य को निर्वाचक मंडल के कुल सदस्यों का पूर्ण बहुमत (50%+1) प्राप्त होना चाहिए (अर्थात् 270)।

नोट: हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स में विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व (सदस्यों की संख्या) समान नहीं है, जबकि सीनेट में राज्यों का प्रतिनिधित्व समान है।

निर्वाचकों का चुनाव (Election of Electors)

- सर्वप्रथम मतदाता अपने मत के द्वारा निर्वाचक मंडल के सदस्यों का चुनाव करते हैं।
- चुनाव सूची प्रणाली (List System) द्वारा होता है।
- प्रत्येक राज्य का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह इन चुनावों का संचालन करे।
- बहुमत प्राप्त करने वाली पार्टी संपूर्ण राज्य का प्रतिनिधित्व करती है।
- निर्वाचाकगण (Electors) अपने-अपने राज्य की राजधानी में एकत्रित होकर राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिए वोट करते हैं।

3.2.3. संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का प्रकार्य

कार्यकारी प्रकार्य

- नियुक्तियां,
- राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करना, तथा
- बजट की प्रस्तुति।

विधायी कार्य

- विधयिका में उपस्थिति नहीं।
- अमेरिकी राष्ट्रपति विधयिका को संबोधित नहीं करता है।
- राष्ट्रपति विधयिका को भंग नहीं कर सकता।
- राष्ट्रपति अपना संदेश विधयिका को भेज सकता है। (संयुक्त राज्य अमेरिका में संदेश भेजने की प्रथा मौजूद है क्योंकि वहां शक्तियों का पृथक्करण किया गया है। इसलिए राष्ट्रपति को अपनी सहभागिता दर्ज कराने का यही एक साधन है। इस प्रकार का संदेश भेजने का प्रावधान भारत में भी है, लेकिन इस प्रावधान के पीछे का तर्क स्पष्ट नहीं है क्योंकि राष्ट्रपति को इस मामले के संदर्भ में विवेकाधीन शक्तियां प्राप्त नहीं हैं और वह प्रधानमंत्री की सलाह पर कार्य करने के लिए बाध्य होता है।)
    - **वीटो शक्ति:** संविधान के तहत, राष्ट्रपति, कांग्रेस द्वारा पारित विधेयक पर तीन तरीकों में से एक के माध्यम से प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकता है। वह इस पर हस्ताक्षर कर सकता है, वीटो का प्रयोग कर इसे कांग्रेस को वापस लौटा सकता है या वह इस पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करे। यदि राष्ट्रपति द्वारा विधेयक पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की जाती है तो, इसके 10 दिन पश्चात् (रविवार को छोड़कर) विधेयक स्वत: कानून बन जाता है। हालांकि, यदि 10 दिन की अवधि के भीतर कांग्रेस का स्थगन हो जाता तो विधेयक, "पॉकेट वीटो" के प्रावधान के तहत समाप्त हो जाता है। यदि राष्ट्रपति विधेयक पर वीटो करता है तो इसके बावजूद भी कांग्रेस के दोनों सदनों में 2/3 बहुमत द्वारा विधेयक को पास कर कानून बनाया जा सकता है।

3.2.4. विधायी प्रस्ताव

- संविधान, राष्ट्रपति को अधिकृत करता है कि वह "कांग्रेस को विधेयक के संदर्भ में आवश्यक और समीचीन विचार करने हेतु अनुशंसा करे"। वीटो (जो विधि-निर्माण को रोकने का एक सीमित और कुछ सीमा तक एक नकारात्मक साधन है) के विपरीत, विधान-निर्माण के संबंध में सिफारिश करने संबंधी दायित्व समय के साथ प्राथमिक व्यवस्था बन गई है जिसके द्वारा देश के राजनीतिक एजेंडे को प्रभावित किया जाता है।

भारतीय राष्ट्रपति

- भारत में राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त है कि वह विधेयक को संसद को पुनर्विचार हेतु लौटा सकता है। लेकिन, यदि संसद द्वारा विधेयक पर पुनर्विचार किया जाता है और आवश्यक बहुमत से पारित कर पुनः राष्ट्रपति को भेजा जाता है, तो राष्ट्रपति को इस पर हस्ताक्षर (अन्य कोई विकल्प उपलब्ध नहीं है) करना अनिवार्य होगा।
- व्यावहारिक रूप से, गठबंधन सरकार को छोड़कर, प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद को संसद में सदैव बहुमत प्राप्त होता है, इसलिए, प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल को विधेयक पर राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती है।
- हालांकि, यहाँ अमेरिकी राष्ट्रपतीय प्रणाली की विषय-वस्तु से महत्वपूर्ण अंतर यह है कि अमेरिका के विपरीत, भारतीय संविधान में राष्ट्रपति के लिए किसी भी विधेयक पर हस्ताक्षर करने की कोई निश्चित समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है, इसलिए वह विधेयक को बिना हस्ताक्षर किए अनिश्चित काल तक अपने पास रख सकता है जो प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल की विधि-निर्माण प्रक्रिया को बाधित कर सकता है। स्पष्ट रूप में, यह व्यवस्था हमें यह प्रश्न करने के लिए प्रोत्साहित करती है कि क्या भारतीय राष्ट्रपति का पॉकेट वीटो अमेरिकी राष्ट्रपति के पॉकेट वीटो से अधिक शक्तिशाली है।

3.2.5. शपथ और सेवानिवृत्ति की तिथि

संयुक्त राज्य अमेरिका

- संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की एक अनूठी विशेषता यह है कि निवर्तमान राष्ट्रपति और कांग्रेस के सदस्यों की सेवानिवृत्ति का समय एवं तिथि निर्धारित है।
- राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का कार्यकाल नियत अवधि के उपरांत 20 जनवरी के दिन दोपहर में समाप्त हो जाता है।
- इसका अर्थ है कि, नए राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति द्वारा शपथ अपने कार्यकाल के प्रथम वर्ष की 20 जनवरी (यदि 20 जनवरी को रविवार है तो 21 जनवरी को) की दोपहर के समय ली जाएगी।
- राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का चुनाव नवंबर महीने में होता है और इसी माह में चुनाव परिणाम भी घोषित कर दिया जाता है।

इस प्रकार, अमेरिकी जनता को अपने नए राष्ट्रपति के बारे में पूर्व में ही सूचित कर दिया जाता है। स्वाभाविक तौर पर, यहाँ यह प्रश्न उठता है कि इस समय सारणी का पालन कैसे किया जाता होगा। उल्लेखनीय है कि अमेरिकी राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग या महाभियोग के मामले में, उप-राष्ट्रपति ही शेष अवधि के लिए राष्ट्रपति बन जाता है। इस प्रकार, राष्ट्रपति का पद रिक्त नहीं रहता है और अगला निर्वाचित राष्ट्रपति नियत समय पर ही शपथ लेता है।

भारत

- भारत में, यदि राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाए अथवा महाभियोग के द्वारा या अपने पद से वह त्यागपत्र दे देता है, तो उपराष्ट्रपति, तब तक के लिए राष्ट्रपति बन जाता है जब तक नया चुनाव न हो जाए। नया निर्वाचित राष्ट्रपति अपने पद पर 5 वर्ष की अवधि तक बना रहता है।
- अमेरिकी समय-सीमाबद्ध प्रणाली के विपरीत, भारत में चुनाव की इस प्रकार की प्रणाली लागू नहीं है।

3.2.6. प्राइमरीज (Primaries)

- प्राइमरीज एक प्रकार का चुनाव है जिसका आयोजन उम्मीदवारों का चयन करने के लिए किया जाता है।
- इस चुनाव का आयोजन राजनीतिक दलों द्वारा किया जाता है।

3.2.7. संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग

- **कारण:** देशद्रोह, रिश्वत, दुराचरण संबंधी गंभीर अपराध। भारतीय संविधान के विपरीत, अमेरिका में संविधान के उल्लंघन के आधार पर महाभियोग का कोई प्रावधान नहीं है।
- **प्रक्रिया**
  - हाउस ऑफ़ रिप्रजेंटेटिव में राष्ट्रपति के विरूद्ध आरोप लगाए जाएंगे।
  - इसे 2/3 बहुमत से पारित किया जाएगा।
  - सीनेट द्वारा इन आरोपों की जाँच की जाएगी।
  - इस प्रक्रिया में, संयुक्त राज्य अमेरिका के उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश पीठासीन अधिकारी होगा।
  - यदि आरोप सिद्ध हो जाता है, तो उसे पद से तभी हटाया जाएगा जब सीनेट द्वारा इस आशय के प्रस्ताव को 2/3 बहुमत से पारित कर दिया जाएगा।

3.2.8. संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की कुछ शब्दावलियां

Filibustering (विधायी कार्यवाही में बाधा उत्पन्न करना): सीनेटरों का यह एक विशेषाधिकार है कि वे असीमित अवधि तक के लिए अपने बोलने के अधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। यह किसी विधेयक को रोकने के लिए एक अंतिम उपाय है। वस्तुतः, अब एक नया नियम बनाया गया है, जिसके अनुसार 2/3 सदस्य एक प्रस्ताव लाकर सीनेटरों के इस विशेषाधिकार का निषेध कर सकते हैं।
Senatorial Courtesy (विधायी शिष्टाचार): इसके तहत राष्ट्रपति, औपचारिक रूप से उच्च पदों पर नियुक्ति के लिए नाम निर्दिष्ट करने से पूर्व, नियुक्ति के लिए संभावित उम्मीदवारों के संबंध में सीनेट को सूचित करता है ताकि ऐसी स्थिति उत्पन्न न हो कि राष्ट्रपति द्वारा भेजे गए नामों की पुष्टि सीनेट न करे।
Gerrymandering (निर्वाचक क्षेत्रों का सीमांकन या गेरीमैन्डरिंग): यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत निर्वाचक जिलों का सीमांकन किया जाता है, जिससे राज्यों में सत्तारुढ़ दल को लाभ प्राप्त हो। वे निर्वाचक जिलों को अपने चुनावी लाभ के उद्देश्य से इस तरीके से सीमांकित करते है कि उनके समर्थक एक स्थान पर केन्द्रित हो जाएं और विरोधी दल के समर्थक एकजुट न हो पाएं।

Log Rolling (लॉग रॉलिंग): एक दल के सदस्य दूसरे पक्ष के विधेयक या दृष्टिकोण का समर्थन कर सकते हैं।
Pork Barrel (वोट प्राप्ति हेतु सरकारी धन का व्यय स्थानीय कार्यों में करना): यह हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स की राजनीति को प्रदर्शित करता है जहाँ स्थानीय हित हावी होते हैं और प्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्रों के लिए अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहते हैं।

3.3. उप-राष्ट्रपति

3.3.1. उप-राष्ट्रपति का चुनाव

- संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद हेतु अर्हता एक समान ही है। चूंकि दोनों पदों के लिए एक साथ चुनाव आयोजित किए जाते हैं, इसलिए चुनाव की प्रक्रिया भी एक समान है।
- **पूर्व की पद्धति:** जो उम्मीदवार चुनाव में प्रथम रहता था, उसे राष्ट्रपति और दूसरे को उपराष्ट्रपति चुना जाता था।
- **वर्तमान पद्धति:** दोनों के लिए चुनाव पृथक-पृथक होते हैं, लेकिन इसका आयोजन एक ही समयावधि के दौरान और एक ही रीति से किया जाता है।

3.3.2. राष्ट्रपति के रूप में उप-राष्ट्रपति का कार्यकाल

- राष्ट्रपति का पद रिक्त होने के कारण उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद निम्नलिखित दो परिस्थितियों में ग्रहण कर सकता है:
    - जब राष्ट्रपति अपने पद पर दो वर्ष से अधिक का कार्यकाल पूर्ण कर चुका होता है और तब उपराष्ट्रपति यदि उसका पद ग्रहण करता है तो शेष अवधि के लिए वह राष्ट्रपति बन सकता है। इसके अतिरिक्त, वह दो और कार्यकाल हेतु राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर सकता है।
    - जब निवर्तमान राष्ट्रपति का कार्यकाल दो वर्षों से अधिक की अवधि के लिए शेष हो और यदि उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति का कार्यभार ग्रहण करता है तो शेष अवधि के अतिरिक्त वह एक और कार्यकाल (राष्ट्रपति) हेतु अर्ह होगा।

3.3.3. संयुक्त राज्य अमेरिका के उप-राष्ट्रपति के प्रकार्य

- वह **सीनेट का पदेन चेयरपर्सन** होता है और निर्णायक मत डालता है।
- भारतीय उपराष्ट्रपति का पद संयुक्त राज्य अमेरिका के उपराष्ट्रपति के पद के समान ही बनाया गया था (कुछ भिन्नताओं के साथ)।
- उपराष्ट्रपति के पद को **" हिज सुपरफ्लुअस हाइनेस (His Superfluous Highness)"** कहा जाता है।

3.4. अमेरिकी विधायिका/अमेरिकी कांग्रेस

- संयुक्त राज्य अमेरिका की संसद दो सदनों से मिलकर बनी है: **हाउस ऑफ़ रिप्रजेन्टेटिव्स** और **सीनेट**।

3.4.1. हाउस ऑफ़ रिप्रजेन्टेटिव्स

- यह विश्व के सबसे शक्तिहीन निम्न/निचले सदनों में से एक है।
- इसकी कुल सदस्य संख्या 435 है।
- इसके सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा होता है।
- प्रत्येक राज्य से सदस्यों की संख्या अलग-अलग हो सकती है।

3.4.2. सीनेट

- यह स्थायी सदन है।
- विश्व का सबसे शक्तिशाली उच्च सदन है।
- सीनेट के पास साधारण विधेयक, संविधान संशोधन विधेयक और धन विधेयक से संबंधित समान अधिकार हैं।
- एक सदस्य का कार्यकाल 6 वर्ष का होता है और 1/3 सदस्य प्रत्येक 2 वर्ष पश्चात् सेवानिवृत्त हो जाते हैं।

3.5. संयुक्त राज्य अमेरिका में समिति प्रणाली (Committee System In USA)

- संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व में सबसे सुदृढ़ समिति प्रणाली वाला देश है। यह कहा जाता है कि यहाँ (USA) की कांग्रेस समितियों में कार्य करती है।

ब्रिटिश और भारतीय प्रणाली से अंतर

- ब्रिटेन और भारत में, सर्वप्रथम सदन में विधेयक को प्रस्तुत किया जाता है, तदुपरान्त प्रथम वाचन होता है और फिर इसके बाद समिति को इसे संदर्भित किया जाता है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका में, सदन में विधेयक को प्रस्तुत किया जाता है और इसे कई बार बिना वाचन के ही समिति को संदर्भित कर दिया जाता है।

पिजन होल (Pigeon Hole): संयुक्त राज्य अमेरिका में विधेयक को समिति के स्तर पर ही समाप्त किया जा सकता है। यह विधेयक की Pigeon Holing के नाम से जाना जाता है।

3.6. केंद्रीय स्तर पर इन प्रतिनिधि निकायों की अवधि

3.6.1. संयुक्त राज्य अमेरिका

- संयुक्त राज्य अमेरिका का हाउस ऑफ़ रिप्रजेन्टेटिव्स और सीनेट स्थायी निकाय हैं।
- हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स और सीनेट के सदस्यों का कार्यकाल 3 जनवरी को समाप्त होता है।

3.6.2. भारत

- भारत में आपात स्थिति में लोकसभा का कार्यकाल एक वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है या समय से पूर्व चुनाव कराकर इसे कम किया जा सकता है।
- सत्तारुढ़ दल अगले चुनाव में अपनी जीत की संभावनाओं को देखते हुए राष्ट्रपति को लोक सभा भंग करने और उपयुक्त समय (जिसमें पार्टी को लाभ हो) पर चुनाव कराने की सलाह देता है।

3.7. शक्ति के पृथक्करण का सिद्धांत और नियंत्रण एवं संतुलन की प्रणाली

- शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत की शुरुआत **जॉन लॉक** ने की थी और **मॉन्टेस्क्यू** ने इसे लोकप्रिय बनाया (दोनों 18वीं सदी के दार्शनिक)।

शक्तियों/प्रकार्यों का पृथक्करण क्यों?

- मॉन्टेस्क्यू के अनुसार- स्वतंत्रता तब तक सुरक्षित नहीं होती जब तक कि शक्तियों का पृथक्करण न किया गया हो।
- सभी लोकतांत्रिक देशों में न्यायपालिका सहित शक्तियों का पृथक्करण एक सार्वभौमिक विशेषता है।
- शासन की राष्ट्रपतीय प्रणाली में सरकार के तीनों अंगों के मध्य शक्तियों का पृथक्करण होता है जबकि संसदीय शासन प्रणाली में विधायी और कार्यकारी शक्तियों का समेकन पाया जाता है।

3.7.1. संयुक्त राज्य अमेरिका

- संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान मॉन्टेस्क्यू और जॉन लॉक द्वारा प्रस्तावित शक्ति के पृथक्करण सिद्धांत का दृढ़ता से पालन करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में शक्ति के पृथक्करण का सिद्धांत पूरी तरह से लागू है।
- सरकार के सभी तीनों अंगों के कार्य पृथक हैं।
- विधायिका और कार्यपालिका का कार्यकाल निश्चित होता है और ये परस्पर निर्भर नहीं हैं।
- विधायिका का कोई भी सदस्य, कार्यपालिका का सदस्य नहीं हो सकता है।
- अमेरिकी कांग्रेस के सदन द्वारा विधि-निर्माण किया जाता है, राष्ट्रपति उस विधि को कार्यान्वित करता है और उच्चतम न्यायालय उस विधि की व्याख्या करता है।
- अमेरिकी राष्ट्रपति को कानून बनाने का विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है क्योंकि वह न तो हाउस ऑफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स और न ही सीनेट का सदस्य होता है।
- राष्ट्रपति को वीटो की शक्ति प्राप्त है लेकिन कानून बनाने की शक्ति नहीं, अतः कांग्रेस इस मामले में राष्ट्रपति को नियंत्रित करती है और इस प्रकार 'नियंत्रण एवं संतुलन' बनाए रखा जाता है।

3.7.2. भारत

- सैद्धांतिक तौर पर, हम कह सकते हैं कि हमारे संविधान में भी शक्ति के पृथक्करण का सिद्धांत दृष्टिगत होता है, लेकिन यह सिद्धांत मुख्यतः केवल कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य पाया जाता है।
- राष्ट्रपति संघीय कार्यपालिका का हिस्सा होता है, तथापि प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद ही वास्तविक कार्यपालिका के हिस्से होते हैं, क्योंकि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की सलाह पर कार्य करने के लिए बाध्य है।
- इनके पास दोहरी क्षमता होती है:
  - प्रथम, कार्यपालिका के रूप में; और
  - द्वितीय, विधि निर्माता के रूप में।
- सत्तारुढ़ दल के नेता के रूप में प्रधानमंत्री विधि निर्मित कर सकता है, जिसे उसके प्रशासन द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। इस प्रकार, प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद विधि-निर्माण करती है और प्रशासन इसे कार्यान्वित करता है, जिससे स्वयं में यहाँ शक्ति के पृथक्करण का सिद्धांत विरोधाभासी प्रतीत होता है।

3.7.3. नियंत्रण एवं संतुलन

- सरकार के किसी भी अंग को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान नहीं की गई है। इसलिए यहां नियंत्रण एवं संतुलन का होना आवश्यक है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में नियंत्रण एवं संतुलन कैसे स्थापित किया गया है?

- न्यायपालिका सरकार के अन्य अंगों अर्थात् कार्यपालिका और विधयिका के कार्यों पर न्यायिक पुनर्विलोकन के द्वारा नियंत्रण रखती है।
- कांग्रेस, राष्ट्रपति और उसके प्रकार्यों पर किस प्रकार नियंत्रण रखती है?
  - अंतर्राष्ट्रीय समझौतों और उच्च पदों पर नियुक्तियों की कांग्रेस में अभिपुष्टि करना अनिवार्य है।
  - प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं का सिद्धांत।
  - राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग।
- राष्ट्रपति, कांग्रेस पर किस प्रकार से नियंत्रण रखता है?

- वीटो शक्ति का प्रयोग करके {हालांकि, कांग्रेस 2/3 बहुमत के साथ राष्ट्रपति के वीटो का अध्यारोहन कर विधेयक पारित कर सकती है, इसलिए राष्ट्रपति के पास आत्यंतिक वीटो (absolute veto) की शक्ति उपलब्ध नहीं है}।
- पॉकेट वीटो: इस संदर्भ में दो परिस्थितियां हैं-
  - जब कांग्रेस दस दिनों के लिए सत्र में होती है तो राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना भी विधेयक पारित कर दिया जाता है।
  - जब कांग्रेस दस दिनों से कम समय के लिए सत्र में होती है तो विधेयक व्यपगत हो जाता है।

- राष्ट्रपति और कांग्रेस द्वारा न्यायपालिका पर नियंत्रण
  - न्यायाधीशों की नियुक्ति: राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति और सीनेट द्वारा अभिपुष्टि की जाती है।
  - न्यायाधीशों को पदच्युत करना: कांग्रेस महाभियोग के माध्यम से हटाने का प्रस्ताव पारित करती है और इसे राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है।
  - वेतन और परिलब्धियाँ राष्ट्रपति द्वारा नियंत्रित की जाती हैं।

3.8. मूल अधिकार (Fundamental Rights)

- जहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में "बिल ऑफ़ राइट्स" (अधिकार पत्र) का समावेश है, वहीं भारत के संविधान में 'मूल अधिकार' को शामिल किया गया है।
- हालांकि, अमेरिकी संविधान में अतिरिक्त मानव अधिकार प्रदान किए गए हैं, जो भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत नहीं होते हैं।
  - संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के प्रथम संशोधन के तहत प्रेस की स्वतंत्रता स्पष्ट रूप से प्रदान की गयी है, जबकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19[1](A) के तहत वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रत्याभूत है।
  - भारत में, उच्चतम न्यायालय में इससे संबंधित याचिका दायर करना भी एक मूल अधिकार है, वहीं, संयुक्त राज्य अमेरिका में "सरकार" के विरुद्ध याचिका दायर की जाती है (संयुक्त राज्य अमेरिका के मामले में "सरकार" शब्द का व्यापक अर्थ है जिसके दायरे में न केवल कार्यपालिका बल्कि उच्च न्यायपालिका भी शामिल है)।
  - अमेरिकी नागरिकों को संविधान के दूसरे संशोधन के उपरांत अपने जीवन व संपत्ति की सुरक्षा करने हेतु हथियार और बंदूक रखने का अधिकार प्रदान किया गया। इसलिए अमेरिका में बंदूक और हथियार बिना किसी क़ानूनी अवरोध के अन्य वस्तुओं के समान बेचे जाते हैं, जबकि भारत में स्थिति एकदम विपरीत है, क्योंकि यह अधिकार मूल अधिकार नहीं है तथा यह अत्यधिक विनियमित विधिक अधिकार है।
  - संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान का पाँचवां संशोधन इसकी गारंटी प्रदान करता है कि फौजदारी अपराध के लिए अभियुक्त को 'ग्रैंड ज्यूरी' प्रणाली से गुजरना पड़ेगा। ग्रैंड ज्यूरी का अर्थ यह है कि सरकार द्वारा आम लोगों में से समुदाय का नेतृत्व करने वालों को यादृच्छिक रूप से चुनना। वे अभियुक्त पर आरोपित दोषों का निर्णयन करते हैं। ग्रैंड ज्यूरी में चुने गए लोगों की संख्या 6 से 12 के मध्य होती है और यदि मामला विवादास्पद है तो यह संख्या 12 से भी अधिक हो सकती है। दूसरी तरफ, भारत में आपराधिक मामलों को केवल न्यायाधीशों द्वारा ही निपटाया जाता है।
- इसके अतिरिक्त, संयुक्त राज्य अमेरिका में किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन एवं स्वतंत्रता से **"विधि की सम्यक् प्रक्रिया (Due process of law)"** के बिना वंचित नहीं किया जा सकता।

- **सम्यक् प्रक्रिया** से आशय यह है कि विधि के अवयव एवं प्रक्रिया अवश्य हीं उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत होने चाहिए, जिन्हें न्यायपालिका द्वारा निर्धारित किया जाएगा।
- एक व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से वंचित करने वाली विधायी शक्ति को प्रतिबंधित किया गया है तथा न्यायपालिका द्वारा इसका परीक्षण और मूल्यांकन किया जाता है।

- भारत में एक व्यक्ति को उसके जीवन और स्वतंत्रता से "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" (Procedure established by law) के द्वारा ही वंचित किया जा सकता है।
  - "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" पद वस्तुतः स्वतंत्रता को सीमित करने हेतु विधायिका को व्यापक शक्ति प्रदान करती है।
  - फिर भी, मेनका गाँधी वाद में (भले ही न्यायालय ने "सम्यक् प्रक्रिया" पद का प्रयोग नहीं किया हो) उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया अवश्य हीं उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत होनी चाहिए।
- वर्ष 1978 में भारतीय संसद ने संपत्ति के अधिकार को मूल अधिकारों की सूची से हटा दिया, जबकि, संयुक्त राज्य अमेरिका में अभी भी संपत्ति का अधिकार मूल अधिकारों की सूची में शामिल है और बिना उचित क्षतिपूर्ति के किसी की भी संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया जा सकता है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका के छठे संविधान संशोधन के तहत किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति को कुछ निश्चित अधिकार प्राप्त हैं, जैसे- त्वरित एवं सार्वजनिक जांच, अभियोग के लिए नोटिस, अपने पक्ष में गवाह प्राप्त करने की अनिवार्य प्रक्रिया और अपने पसंद के वकील की सहायता प्राप्त करना।
  - यद्यपि भारत के संविधान में इन सभी अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, फिर भी अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के संरक्षण की व्यापक व्याख्या कर उच्चतम न्यायालय ने इन अधिकारों को प्रदान किया है।
- इसके अतिरिक्त, संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के आठवें संशोधन के अनुसार एक अभियुक्त को जमानत से वंचित नहीं किया जाएगा, आरोपित जुर्माना अधिक नहीं होना चाहिए और प्रदत्त दंड अमानवीय नहीं होने चाहिए। ये अधिकार भारतीयों को भी प्रदत्त हैं, क्योंकि अनुच्छेद 21 के तहत उच्चतम न्यायालय ने एक व्यक्ति के अधिकार के रूप में इनकी अभिपुष्टि की है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान का 9वां संशोधन अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार संविधान में वर्णित कुछ विशिष्ट अधिकारों की व्याख्या, अमेरिकी लोगों के अन्य अधिकारों को अस्वीकार नहीं करेगी। संवैधानिक अधिकारों के बावजूद लोगों को कुछ प्राकृतिक अधिकार भी प्रदान किए गए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान लॉक के द्वारा प्रस्तुत **मानव के अपरिहार्य प्राकृतिक अधिकारों** (Inalienable Natural Rights of Human Being) के दर्शन से प्रभावित है। दूसरी तरफ, भारतीय संविधान में इस तरह का कोई अनुच्छेद नहीं हैं। इसलिए, भारतीयों को वे ही अधिकार प्राप्त हैं जो संविधान में स्वीकृत हैं। ये ऑस्टिन एवं बेन्थम के विधिक सिद्धांतों के दर्शन पर आधारित हैं।

3.9. विधायी शक्ति का वितरण (Distribution Of Legislative Power)

3.9.1. भारत

- भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची विधायी शक्तियों का केंद्र और राज्य सरकारों के मध्य विभाजन करती है। केंद्र और राज्य सरकार को संघ एवं राज्य सूची के अंतर्गत सूचीबद्ध क्रमशः 97 और 66 विषयों पर अनन्य रूप से कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के अंतर्गत 47 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केंद्र और राज्य सरकार दोनों के पास हैं तथा किसी विवाद के मामले में केंद्र सरकार द्वारा निर्मित कानून अभिभावी होगा।

- संघ सूची की 97वीं प्रविष्टि में यह उल्लेख है कि ऐसा कोई भी विषय जो किसी सूची में सूचिबद्ध नहीं है, उसपर कानून बनाने का स्वतः अधिकार संसद को प्राप्त होगा। इस प्रकार, हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा एक सुदृढ़ संघ और कमजोर राज्य सरकार (जिन्हें आर्थिक सहायता हेतु केंद्र सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है) की संकल्पना की गई थी।

3.9.2. संयुक्त राज्य अमेरिका

- संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में इस तरह की कोई व्यापक व्यवस्था नहीं है। कुछ स्पष्ट रूप से उल्लिखित विषय संघ के पास और अन्य विषय राज्य सरकारों के पास होते हैं।

3.10. आपात-काल और रिट का निलंबन

- भारत में युद्ध या बाह्य आक्रमण और सशस्त्र विद्रोह के दौरान आपात-काल की घोषणा की जा सकती है। ऐसी आपात स्थिति के दौरान जीवन के अधिकार के अतिरिक्त अन्य सभी मूल अधिकारों को निलंबित किया जा सकता है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में आपात-काल जैसे किसी वाक्यांश का प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन विद्रोह और सार्वजानिक सुरक्षा के उल्लंघन के मामले में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट को निलंबित किया जा सकता है।

3.11. न्यायपालिका

- अमेरिका में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति हेतु किसी योग्यता का उल्लेख नहीं हैं। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति का निर्णय अंतिम होता है। वह सीनेट को न्यायाधीशों के नाम निर्दिष्ट करता है और सीनेट की सलाह एवं सहमति पर न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। उच्चतम न्यायालय के लिए प्रस्तावित न्यायाधीशों की अर्हताओं का मूल्यांकन करने में सीनेट की न्यायिक समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह न्यायाधीशों की पृष्ठभूमि की जांच करती है, न्यायाधीशों के साथ बैठक कर प्रश्नों के माध्यम से वार्ता का आयोजन कर अन्य तथ्यों की जांच करती है। संपूर्ण प्रक्रिया सार्वजनिक और पारदर्शी तरीके से आयोजित की जाती है। यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के किसी नागरिक को न्यायाधीशों की सत्यनिष्ठा के बारे में कुछ भी ज्ञात हो तो वह इस संबंध में सूचना को प्रमाण के साथ आगे की जांच हेतु सीनेट की न्यायिक समिति के पास भेज सकता है ताकि किसी अयोग्य उम्मीदवार को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त न किया जा सके। न्यायाधीशों की नियुक्ति में अमेरिका के लोग भी भाग लेते हैं और इसमें न्यायपालिका की कोई भूमिका नहीं होती हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति की संपूर्ण प्रक्रिया को पारदर्शी तरीके से संपादित किया जाता है।
- न्यायाधीशों का कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता है। फिर भी, यदि वे 70 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त होते हैं, तो उन्हें एक सेवारत न्यायाधीश के समान वेतन और भत्ता प्राप्त होता है।
- दूसरी तरफ, भारत में न्यायाधीशों की नियुक्ति की संपूर्ण प्रक्रिया न्यायपालिका और कार्यपालिका के मध्य गुप्त रूप से संचालित की जाती है। जन सामान्य को इस संबंध में जानकारी नियुक्ति के बाद ही प्राप्त होती है। ज्ञातव्य है कि न तो जनता को अग्रिम तौर पर सूचित किया जाता है और न ही कार्यपालिका न्यायाधीशों के बारे में खुली जांच करती है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया में भारत के मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय के 4 वरिष्ठ न्यायाधीशों (कॉलेजियम) की प्रभावी और निर्णायक भूमिका होती है। न्यायाधीशों की नियुक्ति की संपूर्ण प्रक्रिया गुप्त रूप से संचालित होती है जिसमें जन सामान्य की कोई भागीदारी नहीं होती है, जिसे कई लोगों द्वारा भारतीय क़ानून प्रणाली में व्याप्त गंभीर दोष माना जाता है। न्यायाधीश अपने पद पर 65 वर्ष की आयु तक बने रहते हैं।

3.12. संविधान का संशोधन

3.12.1. अमेरिकी संविधान में संशोधन

अमेरिकी संविधान में संशोधन करने के दो तरीके हैं:

- कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित और राज्यों द्वारा अभिपुष्टि (मंजूरी);
    - दोनों सदनों द्वारा 2/3 बहुमत से संशोधन का पारित होना, तथा
    - कम से कम ¾ राज्यों के विधान-मंडल द्वारा इसे अनुमोदित करना।
- राज्यों द्वारा प्रस्तावित और राज्यों द्वारा ही अभिपुष्टि;
    - इस हेतु 2/3 राज्यों द्वारा ऐसे प्रस्ताव पारित होने चाहिए,
    - वे कांग्रेस से वार्ता करेंगे और कांग्रेस द्वारा अधिवेशन (convention) का आयोजन किया जाएगा, तथा
    - अधिवेशन के दौरान, इसे ¾ (तीन चौथाई) राज्यों द्वारा अनुमोदित किया जाना आवश्यक है।

3.12.2. भारतीय संविधान में संशोधन

- संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की तुलना भारत के संविधान में संशोधन प्रक्रिया आसान और लचीली है। भारत में, केवल संसद ही संविधान संशोधन का प्रस्ताव पारित कर सकती है और राज्य इस संदर्भ में कोई विशेष भूमिका नहीं निभाते हैं।
- कुछ अनुच्छेद साधारण बहुमत से संशोधित हो सकते हैं, कुछ विशेष बहुमत द्वारा, जबकि, कुछ सीमित अनुच्छेद विशेष बहुमत और 50% से अधिक राज्यों के अनुसमर्थन के पश्चात् ही संशोधित हो सकते हैं।
- यहाँ साधारण बहुमत का अर्थ, जिस दिन संशोधन किया जाना है, उस दिन संसद में उपस्थित सांसदों के बहुमत से हैं, न कि संसद की कुल सदस्य संख्या से।

वास्तविकता यह है कि विगत 225 वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान केवल 27 बार संशोधित हुआ है, जो यह प्रदर्शित है कि भारत की तुलना में संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के संशोधन की प्रक्रिया कितनी कठोर है।

4. चीन का संविधान

- चीन एक समाजवादी देश है, जहाँ समाजवादी विचारधारा की सर्वोच्चता विद्यमान है। चीन का संविधान चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (Communist Party of China: CPC) के नेतृत्व को स्वीकार करता है।
- CPC विश्व की सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी में से एक है (वर्तमान में BJP विश्व की सबसे बड़ी पार्टी बन गई है), जिसमें स्थानीय स्तर पर सदस्यों की संख्या लाखों में हैं। यह लोकतांत्रिक केन्द्रवाद (Democratic Centralism) के सिद्धांत पर कार्य करती है। पार्टी की पूर्ण बैठक, जिसे नेशनल पार्टी कांग्रेस (NPC) कहा जाता है, पांच वर्षों में एक बार आयोजित होती है। यद्यपि, सैद्धांतिक रूप से, सभी शक्तियां जनता में निहित होती हैं, लेकिन व्यवहार में यह शीर्ष नेताओं के पास ही रहती हैं।
- नेशनल पार्टी कांग्रेस के सदस्य केन्द्रीय समिति (सेंट्रल कमिटी) के सदस्यों का चयन करते हैं। केन्द्रीय समिति, पोलित ब्यूरो का चयन करती है (जिसमें लगभग 200 सदस्य होते हैं)। पोलित ब्यूरो द्वारा अपनी स्थायी समिति (स्टैंडिंग कमिटी) का चयन किया जाता है (वर्तमान में इसके सदस्यों की संख्या 24 है जो पार्टी के सबसे शक्तिशाली सदस्य होते हैं)।

4.1. चीन के संविधान की प्रमुख विशेषताएं (Salient Features Of The Constitution)

4.1.1. प्रस्तावना

- यहाँ राजनैतिक प्रणाली के वैचारिक लक्ष्यों के संबंध में मार्क्सवाद, लेनिनवाद और माओ की शिक्षाओं को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। संवैधानिक ढांचे के अंतर्गत पारंपरिक रूप से लोकतांत्रिक केन्द्रवाद के सिद्धांत को भी विशेष स्थान दिया गया है। चीन की पुरानी परिभाषा अर्थात् "सर्वहारा की एकसत्तावाद" (Dictatorship of the Proletariat) को "जनवादी लोकतांत्रिक एकसत्तावाद" (People's Democratic Dictatorship) से प्रतिस्थापित कर दिया गया है।
- प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से ताइवान को चीन के एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया है और इसकी मुक्ति (liberation) को चीनी लोगों के दायित्व के रूप में घोषित किया गया है। विदेशी संबंधों के क्षेत्र में पांच बिंदुओं को अन्तर्निहित सिद्धांत के रूप में अपनाया है। इसमें शामिल है:
  - सभी राष्ट्रों की क्षेत्रीय अखंडता का सम्मान और संरक्षण करना;
  - आक्रामक नीति का त्याग करना;
  - दूसरे राष्ट्रों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना;
  - अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का संवर्धन; और
  - शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।

4.1.2. संविधान की प्रकृति

- चीन के संविधान की विषय-वस्तु और विचारधारा भूतपूर्व सोवियत संघ के संविधान के साथ समानता दर्शाती है। यह न तो अत्यधिक कठोर है और न ही अत्यधिक लचीली।

4.1.3. आधारभूत सिद्धांत

- संविधान के तहत, पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना (जनवादी चीनी गणराज्य) एक समाजवादी राज्य (Socialist State) है, जिसकी स्थापना जनवादी लोकतांत्रिक एकसत्तावाद (People's Democratic dictatorship) के नाम पर हुई है, जिसमें जनता का मार्गदर्शन करने का उत्तरदायित्व कम्युनिस्ट पार्टी का है। जनता को शक्ति और सत्ता के स्रोत के रूप में घोषित किया गया है और वे इस शक्ति का प्रयोग नेशनल पीपुल्स कांग्रेस के माध्यम से करेंगे।

4.1.4. एकात्मक प्रणाली

- जनवादी चीनी गणराज्य एक एकात्मक बहु-राष्ट्रीय राज्य (मल्टी-नेशनल स्टेट) है जिसका निर्माण इसकी राष्ट्रीयता धारण करने वाले सभी लोगों द्वारा संयुक्त रूप से किया गया है।
- चीन में, एक सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार मौजूद है जबकि क्षेत्रीय सरकारें, पृथक सत्ता के रूप में विद्यमान हैं, जिन्हें संविधान के तहत निर्मित नहीं किया गया है। इसलिए नीति-निर्माण में लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहित करने और सार्वजनिक मामलों में उनके हितों की रक्षा करने के लिए, सरकारी मामलों में विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया को आरंभ किया गया है। केन्द्रीय सरकार ने क्षेत्रीय और स्थानीय प्रशासनिक इकाईयों को अत्यधिक अधिकार और शक्तियाँ प्रत्यायोजित की हैं।

4.1.5. लोकतांत्रिक केंद्रवाद (Democratic Centralism)

- भूतपूर्व सोवियत संघ की राजनैतिक प्रणाली के समान, जनवादी चीनी गणराज्य में भी "लोकतांत्रिक केंद्रीय अधिकारवाद का सिद्धांत" पूर्ण रूप से लागू है। लोकतांत्रिक मापदंडों को ध्यान में रखते हुए, चुनावी प्रक्रिया का सिद्धांत केवल सरकारी संस्थानों के भीतर ही नहीं बल्कि पार्टी संगठन के स्तर पर भी शुरू किया गया है। देश के सभी नागरिकों को वयस्क मताधिकार के आधार पर मतदान करने का अधिकार प्राप्त है।

4.1.6. एक दलीय प्रणाली (One Party System)

- कम्युनिस्ट पार्टी देश के संवैधानिक ढांचे के भीतर लगभग एकसत्तावादी शक्तियों का उपयोग करती है और इसे सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए राजनैतिक प्राधिकार के एकमात्र स्रोत के रूप में माना गया है।
- पार्टी संगठन सरकारी संस्थाओं के समानांतर संचालित है। सरकार में सभी उच्च पदों पर पार्टी के उच्च-वर्ग (Party elite) के लोगों का आधिपत्य है।
- व्यवहार में, किसी अन्य राजनीतिक दल को कार्य करने की वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है।
    - कुछ विशेष युवा संगठनों को, जो पार्टी और पार्टी के साथ संबद्ध कार्य समूह के प्रति निष्ठावान होते हैं, उन्हें निर्णय-प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार है।

4.1.7. विधायिका (Legislature)

- राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस (National People's Congress: NPC) विधायी शाखा को समाविष्ट करता है।
- यह 3,000 से अधिक सदस्यों वाली एक सदनीय विधायिका है।
- सैद्धांतिक रूप से, यह चीन की निर्णय-निर्माण करने वाली शीर्ष निकाय है। यह नीतियों, संशोधनों और सरकार में मंत्रियों की नियुक्ति पर अंतिम निर्णय देती है।
- इसे एक ऐसे अंग के रूप में घोषित किया गया है जिसके माध्यम से लोग राज्य शक्ति का उपयोग करते हैं।
- इसके सदस्यों का चुनाव, अपने-अपने कोटे के अनुसार, क्षेत्रीय कांग्रेस, स्वायत्त क्षेत्रों, केन्द्रीय सरकार के अधीन कार्यरत नगरपालिकाओं और पीपुल्स लिबरेशन आर्मी द्वारा किया जाता है।
- चुनाव का प्रकार गुप्त मतदान पर आधारित है, जबकि संविधान स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव की गारंटी देता है।
- NPC का वास्तविक कार्य इसके एक छोटे से निकाय के द्वारा किया जाता है, जो NPC की **स्थायी समिति (स्टैंडिंग कमिटी)** कहलाती है। यह लगभग 150 सदस्यों से मिलकर बनी है।

अवधि

- कांग्रेस का चुनाव 5 वर्षों के लिए होता है लेकिन यह अपने कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व भी विघटित हो सकती है या इसके कार्यकाल को बढ़ाया भी जा सकता है। कांग्रेस की स्थायी समिति, कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व नया चुनाव आयोजित करने की संपूर्ण तैयारी करने के लिए उत्तरदायी है।

सत्र

- कांग्रेस का सत्र वर्ष में एक बार बीजिंग में आयोजित होता है। कांग्रेस की स्थायी समिति सामान्यतः सत्र को आहूत करती है। इसके अतिरिक्त, कांग्रेस के 1/5 सदस्यों के अनुरोध पर इसका अध्यक्ष भी सत्र आहूत कर सकता है।

शक्तियां

- NPC विधि-निर्माण की सर्वोच्च निकाय है, जो कानून बनाने, मौजूदा कानूनों में परिवर्तन करने या निरसन करने हेतु पूर्ण रूप से अधिकृत है। यह राज्य के लिए प्रशासकीय नीतियों को भी मंजूरी प्रदान करता है।

(i) कानून का अधिनियमन

- अपने सत्र के दौरान कांग्रेस नए कानूनों को बनाती है और परिस्थिति के अनुसार मौजूदा नीतियों में आवश्यक परिवर्तन भी करती है। संविधान का संशोधन कांग्रेस के 2/3 सदस्यों के बहुमत से ही किया जा सकता है जबकि, अन्य कानून साधारण बहुमत से ही अधिनियमित हो जाते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि कांग्रेस के कार्यों को उच्चतम न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

(ii) कार्यकारी शक्तियां

- NPC को संविधान के तहत संवैधानिक कानून और विधियों के कार्यान्वयन की निगरानी का भी अधिकार प्राप्त है। यह अपनी पसंद के अनुसार सर्वोच्च सार्वजनिक अधिकारियों की नियुक्ति के माध्यम से प्रशासकीय नीतियों को नियंत्रित और प्रभावित कर सकती है। अपने विभागीय कार्यों के निष्पादन के संदर्भ में सभी प्रशासनिक विभाग अपने मंत्रियों के साथ कांग्रेस के प्रति जवाबदेह होते हैं। कांग्रेस अपनी शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रीय आर्थिक नीति और वार्षिक बजट के अनुमोदन में भी करती है। संविधान के तहत कांग्रेस अपने कार्य के दायरे में आने वाली ऐसी सभी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अधिकृत है जिसे वह पूरी तरह से उचित और आवश्यक समझे।

(iii) निर्वाचक शक्तियां

- NPC सरकारी प्राधिकरणों के उच्च पदों पर आसीन होने वाले व्यक्तियों के चुनाव करने की शक्ति के आधार पर सरकारी ढांचे के भीतर एक निर्णायक स्थान रखती है। संविधान के तहत, यह गणराज्य के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का भी चुनाव करती है तथा राष्ट्रपति की सिफारिश पर राज्य परिषद के प्रमुख/प्रधानमंत्री (Premier of the State Council) की नियुक्ति करती है। यह प्रधानमंत्री के सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करती है। कांग्रेस को मंत्रियों को हटाने की भी शक्ति प्राप्त होती है। साथ ही, इसे सुप्रीम कोर्ट के प्रेसिडेंट और सुप्रीम प्रोक्यूरेट के मुख्य प्रोक्यूरेटर (Chief Procurator of the Supreme Procurate) की नियुक्ति अथवा उन्हें पद से हटाने की शक्ति प्राप्त है।
- हालांकि, संविधान द्वारा NPC को पूर्ण रूप से उपर्युक्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अधिकृत किया गया है, परंतु व्यवहार में यह एक सक्रिय निकाय नहीं है। कानून बनाने वाले स्वतंत्र निकाय के रूप में इसकी स्थिति केवल सैद्धांतिक स्तर तक ही सीमित है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:
    - इसका सत्र यदाकदा ही नियमित तौर रूप से आयोजित होता है।
        - इसकी बैठक वर्ष में केवल एक बार ही आयोजित होती है और वो भी केवल कुछ दिनों के लिए।
    - कांग्रेस की शक्तियों का वास्तविक प्रयोग इसकी स्थायी समिति द्वारा ही किया जाता है।

स्थायी समिति (Standing Committee)

- कांग्रेस की स्थायी समिति एक प्रभावी और सक्रिय निकाय है तथा यह व्यवहार में कांग्रेस की अधिकाधिक शक्तियों का प्रयोग करती है। परन्तु, सैद्धांतिक रूप में यह कांग्रेस का एक अधीनस्थ निकाय है। यह अपने मुख्य निकाय के प्रति उत्तरदायी भी है और यह अपने कार्यकलापों के बारे में कांग्रेस को नियमित रूप से सूचित करने के लिए बाध्य है। समिति के सभी सदस्य कांग्रेस द्वारा निर्वाचित होते हैं और इसी के विवेकाधिकार पर हटाए भी जाते हैं।

शक्तियां

- यह समिति, कांग्रेस के सत्र को आहूत करती है और साथ ही नए चुनाव कराने का आदेश भी जारी करती है।
- यह संविधान के नियमों के साथ-साथ विभिन्न विधानों की व्याख्या का कार्य करती है। इस तरह के न्यायिक प्रकृति के कार्यों का निष्पादन इसके महत्व और शक्ति के दायरे में वृद्धि करता है।
- यह स्टेट काउंसिल, उच्चतम न्यायालय और प्रोक्यूरेटर की कार्य-प्रणाली का निरीक्षण करती है। ये कार्य संविधान के द्वारा स्थायी समिति को प्रदान किए गए हैं।
- समिति को सरकारी विभागों, स्वायत्त क्षेत्रों, प्रांतों और यहाँ तक कि केंद्र सरकार के अधीन कार्य करने वाली नगरपालिकाओं के द्वारा लिए गए अनुचित निर्णयों को परिवर्तित या निरस्त करने का अधिकार है।
- कांग्रेस के सत्र में न रहने के दौरान यह वास्तव में मूल शक्तियों का स्रोत है। इस अवधि के दौरान, प्रीमियर (प्रधानमंत्री) की सलाह पर यह नए मंत्रियों की नियुक्ति और पुराने मंत्रियों को हटाने संबंधी आदेश जारी करती है। यह उपराष्ट्रपति और उप मुख्य प्रोक्यूरेटर (Deputy Chief Procurator) की नियुक्ति या उन्हें हटाने का आदेश जारी कर सकती है।

अध्यक्ष

- समिति के अध्यक्ष को राजनीतिक व्यवस्था में सबसे शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में माना गया है। वह स्थायी समिति की बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसे डिक्री और अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है। इसके कर्तव्यों की सूची में निम्नलिखित शामिल हैं:
    - अन्य देशों के राजनयिकों का स्वागत करना;
    - अन्य देशों के साथ किए गए समझौता की पुष्टि करना; और
    - अन्य देशों के लिए राजनयिकों के समूह को नियुक्त करना।

अन्य समितियां

- जनवादी कांग्रेस अपने कार्यकाल के दौरान कई समितियों का गठन करती है, जैसे - वित्तीय और आर्थिक मामलों की राष्ट्रीय समिति; शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति और स्वास्थ्य के मुद्दों की समिति; विदेशी मामलों की समिति; अप्रवासी चीनी लोगों से संबंधित मामलों की समिति इत्यादि। ये सभी समितियां कांग्रेस के सत्र में न रहने पर इस अवधि के दौरान NPC की स्थायी समिति के पर्यवेक्षण में कार्य करती हैं।
- स्थायी समिति की शक्तियों और कार्यों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि यह एक शक्तिशाली और प्रभावी अंग है। जैसाकि कांग्रेस का वार्षिक सत्र केवल कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाता है, तो शेष अवधि के लिए जब कांग्रेस सत्र में नहीं होती है तो इसकी शक्तियों का मुख्य रूप से स्थायी समिति द्वारा प्रयोग किया जाता है। समिति के सदस्य, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य होने के कारण प्रशासनिक मामलों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4.1.8. कार्यपालिका (Executive)

4.1.8.1. राज्य परिषद (स्टेट काउंसिल)

- स्टेट काउंसिल ही चीन की कार्यपालिका या मंत्रिमंडल है। इसका गठन एक प्रीमियर (प्रधानमंत्री), चार उप प्रीमियर और राज्य काउन्सलरों से मिलकर हुआ है। संविधान के अंतर्गत, स्टेट काउंसिल सरकार का मुख्य कार्यकारी अंग है। इसके सभी सदस्यों का चुनाव कांग्रेस द्वारा किया जाता है और ये उसी के प्रति जवाबदेह होते हैं। स्टेट काउंसिल का मुख्य कार्य, कानून का प्रवर्तन करना तथा प्रशासनिक नीतियों का निर्माण और क्रियान्वयन करना है। स्टेट काउंसिल के सदस्य विधेयक को प्रस्ताव के रूप में कांग्रेस के पटल पर रखते हैं जिसे बाद में संसदीय प्रक्रिया के द्वारा कानून के रूप में परिवर्तित किया जाता है।

4.1.8.2. प्रधानमंत्री (Premier)

- प्रधानमंत्री प्रशासन के प्रमुख के रूप में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा प्रशासनिक तंत्र में एक निर्णायक स्थिति रखता है।

4.1.8.3. राष्ट्रपति

- चीनी गणराज्य का राष्ट्रपति, राज्य का प्रमुख होता है।
- वह कांग्रेस के द्वारा 5 वर्षों के लिए चुना जाता है।
- राष्ट्रपति को प्रशासनिक तंत्र में सर्वाधिक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त होता है।
- देश के संविधान के तहत, राष्ट्रपति का पद सीमित शक्तियों वाला मुख्यतः एक औपचारिक पद है। हालाँकि, 1993 के पश्चात् से, यह परिपाटी रही है कि राष्ट्रपति द्वारा कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ चाइना के महासचिव के साथ-साथ सेना प्रमुख का भी पद धारण किया जाता है। राष्ट्रपति के पद को आधिकारिक रूप से प्रशासनिक पद के बजाय राज्य की संस्थान के रूप में माना जाता है। सैद्धांतिक रूप से, राष्ट्रपति नेशनल पीपुल्स कांग्रेस के अधीन कार्य करता है और वह अपने विशेषाधिकार के आधार पर कार्यकारी कार्रवाई करने हेतु कानूनी रूप से अधिकृत नहीं है।
- राष्ट्रपति के पास कानूनों को लागू करने, प्रधानमंत्री का चयन करने और उसे पदच्युत करने के साथ-साथ राज्य परिषद के मंत्रियों, राष्ट्रपतीय क्षमादान प्रदान करने, आपातकाल की उद्घोषणा करने, वृहत स्तर पर लामबंदी का आदेश जारी करने और राजकीय सम्मान जारी करने की शक्ति है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति अन्य देशों में चीनी राजदूतों को नियुक्त कर सकता है और उन्हें हटा सकता है तथा विदेशी संस्थाओं के साथ संधि कर सकता है या मौजूदा संधियों को निरस्त कर सकता है। संविधान के प्रावधानों के अनुसार, उपर्युक्त सभी शक्तियों को नेशनल पीपुल्स कांग्रेस के अनुमोदन या पुष्टि की आवश्यकता है।
- राष्ट्रपति के पद के लिए व्यक्ति को संपूर्ण निर्वाचन अधिकार प्राप्त होने के साथ-साथ चीनी नागरिक होना चाहिए। राष्ट्रपति के पद के लिए 45 वर्ष की आयु होनी चाहिए। वर्ष 2018 तक, यह प्रावधान था कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद पर कोई व्यक्ति दो अवधि तक ही नियुक्त हो सकता था। मार्च 2018 में नेशनल पीपुल्स कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति पद से संबंधित इस सीमा को समाप्त करने हेतु संवैधानिक संशोधन पारित किया गया, जिसने वर्तमान राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति को अनिश्चित काल तक पद पर बने रहने की अनुमति प्रदान की गई। वर्ष 1976 में माओ-त्से-तुंग की मृत्यु के उपरांत चीन के संविधान में राष्ट्रपति पद के लिए पाँच वर्षीय दो अवधियों का प्रावधान किया गया था। इस व्यवस्था को डेंग जियाओपिंग द्वारा लागू किया गया था, जिन्होंने एक-व्यक्ति के शासन और व्यक्तित्व आधारित राजनीति (cult of personality) के खतरों को पहचाना और इनके स्थान पर सामूहिक नेतृत्व का समर्थन किया। यह संवैधानिक संशोधन वर्तमान राष्ट्रपति शी जिनपिंग की विचारधारा "शी जिनपिंग विचार" (Xi Jinping thought) के साथ-साथ उनके पूर्ववर्ती हू जिंताओ के "वैज्ञानिक विकास" सिद्धांत को भी प्रतिष्ठापित करता है।

4.1.9. न्यायपालिका

- चीन में एक प्रतिबद्ध न्यायपालिका है अर्थात जो समाजवाद के लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्ध है। इसका उच्चतर निकाय सर्वोच्च जनवादी न्यायालय (Supreme People’s Court) है। चीन में एक कोर्ट ऑफ़ प्रोक्यूरेटरेट्स (Court of Procuratorates) भी है जो अधिकारियों के भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों को देखता है।

- चीनी कानूनों को कभी भी व्यवस्थित रूप से संहिताबद्ध नहीं किया गया है। अधिकांश विवादों और झगड़ों का निपटारा अर्ध-न्यायिक संस्थाओं द्वारा ही कर दिया जाता है। चीनी न्यायिक प्रणाली कानून के बजाय परम्पराओं द्वारा अधिक संचालित है।

4.1.10. केंद्रीय सैन्य आयोग (Central Military Commission)

- पार्टी और सरकार, केंद्रीय सैन्य आयोग के माध्यम से सेना पर नियंत्रण बनाए रखती है।
- सेना को कम्युनिस्ट पार्टी के रक्षक के रूप में भी वर्णित किया गया है।

4.1.11. अधिकार और कर्तव्य

अधिकार

- चीनी संविधान अपने नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करता है और कुछ कर्तव्यों का भी प्रावधान करता है।
- 18 वर्ष तथा उससे अधिक आयु के सभी नागरिकों को मतदान करने का अधिकार प्राप्त है। उन्हें चुनाव लड़ने का भी अधिकार प्राप्त है। सभी तरह के पत्राचार की गोपनीयता, वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संघ में शामिल होने या संघ बनाने की स्वतंत्रता तथा सार्वजनिक बैठकों का आयोजन करना और साथ ही धरना प्रदर्शन करने अथवा अपने अधिकारों की मांग के लिए हड़ताल करने के अधिकार को संविधान के तहत संरक्षित किया गया है।
- संविधान के अनुसार, सरकार पूरी तरह से एक व्यक्ति की सत्यनिष्ठा के अतिरिक्त उसके पारिवारिक जीवन के संरक्षण के लिए बाध्य है। सभी नागरिकों को गैर-क़ानूनी गिरफ्तारी के विरुद्ध व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है। संविधान द्वारा सभी नागरिकों को शिक्षा का अधिकार और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का समान अधिकार प्रदान किया गया है। जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों और महिलाओं को समानता का दर्जा प्रदान किया गया है।

कर्त्तव्य

- चीनी संविधान अपने नागरिकों के लिए स्पष्ट रूप से कुछ कर्त्तव्यों का निर्धारण करता है जो प्रवर्तनीय (justifiable) हैं। नागरिकों का यह प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है कि वे प्रत्येक प्रकार से साम्यवादी नेतृत्व को सहयोग प्रदान करें तथा संविधान और अन्य राज्य क़ानूनों का पालन करें।
- साथ ही वे सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करें और कानून व्यवस्था को बनाए रखने में अपना सहयोग दें। नागरिकों का एक अन्य कर्त्तव्य यह भी है कि वे विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध देश की रक्षा करें।

4.1.12. चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (Communist Party of China)

- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी वर्ष 1921 में अस्तित्व में आयी। लेनिन ने अपने एक प्रतिनिधि को नव-स्थापित पार्टी को व्यवस्थित करने में सहायता करने के लिए चीन भेजा। चेंग तू-हिसू (Cheng Tu-hisu) को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का प्रथम महासचिव नियुक्त किया गया था। अत्यंत कम अवधि में ही अनेक कस्बों और शहरों में पार्टी की कई शाखाओं की स्थापना की गयी।

4.1.12.1. विचारधारात्मक आधार (Ideological Foundations)

- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की विचारधारा अपनी स्थापना के समय से ही लेनिन और मार्क्स के शिक्षाओं से प्रेरित थी। इसने अपने प्रारंभिक दौर में, वैश्विक कम्युनिस्ट आन्दोलन के साथ गहरा संबंध विकसित किया था। चीनी लोगों के साम्यवादी संघर्ष में माओ ने भी निर्णायक भूमिका निभाई थी।

4.1.12.2. पार्टी संगठन

- यह पार्टी लोकतांत्रिक केन्द्रवाद के सिद्धांत पर आधारित है। तदनुसार पार्टी के सभी पदाधिकारियों का चयन किया जाता है। पार्टी की प्राथमिक इकाई (Primary unit) द्वारा जिला कांग्रेस का चयन किया जाता है जबकि जिला कांग्रेस द्वारा ऊपरी स्तर के कांग्रेस के प्रतिनिधियों का चयन किया जाता है।
- पार्टी के सदस्यों को पार्टी नेतृत्व की आलोचना करने का भी अधिकार प्राप्त है और इनके द्वारा पार्टी की नीतियों को तैयार करने संबंधी प्रस्ताव को प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी प्रकार, पार्टी की प्राथमिक शाखा अपनी शिकायत उच्च स्तरीय नेतृत्व के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है।
- दूसरी तरफ, पार्टी द्वारा कठोर अनुशासन स्थापित किया जाता है और निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में केन्द्रीयता के सिद्धांत का पालन किया जाता है। पार्टी में निचले स्तर के सदस्य, पार्टी के उच्च नेतृत्व के निर्णयों को मानने के लिए बाध्य होते हैं।

4.1.12.3. पोलित ब्यूरो

- इसे निर्णय लेने की प्रक्रिया में सर्वाधिक शक्तिशाली निकाय के रूप में माना जाता है क्योंकि यह न केवल सभी महत्वपूर्ण निर्णय लेता है बल्कि पार्टी की केंद्रीय समिति के सत्र को भी आहूत करता है। इसके पास 7 सदस्यों की एक स्थायी समिति होती है। जब केंद्रीय समिति सत्र में नहीं रहती है तो पोलित ब्यूरो की स्थायी समिति, सरकार के भीतर अपने समकक्ष की भांति, केंद्रीय समिति की सभी शक्तियों का प्रयोग करती है।

4.1.12.4. नेशनल कांग्रेस ऑफ़ कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ चाइना (NCCPC)

- पार्टी की नीति-निर्माण में NCCPC को निर्णायक स्थिति प्राप्त है। कांग्रेस के सदस्य {जो हजारों की संख्या में होते हैं (संख्या निश्चित नहीं है)} 5 वर्षों के लिए संबंधित क्षेत्रीय और स्थानीय पार्टी कांग्रेस द्वारा चुने जाते हैं।

4.1.12.5. केंद्रीय समिति

- NCCPC का सत्र 5 वर्षों में एक बार (कुछ दिनों के लिए) ही आयोजित होता है। केंद्रीय कार्यकारी समिति, जो सीमित सदस्यों से मिलकर बनी होती है, कांग्रेस के सत्र में न रहने पर उसकी शक्तियों का प्रयोग करती है। व्यवहार में, केंद्रीय कार्यकारी समिति की शक्तियों का प्रयोग इसके पोलित ब्यूरो द्वारा किया जाता है, क्योंकि केंद्रीय कार्यकारी समिति की बैठक यदाकदा ही आयोजित होती है। केंद्रीय समिति पोलित ब्यूरो के सदस्यों के साथ-साथ इसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का भी चुनाव करती है।

4.1.12.6. अन्य दल और समूह

- चीनी जनवादी गणराज्य में, पूर्ण रूप से सोवियत संघ के समान एकल पार्टी प्रणाली नहीं अपनायी गयी है, बल्कि छोटी पार्टियों, जैसे- कुओमिंतांग रेवोल्यूशनरी कमिटी, डेमोक्रेटिक लीग, नेशनल कंस्ट्रक्शन एसोसिएशन और विभिन्न युवा संगठनों को कार्य करने की अनुमति प्रदान की गयी है। इसलिए चीन एक बहु-राष्ट्रीय और बहु-दलीय देश है। चीन में, लोकतांत्रिक दलों से आशय चीनी साम्यवादी दल के अतिरिक्त 8 अन्य दलों से है। नई व्यवस्था की स्थापना के पश्चात् से इन दलों ने विभिन्न स्तरों पर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ सहयोग विकसित किया है।

- लेकिन, चीन में कम्युनिस्ट पार्टी को राजनैतिक एकाधिकार प्राप्त है, जबकि अन्य पार्टियों का केवल क़ानूनी रूप से ही अस्तित्व है। पार्टी संगठन का संचालन सरकार के समानांतर होता है। एक व्यक्ति के सरकारी अधिकारी के रूप में महत्वपूर्ण पद पर रहते हुए उसे पार्टी के भीतर भी जिम्मेदारी प्रदान की जाती है। पार्टी का केंद्रीय नेतृत्व मुख्य रूप से सरकारी नीतियों की रूपरेखा तैयार करने के लिए उत्तरदायी है। किसी भी सरकारी विभाग का महत्व केवल क़ानूनी स्थिति के आधार पर नहीं आंका जा सकता है क्योंकि पार्टी के अंदर इसकी भूमिका भी महत्व रखती है।

5. फ्रांसीसी संविधान (French Constitution)

5.1. भूमिका

- फ्रांस को **'राजनीतिक परीक्षण की प्रयोगशाला'** (Laboratory of Political experiment) के रूप में जाना जाता है।
- यहाँ सरकार का एकात्मक रूप है और सरकार की प्रकृति सेमी-प्रेसिडेंशियल (अर्द्ध-अध्यक्षीय) है।
- इसमें कुछ विशेषताएँ संसदीय प्रणाली की हैं और अन्य विशेषताएँ प्रेसिडेंशियल (अध्यक्षीय) प्रणाली की हैं।
- फ्रांसीसी संसद को विधि-निर्माण की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त नहीं है। विधायिका केवल एक निर्धारित सूची के तहत सम्मिलित विषयों पर ही कानून बना सकती है, जबकि शेष विषय राष्ट्रपति के अधीन होते हैं (अर्थात् शेष विषयों पर वह कानून बनाता है)।
- संभवत: यह एकमात्र लोकतांत्रिक संविधान है जो कार्यकारिणी की सर्वोच्चता (Supremacy of Executive) के सिद्धांत पर आधारित है।
- ऐतिहासिक रूप से फ्रांस को राजनीतिक अस्थिरता का सामना करना पड़ा। इसलिए, 5वें गणतंत्र (रिपब्लिक) के संविधान में 5 वर्ष की एक निश्चित अवधि के साथ, एक मजबूत राष्ट्रपति का प्रावधान किया गया है और उसे अत्यधिक शक्तियां प्रदान की गई हैं।

5.2. राष्ट्रपति

- फ्रांस का राष्ट्रपति फ्रेंच प्रणाली के भीतर और विश्व के अन्य सभी लोकतांत्रिक देशों की कार्यकारिणी की तुलना में सर्वाधिक शक्तिशाली है।
- इसमें अमेरिका के राष्ट्रपति पद का विशेषाधिकार, अर्थात् कार्यकाल की सुरक्षा और सरकार के प्रमुख के साथ राज्य प्रमुख होने तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री के कार्यालय के विशेषाधिकार, अर्थात् विधान सभा को भंग करने की शक्ति (जो अमेरिकी राष्ट्रपति को प्राप्त नहीं है) सम्मिलित हैं।
- फ्रांस में प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति दोनों के पदों का प्रावधान है।
  - फ्रांसीसी प्रधानमंत्री, भारत और ब्रिटेन के विपरीत, राष्ट्रपति का सहायक होता है।
  - दोनों पदों में शक्ति के विभाजन के बजाय, कार्यों का विभाजन हैं।
    - फ्रांस का राष्ट्रपति विदेश नीति और राष्ट्रीय मुद्दों को देखता है।
    - दूसरी ओर, प्रधानमंत्री के अधीन सरकार के प्रतिदिन के नियमित कार्य और स्थानीय घरेलू मुद्दे होते हैं।

- प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है-
  - राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री के चुनाव में पूर्ण खुली छुट प्राप्त नहीं है;
  - प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त व्यक्ति को सदन का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।
- **'सहजीवन' (Cohabitation)** की अवधारणा'
  - एक ऐसी स्थिति, जहां राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री भिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य होते हैं।
- प्रधानमंत्री, अपने कैबिनेट के सहयोगियों को चुन सकता है।
- सरकार का कोई भी सदस्य विधायिका का भाग नहीं हो सकता है।
- कैबिनेट का संचालन राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।
- निम्न सदन, प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रीपरिषद के विरुद्ध 'निंदा प्रस्ताव' पारित कर सकता है। प्रस्ताव पारित होने पर उन्हें निश्चित रूप से त्यागपत्र देना होता है।
- राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है। प्रारंभ में पदावधि 9 वर्ष थी, तत्पश्चात इसे घटाकर 7 वर्ष की गयी और वर्तमान में यह अवधि 5 वर्ष है।
- राष्ट्रपति चुनाव में **द्वितीय मतदान (Second Ballot)** प्रणाली का अनुसरण किया जाता है। (अर्थात् मतदान में शामिल कुल मतों के **पूर्ण बहुमत** की आवश्यकता होती है।)
  - फ्रांस गणराज्य के राष्ट्रपति को मतों के पूर्ण बहुमत से निर्वाचित किया जाता है; यदि चुनाव के पहले दौर में, किसी भी व्यक्ति को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता है तब केवल शीर्ष दो उम्मीदवारों को छोड़कर बाकी सभी उम्मीदवारों को हटा दिया जाता है। तदुपरान्त चुनाव का दूसरा दौर संपन्न होता है, जिसमें एक व्यक्ति पूर्ण बहुमत प्राप्त करने में सक्षम होता है।

5.2.1. राष्ट्रपति का हटाया जाना

- फ्रांस के राष्ट्रपति को अमेरिकी राष्ट्रपति के समान आधार पर ही महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है। हालांकि, इसकी प्रक्रिया अस्पष्ट है।
- संविधान के अनुच्छेद 67 में कहा गया है कि दोनों सदनों को समान प्रस्ताव पारित करना चाहिए।
- इसके बाद, राष्ट्रपति के मामले का एक विशेष निकाय द्वारा समाधान किया जाता है जिसे **हाई कोर्ट ऑफ जस्टिस** कहा जाता है।
- यह निकाय सरकार के मंत्रालयों द्वारा राज्य के विरुद्ध भ्रष्टाचार और षड्यंत्र के मामलों की भी जांच करता है।

5.2.2. राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियां

- संविधान का अनुच्छेद 16, राष्ट्रपति को वास्तविक आपात शक्तियां प्रदान करता है। इस स्थिति में उसे असीमित शक्तियां प्राप्त होती हैं और यह लोकतांत्रिक तानाशाही या लोकतांत्रिक तख्तापलट (democratic coup-d'etat) के समान है।

5.2.3. अमेरिका और फ्रांस के राष्ट्रपतियों का तुलनात्मक विश्लेषण

- अमेरिकी राष्ट्रपति विधानसभा को भंग नहीं कर सकता, जबकि फ्रांस का राष्ट्रपति ऐसा कर सकता है। इस पर सीमा केवल यह है कि वह ऐसा वर्ष में दो बार से अधिक नहीं कर सकता है।
- अमेरिकी राष्ट्रपति के विपरीत, फ्रांस का राष्ट्रपति अनुच्छेद 16 के तहत तानाशाही शक्तियां ग्रहण कर सकता है।

5.2.4. फ्रांस के राष्ट्रपति और ब्रिटिश प्रधानमंत्री का तुलनात्मक विश्लेषण

- ब्रिटिश प्रधानमंत्री केवल तब तक अपने पद पर बना रह सकता है जब तक उसे निचले सदन में बहुमत प्राप्त होता है। दूसरी तरफ, फ्रांस का राष्ट्रपति, एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है।

5.3. विधायिका (Legislature)

- फ्रेंच प्रणाली में विधायिका स्पष्ट रूप से कार्यपालिका के अधीनस्थ होती है। संविधान का अनुच्छेद 37, फ्रांसीसी संसद की विधायी शक्तियों का स्पष्ट सीमांकन करता है। इसमें कहा गया है कि संसद केवल संविधान में उल्लिखित मामलों पर ही कानून बना सकती है। अन्य सभी मामलों में सरकार साधारण आदेश या डिक्री द्वारा कानून बना सकती है।
- राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के माध्यम से सीधे असेंबली (विधानसभा) के विधायी कार्यों को प्रभावित कर सकता है। यदि असेंबली किसी विशेष विधेयक से सहमत नहीं है तो राष्ट्रपति द्वारा उसे जनमत संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।
- फ्रांसीसी संसद, दो सदनों से मिलकर बनी है: **नेशनल असेंबली** और **सीनेट**।

5.3.1. नेशनल असेंबली (National Assembly)

- अन्य द्विसदनीय संसदों के मामलों के समान, फ्रेंच द्विसदनीय प्रणाली भी एक असमान प्रणाली है, क्योंकि यहां नेशनल असेंबली को सीनेट की तुलना में अधिक व्यापक अधिकार प्राप्त हैं:
    - यह अकेले सरकार को 'बहुमत' प्रदान करने से मना करके या 'निंदा प्रस्ताव' पारित करके जवाबदेह बना सकती है (इस विचार के अनुसार, फ्रेंच गणराज्य के राष्ट्रपति द्वारा केवल नेशनल असेंबली को ही भंग किया जा सकता है)।
    - विधायी प्रक्रिया में सीनेट के साथ असहमति होने पर, सरकार नेशनल असेंबली को "अंतिम निर्णय" (final say) का अधिकार प्रदान कर सकती है (संवैधानिक कानूनों और सीनेट से संबद्ध संस्थागत कानूनों को छोड़कर);
    - संविधान नेशनल असेंबली को वित्त विधेयक और सामाजिक सुरक्षा वित्तपोषण विधेयक की जांच के मामले में और अधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है। इस तरह के विधेयक के प्रथम वाचन के पूर्व इन्हें नेशनल असेंबली के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इनकी जांच के लिए नेशनल असेंबली के लिए निर्धारित समय-सीमा भी अत्यधिक होती है।

5.3.2. सीनेट (The Senate)

- नेशनल असेंबली के विपरीत, सीनेट को **भंग नहीं** किया जा सकता है। सीनेट का एक स्थायी निकाय होना सरकार की स्थिरता के लिए तब महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जब फ्रांस गणराज्य के राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाता है। राष्ट्रपति द्वारा अपने पद से त्यागपत्र देने या बीमारी के कारण अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में विफल होने की स्थिति में सीनेट के अध्यक्ष को फ्रांस गणराज्य के राष्ट्रपति के रूप में नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार, राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर, शक्ति शून्यता (power vacuum) की स्थिति से बचा जा सकता है।
- यह अंतरिम व्यवस्था राष्ट्रपति पद का चुनाव संपन्न कराने की समयावधि तक सीमित है (व्यवहार में, यह अवधि लगभग 50 दिनों तक की होती है)।

5.4. फ्रांसीसी संविधान की प्रमुख विशेषताएँ

- **ऑर्गेनिक लॉ (Organic Law):** ऑर्गेनिक या फंडामेंटल लॉ वस्तुतः किसी सरकार या संगठन के आधार (फाउंडेशन) का सृजन करते हैं। 'संविधान' वस्तुतः एक संप्रभु राष्ट्र के लिए ऑर्गेनिक लॉ का एक विशिष्ट रूप होता है। फ्रांसीसी संविधान में ऑर्गेनिक लॉ के रूप में कुछ कानूनों का उल्लेख किया गया है। संसद और कार्यपालिका के आदेश द्वारा निर्मित विधियों को अवश्य हीं ऑर्गेनिक लॉ से पुष्ट होना चाहिए। अतः इन कानूनों की समीक्षा एक निकाय के द्वारा की जाती है जिसे **संवैधानिक परिषद (Constitutional Council)** के रूप में जाना जाता है। इसमें 9 सदस्य होते हैं, यथा- तीन राष्ट्रपति के प्रतिनिधि, तीन फ्रेंच नेशनल असेंबली के प्रतिनिधि और शेष तीन सीनेट के प्रतिनिधि।
- **हाई काउंसिल ऑफ़ जस्टिस (उच्च न्यायिक परिषद):** यह परिषद् न्यायाधीशों की नियुक्ति करती है। इसका नेतृत्व राष्ट्रपति और न्यायपालिका के सदस्य करते हैं। राष्ट्रपति को 'न्यायपालिका के संरक्षक' के रूप में भी जाना जाता है।
- **इकॉनमिक एंड सोशल काउंसिल (आर्थिक और सामाजिक परिषद):** यह सामाजिक और आर्थिक मुद्दों से संबंधित एक संवैधानिक सलाहकार निकाय है।

5.5. संविधान का संशोधन

- कठोर प्रक्रिया;
- संसद के दोनों सदनों द्वारा 3/5 बहुमत से प्रस्ताव पारित करना होता है;
- राष्ट्रपति, जनमत संग्रह के द्वारा संशोधन प्रस्तुत करने का विकल्प चुन सकता है।

6. जर्मनी का संविधान (Germany's Constitution)

- जर्मनी एक संघीय राष्ट्र है और अवशिष्ट शक्तियां राज्यों में निहित हैं।
- राज्यों को 'लैंडर्स (Landers)' के रूप में संदर्भित किया जाता है।
- यहां ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के समान ही सरकार की संसदीय प्रणाली विद्यमान है, किंतु यह पूर्णतः उसकी प्रतिकृति नहीं है।
- जर्मनी को 'चांसलर डेमोक्रेसी' (Chancellor's Democracy) की संज्ञा दी जाती है।
- चांसलर, प्रधानमंत्री होता है।
- राष्ट्रपति, संवैधानिक प्रमुख होता है।

6.1. प्रमुख विशेषताएँ

6.1.1. चांसलर डेमोक्रेसी (Chancellor's Democracy)

- चांसलर अन्य मंत्रियों से श्रेष्ठ होता है।
- **चांसलर सिद्धांत:** चांसलर को एक व्यापक नीति निर्धारित करने का विशेषाधिकार प्राप्त होता है और अन्य मंत्रियों से इन नीतियों के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। इन नीतियों के अनुसार कार्य करने की स्थिति में मंत्रियों को अपने विभाग के संबंध में व्यापक स्वायत्तता प्राप्त होती है।

यह प्रणाली गठबंधन सरकार की स्थिरता सुनिश्चित करती है।

6.1.2. कैबिनेट सिद्धांत (Cabinet Principle)

- यह केवल विभिन्न विभागों के मध्य परस्पर विवाद उत्पन्न होने की स्थिति में ही प्रभावी होता है। ऐसी स्थिति में निर्णय सामूहिक सहमति के आधार पर लिए जाते हैं।

6.1.3. रचनात्मक अविश्वास प्रस्ताव (Constructive Vote of No-Confidence)

- चांसलर के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने की अनुमति केवल तभी दी जाती है जब अविश्वास प्रस्ताव पेश करने वाला यह सिद्ध करे कि वह वैकल्पिक सरकार का गठन करने की स्थिति में है।
- यह व्यवस्था त्रिशंकु विधानसभा (hung assembly) या गठबंधन सरकार की समस्याओं से निपटने के लिए की गयी है।

6.1.4. संसद

- जर्मनी की संसद में दो सदन (द्विसदनीय व्यवस्था) विद्यमान हैं, यथा- **बुंदेस्टैग (Bundestag)** और **बुंदेस्रत (Bundesrat)**।

6.1.4.1. बुंदेस्टैग (The Bundestag)

- जर्मनी की राजनैतिक व्यवस्था में **निचले सदन** को बुंदेस्टैग कहा जाता है। इसके सदस्यों का चुनाव 4 वर्ष के कार्यकाल के लिए होता है। इनका निर्वाचन मिश्रित सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Mixed Member Proportional Representation: MMPR) द्वारा होता है। ज्ञातव्य है कि यह फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट (FPTP) से अधिक जटिल प्रणाली है, लेकिन यह अधिक आनुपातिक परिणाम प्रदान करती है। {'अतिरिक्त सदस्य प्रणाली' (additional member system) वस्तुतः इसी प्रणाली का एक प्रकार है, जिसका उपयोग स्कॉटिश संसद और वेल्श असेंबली में किया जाता है।}

निर्वाचन पद्धति

- बुंदेस्टैग के आधे सदस्यों का निर्वाचन 299 निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष रीति के माध्यम से FPTP प्रणाली के आधार पर होता है।
- शेष आधे (अन्य 299) सदस्यों का चुनाव पार्टियों की सूची से प्रत्येक लैंड अथवा लैंडर के आधार पर किया जाता है। {जर्मनी को 16 संघीय राज्यों (लैंडर) में विभाजित किया गया है।)}

इसका अर्थ यह है कि बुंदेस्टैग के चुनाव में प्रत्येक मतदाता के पास दो मत होते हैं।

- मतदाता अपने पहले मत का प्रयोग संसद के लिए अपने स्थानीय प्रतिनिधि को निर्वाचित करने के लिए करते हैं। यह तय करता है कि एक निर्वाचन क्षेत्र से कौन-सा उम्मीदवार संसद के लिए निर्वाचित होगा।
- मतदाता अपने दूसरे मत का प्रयोग पार्टी लिस्ट (सूची) के लिए करते हैं और यही दूसरा वोट बुंदेस्टैग में प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टियों की आनुपातिक संख्या को निर्धारित करता है।

संसद की कुल 598 सीटों का वितरण उन्हीं पार्टियों के मध्य में किया जाता है, जिन्होंने द्वितीय मतदान (second votes) के 5% से अधिक मत या कम से कम 3 प्रत्यक्ष जनादेश प्राप्त किए हों। बुंदेस्टैग में एक पार्टी को सीटों का आबंटन उनके द्वारा प्राप्त किए गए मतों की संख्या के अनुपात में किया जाता है।

उपर्युक्त निर्वाचन पद्धति अपनाने के कारण

- यह प्रणाली छोटी व उग्रपंथी पार्टियों को बुंदेस्टैग के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने से रोकने के लिए निर्मित की गई है। परिणामस्वरूप, बुंदेस्टैग में प्रतिनिधित्व प्राप्त पार्टियों की संख्या सदैव कम होती है।

बुंदेस्टैग का तुलनात्मक विश्लेषण

- जब बुंदेस्टैग की तुलना अमेरिकी कांग्रेस या ब्रिटिश हाउस ऑफ़ कॉमंस से की जाती है तो एक विशेष अंतर यह पाया जाता है कि जर्मनी में सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्रों में कम समय दे पाते हैं।
- ऐसा इसलिए है क्योंकि:
    - बुंदेस्टैग के केवल 50% सदस्य ही एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करने के लिए चुने जाते हैं।
    - मतदाताओं तथा प्रतिनिधियों द्वारा अपने निर्वाचन क्षेत्र को विधि निर्माता के महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र के रूप में नहीं समझा जाता है।
    - इसका एक अन्य कारण, बुंदेस्टैग के सदस्यों के निजी स्टाफ की संख्या में कमी का होना है (विशेष रूप से अमेरिकी कांग्रेस की तुलना में)।

6.1.4.2. बुंदेस्रत (The Bundesrat)

- जर्मनी की राजनैतिक व्यवस्था में ऊपरी सदन को बुंदेस्रत कहा जाता है।
- बुंदेस्रत की संरचना अन्य राष्ट्रों के ऊपरी सदनों, जैसे- अमेरिकी सीनेट के लगभग समान ही है, क्योंकि यह (बुंदेस्रत) सभी जर्मन लैंडर का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन है। हालांकि जर्मन प्रणाली में दो मौलिक भिन्नताएं विद्यमान हैं:
    - इसके सदस्य निर्वाचित नहीं होते हैं (न तो जनता द्वारा और न ही संसद सदस्यों द्वारा)। इन्हें राज्य मंत्रिमंडल के सदस्यों द्वारा नियुक्त किया जाता है और किसी भी समय हटाया जा सकता है। सामान्यतः, लैंडर के प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व, उसकी सरकार के प्रमुख द्वारा किया जाता है जिसे जर्मनी में मंत्री-अध्यक्ष (Minister-President) के रूप में जाना जाता है।
    - बुंदेस्रत में प्रत्येक लैंडर को समान प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया है अर्थात् प्रत्येक लैंडर के प्रतिनिधियों की संख्या समान नहीं होती है। लैंडर में मतों का आबंटन उनकी जनसंख्या (प्रतिनिधियों के बजाय) के आधार पर किया जाता है। मतों का आबंटन 2.01 + अतिरिक्त निर्धारित 6 वोट के साथ देश की जनसंख्या (लाखो में) के वर्गमूल के रूप में किया जाता है, इसीलिए इसे गेम थ्योरी (game theory) पर आधारित पेनरोज विधि (Penrose method) कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि 16 लैंडर में से प्रत्येक के प्रतिनिधियों की संख्या तीन से छह होगी।
- यह असामान्य विधि, बुंदेस्रत की संरचना में कुल 69 मत (सीट नहीं) प्रदान करती है। लैंडर का मंत्रिमंडल इसे (लैंडर) प्राप्त मतों के बराबर ही प्रतिनिधियों को नियुक्त कर सकता है, हालांकि यह एक बाध्यकारी प्रावधान नहीं है; इस प्रकार यह प्रतिनिधि-मंडल को एक प्रतिनिधि तक भी सीमित करने की अनुमति प्रदान करता है। औपचारिक रूप से सदस्यों की संख्या या किसी विशेष लैंडर से प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिनिधियों की संख्या का विशेष महत्व नहीं होता है। अन्य विधायी निकायों के विपरीत, यहाँ किसी लैंडर से चुने गए बुंदेस्रत के प्रतिनिधियों को एक ब्लॉक के रूप में वोट करना होता है (अर्थात् उक्त वोट संबंधित प्रतिनिधि का नहीं होता है)। इस प्रकार व्यावहारिक रूप से (पूर्णतः प्रथागत) यह संभव है कि केवल एक ही प्रतिनिधि (Stimmfuhrer या "वोट के नेता" – सामान्यतः मंत्री-अध्यक्ष) अपने संबंधित लैंड के सभी मतों को डालता है, चाहे अन्य सदस्य सदन (chamber) में उपस्थित हों।
- सभी 69 प्रतिनिधियों की नियुक्ति के पश्चात् भी, बुंदेस्रत, बुंदेस्टैग के 598 सदस्यों की तुलना में एक अति लघु निकाय है। यह व्यवस्था (असमान सीट) एक द्विसदनात्मक प्रणाली के दोनों सदनों के लिए पूर्णतः असामान्य है। हालांकि, बुंदेस्रत को किसी विधेयक के संदर्भ में वीटो की शक्ति प्राप्त है।

7. जापान का संविधान

- जापान में सरकार की संसदीय प्रणाली विद्यमान है।
- यहाँ संवैधानिक राजतंत्र की प्रणाली है।
  - हालांकि, राजा एक रबर स्टाम्प की भांति कार्य करता है जबकि प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल का प्रमुख होता है।
- प्रधानमंत्री का निर्वाचन
  - प्रधानमंत्री, जापान की संसद (जिसे **डायट** कहा जाता है) के दोनों सदनों द्वारा चुना जाता है।
  - डायट के दो सदन हैं:
    - हाउस ऑफ़ रिप्रजेंटेटिव (House of Representatives), तथा
    - हाउस ऑफ़ काउंसिलर्स (House of Councillors)
  - प्रधानमंत्री का पद प्राप्त करने के लिए एक व्यक्ति के लिए केवल बहुमत वाले दल का नेता होना ही पर्याप्त नहीं है। उसे संसद के दोनों सदनों द्वारा निर्वाचित होना चाहिए।
    - यदि किसी उम्मीदवार के संबंध में संसद के दोनों सदनों में कोई सहमति नहीं बनती है तब इस मामले को दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंप दिया जाता है। समिति को निर्णय लेने के लिए 10 दिन का समय दिया जाता है।
    - 10 दिन के उपरांत भी यदि समझौता नहीं हो पाता है तो उसके पश्चात् निचले सदन का मत मान्य होगा।
- जापान के संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता अनुच्छेद 9 में निहित है।
  - जापान औपचारिक रूप से अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निपटारे के लिए युद्ध की नीति का परित्याग करता है, हालांकि, यह आत्मरक्षा के लिए सेना रख सकता है।

8. कनाडा का संविधान

- कनाडा के संविधान में सिद्धांत और मूल्यों के विस्तृत समुच्चय को शामिल किया गया है, जो कनाडा में प्रमुख राजनैतिक संबंधों को संचालित करता है।

8.1. प्रमुख विशेषताएं

8.1.1. संवैधानिक राजतंत्र

- यह कनाडा के संवैधानिक ढांचे का केंद्रीय घटक है।
- संविधान अधिनियम, 1867 में उल्लेख किया गया है कि कनाडा में कार्यकारी शासन और प्राधिकार, कनाडा की राजशाही (जिसे कनाडा, ग्रेट ब्रिटेन और कुछ अन्य पूर्ववर्ती ब्रिटिश उपनिवेशों से साझा करता है) में निहित है। ब्रिटिश साम्राज्ञी राज्य की औपचारिक प्रमुख हैं।
  - यह अधिनियम, कनाडा के **गवर्नर जनरल** (संघीय स्तर पर) और **लेफ्टिनेंट गवर्नर** (प्रांतीय स्तर पर) के पद का प्रावधान करता है। इन्हें कनाडा में राजा के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया गया है।
- उल्लेखनीय है कि, यद्यपि लिखित संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से सम्राट और उसके प्रतिनिधियों को कार्यकारी प्राधिकार प्रदान किए गए हैं, फिर भी अलिखित संवैधानिक परंपराओं के अनुसार वास्तविक तौर पर इन अधिकारों का प्रयोग प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल द्वारा किया जाता है।

8.1.2. संसदीय सरकार

- कनाडा के संविधान में भी सरकार की संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है।

संविधान अधिनियम, 1867 में उल्लिखित संसदीय सरकार की विशेषताएँ

- यह अधिनियम एक संघीय संसद की स्थापना का प्रावधान करता है, जिसमें सम्राट और दो विधान-मंडल {हाउस ऑफ़ कॉमंस (निचला सदन) एवं सीनेट (ऊपरी सदन)} शामिल हैं।
- इस अधिनियम में उल्लिखित है कि इन विधानमंडलों के प्राधिकार और शक्तियों का प्रारूप ब्रिटिश संसद के समान हैं।
- इसके अतिरिक्त, यह अधिनियम प्रांतीय स्तर पर भी विधान-मंडलों की स्थापना का प्रावधान करता है।

इस अधिनियम के लिखित प्रावधानों के अतिरिक्त, यहाँ कई अलिखित संवैधानिक परंपराएं (unwritten constitution conventions) भी प्रचलित हैं जो कनाडा की संसदीय प्रणाली के संचालन का मुख्य आधार हैं। इसमें **प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल** (संघीय स्तर पर) एवं **प्रीमियर और मंत्रिमंडल** (प्रांतीय स्तर पर) के कार्यकारी प्रभुत्व तथा **उत्तरदायी सरकार** की व्यवस्था शामिल है।

हाउस ऑफ़ कॉमंस

- कनाडा की राजनैतिक प्रणाली में **निचले सदन** को **हाउस ऑफ़ कॉमंस** कहते हैं, जिसका नाम ब्रिटिश राजनैतिक प्रणाली से अपनाया गया है। हाउस ऑफ़ कॉमंस में 308 सदस्य शामिल होते हैं जिन्हें ब्रिटेन की भांति संसद सदस्य (MPs) कहा जाता है।

निर्वाचन पद्धति

- सदस्यों का चुनाव देश के प्रत्येक निर्वाचन जिलों में फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट प्रणाली द्वारा किया जाता है। इन निर्वाचन जिलों को सामान्यतः रीडिंग्स (ridings) (ब्रिटेन में इन्हें निर्वाचन क्षेत्र कहा जाता है) के रूप में जाना जाता है। निचले सदन (हाउस ऑफ़ कॉमंस) में सीटों का विभाजन सामान्यतः प्रांतों और क्षेत्रों की जनसंख्या के अनुपात में किया जाता है। कुछ रीडिंग्स की जनसंख्या अन्य से अधिक है तथा कनाडा के संविधान में प्रांतीय प्रतिनिधित्व के संबंध में कुछ विशेष प्रावधानों को सम्मिलित किया गया है ।

अवधि और कार्यकाल

- सदस्यों का अधिकतम कार्यकाल 4 वर्ष होता है, लेकिन इससे पूर्व भी आम चुनाव हो सकते हैं।

शक्तियां

- ब्रिटिश राजनैतिक प्रारूप की भांति, दोनों सदनों में हाउस ऑफ़ कॉमंस अधिक शक्तिशाली है, फिर भी सभी विधेयक दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित किए जाते है। हालांकि, व्यवहार में निर्वाचित सदन की इच्छा सीनेट पर प्रभावी होती है। हाउस ऑफ़ कॉमंस की प्रक्रियाएं एवं आयोजन संभवतः ब्रिटिश परिपाटियों को प्रतिबिंबित करते हैं।

सीनेट

- कनाडा की राजनैतिक प्रणाली में **सीनेट** (ऊपरी सदन) का नामकरण, अमेरिकी राजनैतिक प्रणाली के ऊपरी सदन के आधार पर किया गया है।
- सीनेट में 105 सदस्य शामिल होते हैं। सीनेट के सदस्य प्रधानमंत्री की सलाह पर गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। सीटें क्षेत्रीय आधार पर निर्दिष्ट की जाती हैं। चार प्रमुख क्षेत्रों में से प्रत्येक के लिए 24 सीटें और छोटे क्षेत्रों के लिए शेष 9 सीटें निर्दिष्ट की गई हैं।

8.1.3. संघवाद (Federalism)

- कनाडा के संविधान द्वारा देश के लिए संघीय प्रणाली का प्रावधान किया गया है जिसमें सरकार के दो मुख्य स्तर होते हैं: **संघीय सरकार (राष्ट्रीय)** और **प्रांतीय सरकारें (क्षेत्रीय)।** कनाडा एक सुदृढ़ केंद्र वाला संघ है, जिसमें अवशिष्ट शक्तियां केंद्र में निहित हैं।
- संविधान अधिनियम, 1867 द्वारा सरकार के प्रत्येक स्तरों के लिए विशिष्ट शक्तियों और क्षेत्राधिकार को निर्धारित गया है, जैसे- सार्वजनिक नीति के निर्माण, सरकार के प्रत्येक स्तर हेतु राजस्व संबंधी क्षेत्राधिकार, आदि। हाल के वर्षों में इन संवैधानिक प्रावधानों को न्यायिक निर्णयों द्वारा (पहली बार ब्रिटिश प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति द्वारा और बाद में कनाडा के सुप्रीम कोर्ट द्वारा) और अधिक स्पष्ट रूप से निर्धारित एवं विकसित किया गया है।

कनाडा के संघवाद की प्रकृति में परिवर्तन

- कनाडा के संविधान में कई बार संशोधन किए गए हैं जिनका कनाडा की संघीय प्रणाली पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। विगत कुछ वर्षों में राज्यों को और अधिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। उदाहरण के लिए, संविधान अधिनियम, 1930 द्वारा पश्चिम कनाडा के प्राकृतिक संसाधनों के स्वामित्व को संघीय सरकार से पश्चिमी प्रांतों को हस्तांतरित किया गया। कुछ अन्य महत्वपूर्ण संशोधन, संविधान अधिनियम, 1982 द्वारा किए गए हैं। यह अधिनियम संघीय सरकार तथा प्रांतीय सरकारों के मध्य आर्थिक और सामाजिक समानता के निश्चित स्तर को सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध था।
- इस प्रकार से इन अधिनियमों ने समकक्ष कार्यक्रमों के विकास और सार्वजनिक निधि को सरकारों के मध्य साझा करने का मार्ग प्रशस्त किया।

8.1.4. न्यायपालिका

- कनाडा में सुप्रीम कोर्ट सिविल, आपराधिक और संवैधानिक मामलों पर निर्णयन के लिए अंतिम एवं उच्चतम निकाय है। प्रधानमंत्री और कानून मंत्री के परामर्श पर गवर्नर जनरल के द्वारा इसके 9 सदस्यों की नियुक्ति की जाती है। वे 75 वर्ष की आयु तक पद पर बने रहते हैं।
- प्रत्येक प्रांत की अपनी पृथक-पृथक न्यायिक प्रणाली विद्यमान है। देश की कानून-प्रणाली इंग्लिश कॉमन लॉ पर आधारित है, लेकिन क्यूबेक प्रान्त में यह फ्रांसीसी सिविल लॉ पर आधारित है।

8.1.5. अधिकार

- कैनेडियन चार्टर ऑफ़ राइट्स एंड फ्रीडम वस्तुतः कनाडा के संविधान में समाहित बिल ऑफ़ राइट्स (अधिकार-पत्र) की भांति है तथा यह संविधान अधिनियम, 1982 के प्रथम भाग का निर्माण करता है।
- यह चार्टर कनाडा के नागरिकों को कुछ विशेष राजनैतिक अधिकारों की और कनाडा में प्रत्येक व्यक्ति के लिए नागरिक अधिकारों की गारंटी प्रदान करता है।
- यह चार्टर, सरकारी कानून और कार्यवाहियों (संघीय, प्रांतीय और नगरपालिका सरकारों के कानून और कार्यवाहियां तथा पब्लिक स्कूल बोर्डों की कार्यवाहियां) तथा कभी-कभी सामान्य कानून के लिए लागू होता है, लेकिन निजी गतिविधियों पर लागू नहीं होता है।
- चार्टर में उल्लिखित अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में, अदालतों ने कई बार संघीय और प्रांतीय क़ानूनों एवं विनियमों को पूर्णतया या उसके किसी भी भाग को असंवैधानिक घोषित कर निरस्त किया है।

9. ऑस्ट्रेलिया का संविधान (Constitution Of Australia)

- ऑस्ट्रेलिया की शासन प्रणाली एक उदार लोकतांत्रिक परंपरा है। धार्मिक सहिष्णुता, अभिव्यक्ति एवं संगम की स्वतंत्रता और विधि के शासन के मूल्यों पर आधारित ऑस्ट्रेलिया के संस्थान तथा सरकार की कार्यप्रणाली, ब्रिटिश और उत्तरी अमेरिकी मॉडल को प्रदर्शित करती है। हालांकि, इस प्रणाली में कुछ ऑस्ट्रेलियाई विशिष्टताएं भी शामिल हैं।
    - ऑस्ट्रेलियाई संघ, अमेरिकी संघ के मॉडल पर आधारित है। उदाहरण के लिए, अवशिष्ट शक्तियां राज्यों में निहित हैं, राज्यों के गवर्नर जनता द्वारा निर्वाचित और औपचारिक रूप से ब्रिटिश साम्राज्ञी द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।
    - हाल के वर्षों में, ऑस्ट्रेलिया में **सहकारी संघवाद** में वृद्धि हुई है।

9.1. प्रमुख विशेषताएं

9.1.1. शासन के प्रकार (Form of Government)

- विश्व में सबसे प्राचीन लोकतांत्रिक देशों में से एक कॉमनवेल्थ ऑफ़ ऑस्ट्रेलिया का वर्ष 1901 में सृजन किया गया था, जब यहाँ के पूर्ववर्ती ब्रिटिश उपनिवेशों (वर्तमान में छह राज्य) ने एक संघ के रूप में अपने आप को संगठित करने का निर्णय लिया था। वे लोकतांत्रिक व्यवहार एवं सिद्धांत (जैसे- 'एक व्यक्ति एक वोट' और 'महिलाओं को मताधिकार'), जिन्हें वर्तमान संघ के अस्तित्व में आने से पूर्व यहाँ के औपनिवेशिक संसदों ने स्वीकार किया था, उन्हें ऑस्ट्रेलिया की पहली संघीय सरकार द्वारा भी अपनाया गया।
- ऑस्ट्रेलियाई संविधान, सरकार की शक्तियों को तीन पृथक भागों, यथा- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में विभाजित करता है। हालांकि इसमें स्पष्ट उल्लेख है कि विधायिका के सदस्यों को कार्यकारिणी का भी सदस्य होना चाहिए। व्यवहार में, संसद, कार्यपालिका को विस्तृत विनियामकीय शक्तियां प्रत्यायोजित करती है।
- ऑस्ट्रेलिया की संसद (सामान्यतः निर्वाचित) का गठन दो सदनों से मिलकर हुआ है: हाउस ऑफ रिप्रजेन्टेटिव्स और सीनेट। इन सदनों से नियुक्त मंत्री कार्यकारी सरकार का संचालन करते हैं और नीतिगत निर्णय मंत्रिमंडल (कैबिनेट) की बैठकों में लिए जाते हैं। निर्णयों की घोषणा के अतिरिक्त कैबिनेट के विचार विमर्श को सार्वजनिक नहीं किया जाता है। मंत्री, मंत्रिमंडल की एकजुटता के सिद्धांत (Principle of Cabinet Solidarity) से बंधे होते हैं, जो संसद के प्रति उत्तरदायी कैबिनेट सरकार के ब्रिटिश मॉडल को प्रतिबिंबित करता है।
- यद्यपि, ऑस्ट्रेलिया एक स्वतंत्र राष्ट्र है, तथापि ग्रेट-ब्रिटेन की महारानी एलिज़ाबेथ-II ऑस्ट्रेलिया की भी औपचारिक साम्राज्ञी हैं। महारानी द्वारा अपने प्रतिनिधित्व के लिए (निर्वाचित ऑस्ट्रेलियाई सरकार की सलाह पर) एक गवर्नर-जनरल नियुक्ति की जाती है। गवर्नर-जनरल को व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं, लेकिन व्यवहारतः वह लगभग सभी मामलों पर केवल मंत्रियों की सलाह पर कार्य करता है।

9.1.2. संविधान की प्रकृति

- संयुक्त राज्य अमेरिका के समान ही ऑस्ट्रेलिया का भी अपना एक लिखित संविधान है। ऑस्ट्रेलियाई संविधान, संघीय सरकार के दायित्वों को परिभाषित करता है, जिसमें विदेशी संबंध, व्यापार, रक्षा और आव्रजन सम्मिलित हैं।
- संघीय सरकार को सौंपे गए विषयों से भिन्न अन्य सभी विषयों के लिए राज्य और केंद्र शासित प्रदेशों की सरकारें उत्तरदायी होती हैं और वे भी उत्तरदायी सरकार के सिद्धांतों का अनुपालन करती हैं। राज्यों में, गवर्नर महारानी का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- ऑस्ट्रेलिया का उच्च न्यायालय संघ और राज्यों के मध्य विवादों की मध्यस्थता करता है। न्यायालय के अनेक निर्णयों द्वारा संघीय सरकार की संवैधानिक शक्तियों और उत्तरदायित्वों का विस्तार किया गया है।

9.1.2.1 संशोधन की प्रक्रिया

- ऑस्ट्रेलियाई संविधान में संशोधन केवल राष्ट्रीय स्तर पर जनमत संग्रह (referendum) के माध्यम से निर्वाचकों के अनुमोदन द्वारा किया जा सकता है, जिसमें निर्वाचक सूची में सम्मिलित सभी वयस्क अनिवार्यतः भाग लेते हैं। एक संशोधन विधेयक को सर्वप्रथम संसद के दोनों सदनों से पारित कराना आवश्यक होता है, या फिर कुछ सीमित परिस्थितियों में संसद के केवल एक सदन द्वारा इसे पारित किया जा सकता है।
- कोई भी संवैधानिक संशोधन दोहरे बहुमत द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए - अर्थात् राष्ट्रीय निर्वाचकों के बहुमत के साथ-साथ राज्यों के बहुमत (छह में से कम से कम चार) द्वारा। जहाँ कोई एक या अधिक राज्य विशेष रूप से जनमत संग्रह के विषय से प्रभावित हो, उस स्थिति में इस विषय पर उन राज्यों के मतदाताओं के बहुमत की स्वीकृति अनिवार्य है। इसे प्रायः **'ट्रिपल मेजोरिटी'** (तिहरा बहुमत) का नियम कहा जाता है।
- दोहरे बहुमत का प्रावधान संविधान में परिवर्तन को कठोर स्वरूप प्रदान करता है। वर्ष 1901 में संघ के गठन से वर्तमान समय तक संविधान संशोधन हेतु प्रस्तावित 44 में से केवल 8 प्रस्तावों को ही अनुमोदित किया गया है। सामान्यतः मतदाता संघीय सरकार की शक्ति में वृद्धि करने वाले प्रस्तावों का समर्थन करने के लिए अनिच्छुक रहे हैं। राज्य और केंद्र शासित प्रदेश भी जनमत संग्रह का आयोजन कर सकते हैं।

9.1.3. संसद

- हाउस ऑफ़ रिप्रजेन्टेटिव्स में बहुमत प्राप्त पार्टी द्वारा सरकार का गठन किया जाता है।
- अल्पसंख्यक दल, प्रायः सीनेट में शक्ति संतुलन बनाए रखते हैं, जो सरकार के निर्णयों की समीक्षा करने वाले सदन के रूप में कार्य करता है। सीनेटरों को छह वर्ष के कार्यकाल के लिए निर्वाचित किया जाता है तथा आम चुनाव में केवल आधे सीनेटरों का चुनाव ही मतदाताओं द्वारा जाता है।
- ऑस्ट्रेलियाई संसद में प्रश्न बिना किसी सूचना के पूछे जा सकते हैं और वहाँ प्रश्नकाल के दौरान मंत्रियों से पूछे गए सरकारी और विपक्ष के प्रश्नों के मध्य स्पष्ट भेद होता है। विपक्ष अपने प्रश्नों का उपयोग सरकार को लक्षित करने के लिए करता है। हालांकि, सरकारी सदस्य अपने प्रश्नों का प्रयोग मंत्रियों को सरकार की नीतियों और गतिविधियों को उचित स्वरूप प्रदान करने या विपक्ष को लक्षित करने के लिए करते हैं।
- संसद में दिए गए किसी भी वक्तव्य की रिपोर्टिंग मानहानि संबंधी मुकदमे के भय से रहित होकर निष्पक्ष और सटीक रूप से की जा सकती है। संसदीय प्रश्न काल और बहस का प्रसारण किया जा सकता है। यह कार्यपालिका शक्ति पर एक अनौपचारिक नियंत्रण के रूप में कार्य करता है।

9.1.4. निर्वाचन की प्रकृति

- राष्ट्रीय आम चुनावों का आयोजन नयी संघीय संसद की प्रथम बैठक के तीन वर्ष के भीतर किया जाना चाहिए। संसद की औसत अवधि लगभग ढाई वर्ष की होती है। व्यवहार में, आम चुनावों का आयोजन तब किया जाता है, जब गवर्नर-जनरल प्रधानमंत्री के अनुरोध से सहमत होता है। प्रधानमंत्री चुनाव की तिथि का निर्धारण करता है।
- वर्ष 1901 में संघ के गठन के बाद से सत्ताधारी दल को लगभग प्रत्येक पांच वर्ष पर परिवर्तित कर दिया जाता है। लिबरल पार्टी ने वर्ष 1949 से वर्ष 1972 तक 23 वर्ष के सबसे लंबे समय तक गठबंधन का नेतृत्व किया। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व, कई सरकारें एक वर्ष से भी कम समय तक सत्ता में रही, लेकिन वर्ष 1945 के बाद से सरकार में केवल सात बार परिवर्तन हुआ है।

9.1.5. मतदान

- 18 वर्ष से अधिक आयु के सभी नागरिकों के लिए संघीय और राज्य सरकारों दोनों के चुनावों में मतदान करना अनिवार्य है और ऐसा करने में असफल होने का परिणाम आर्थिक दंड या अभियोजन हो सकता है।

9.1.6. सरकार के स्तरों के मध्य संबंध

- राज्य की विधायिका (State parliaments), राष्ट्रीय संविधान के साथ-साथ संबंधित राज्य के संविधानों के अधीन होती हैं। संघीय कानून और राज्य के किसी कानून के मध्य गतिरोध होने की स्थिति में संघीय कानून प्रभावी होता है।
- व्यवहार में, सरकार के दोनों स्तर ऐसे अनेक क्षेत्रों में सहयोग कर रहे हैं जिनके लिए राज्य और संघ शासित प्रदेश औपचारिक रूप से उत्तरदायी होते हैं, जैसे- शिक्षा, परिवहन, स्वास्थ्य, कानून प्रवर्तन आदि। आयकर, संघ द्वारा आरोपित किया जाता है, हालांकि राजस्व के उपयोग एवं व्यय कार्यों के दोहराव (डुप्लीकेशन) के बारे में सरकारों के स्तरों के मध्य बहस ऑस्ट्रेलियाई राजनीति की एक विशिष्ट विशेषता है। स्थानीय सरकारी निकायों का गठन राज्य और संघ शासित प्रदेश के कानून द्वारा किया जाता है।
- काउंसिल ऑफ़ ऑस्ट्रेलियन गवर्नमेंट्स (COAG) वस्तुतः सरकार के तीनों स्तरों, यथा- राष्ट्रीय, राज्य या संघ शासित प्रदेश और स्थानीय स्तरों के मध्य सहकारी कार्यवाही की आवश्यकता वाले राष्ट्रीय नीतिगत सुधारों की पहल करने, उन्हें तैयार करने और लागू करने के लिए एक मंच है। इसके लक्ष्यों में अग्रलिखित प्रमुख मुद्दों का समाधान करना शामिल हैं: सरकार के स्तर पर संरचनात्मक सुधार हेतु सहयोग तथा एक एकीकृत, प्रभावी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और एकल राष्ट्रीय बाजार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक सुधार की दिशा में सहयोग करना।
- COAG के अंतर्गत प्रधानमंत्री, राज्य प्रमुख (State Premiers), प्रदेशों के मुख्यमंत्री और ऑस्ट्रेलियन लोकल गवर्नमेंट एसोसिएशन (Australian Local Government Association) के अध्यक्ष शामिल होते हैं।
- इसके अतिरिक्त, मंत्रिस्तरीय परिषदें (राष्ट्रीय, राज्य और प्रदेश के मंत्री तथा जहां प्रासंगिक हो, स्थानीय सरकार एवं न्यूजीलैंड और पापुआ न्यू गिनी की सरकारों के प्रतिनिधि) विकास और विशिष्ट नीतिगत क्षेत्रों में अंतर-सरकारी कार्यवाही को अपनाने के लिए नियमित रूप से बैठकें करती हैं।

10. स्विट्ज़रलैंड का संविधान

- गणतंत्रात्मक व्यवस्था और संघीय स्वरूप स्विस संविधान की प्रमुख विशेषताएँ हैं।
- स्विट्ज़रलैंड प्रत्यक्ष लोकतंत्र (direct democracy) प्रणाली के लिए भी प्रसिद्ध है।
- इसे गतिशील संविधान के रूप में जाना जाता है (जन संरक्षण, कल्याणकारी राज्य संबंधी विशेषताओं सहित)।

10.1. भारतीय संविधान से तुलना

भारतीय संविधान	स्विस संविधान
कार्यकारी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित।	कार्यकारी शक्तियां संघीय परिषद में निहित।
राष्ट्रपति, निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचित।	संघीय परिषद, संघीय सभा द्वारा निर्वाचित।
दलीय सरकार।	दलीय सरकार नहीं।
राज्यों को अंतर्राष्ट्रीय संधि करने की अनुमति प्राप्त नहीं।	कैंटन (Cantons) को अंतर्राष्ट्रीय संधि करने की अनुमति प्राप्त है।
न्यायपालिका की सर्वोच्चता।	न्यायपालिका किसी संघीय कानून को अमान्य घोषित नहीं कर सकती।
जनमत संग्रह का प्रावधान नहीं।	जनमत संग्रह संभव।

10.2 प्रत्यक्ष लोकतंत्र की व्यवस्था

- **जनमत संग्रह (Referendum):** इसका आशय किसी विधेयक को जनता के समक्ष उसके अनुसमर्थन के लिए प्रस्तुत करने से है। यह **प्लेबीसाइट (plebiscite)** के समान नहीं है। **प्लेबीसाइट** से आशय किसी भी मुद्दे पर लोगों की राय लेने से है।
- **इनिशिएटिव (Initiative):** यह जनता द्वारा प्रारंभ एक विधेयक होता है और जनता ही इसे विधानसभा में प्रेषित करती है।
- **प्रत्यावर्तन या प्रत्याशी को वापस बुलाना (Recall):** इसका आशय किसी भी समय प्रतिनिधि को वापस बुलाने से है, यदि मतदाता उसके कार्य से संतुष्ट नहीं है।

11. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएँ एवं तुलनात्मक अध्ययन

11.1. उद्देशिका

- उद्देशिका वस्तुतः एक संक्षिप्त परिचयात्मक कथन होता है जो पथप्रदर्शक लक्ष्यों एवं उद्देश्यों और संवैधानिक दस्तावेज़ के सिद्धांतों का वर्णन करता है।
- भारतीय संविधान की उद्देशिका की भाषा और संरचनात्मक प्रारूप को संयुक्त राज्य अमेरिका से ग्रहण किया गया है।

11.2. लिखित संविधान

- लिखित संविधान की अवधारणा संयुक्त राज्य अमेरिका से ग्रहण की गयी है, जो विश्व का प्रथम लिखित संविधान है। यह सरल समझ और आवश्यकतानुसार संशोधन की अनुमति प्रदान करता है। साथ ही यह सरकार के मनमाने कानूनों से उन्मुक्ति भी प्रदान करता है।

11.3. नाममात्र का राज्य प्रमुख

ब्रिटेन	भारत
महारानी, राज्य प्रमुख है। संवैधानिक राजतंत्र के कारण, वह देश पर शासन नहीं करती है, लेकिन सरकार के संबंध में महत्वपूर्ण औपचारिक और अनौपचारिक भूमिकाओं का निर्वहन करती है।	भारत का राष्ट्रपति: • राज्य प्रमुख और भारत का प्रथम नागरिक है। • वह भारतीय लोकतंत्र की सभी तीन शाखाओं, यथा- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का "औपचारिक प्रमुख" भी होता है। • वह भारतीय सशस्त्र बलों का सर्वोच्च कमांडर भी होता है।

11.4. मंत्रिमंडलीय प्रणाली (Cabinet System)

भारत और इंग्लैंड दोनों में प्रचलित

- मंत्रिमंडल, प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिपरिषद् के कुछ सदस्यों से मिलकर गठित सरकार का सामूहिक निर्णय निर्माणकारी निकाय है।
- मंत्रिपरिषद् के सदस्य प्रधानमंत्री की सलाह पर राज्य प्रमुख (भारत में राष्ट्रपति और इंग्लैंड में सम्राट) द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।
- मंत्रिमंडल के मंत्री को उसके विभाग का आबंटन प्रधानमंत्री करता है और प्रधानमंत्री की सलाह पर राज्य प्रमुख द्वारा उसे किसी भी समय हटाया जा सकता है।

11.5. द्विसदनात्मक संसदीय व्यवस्था

द्विसदनात्मक संसद या द्विसदनीय विधायिका का निर्माण दो सदनों से मिलकर होता है।

- **इंग्लैंड:** हाउस ऑफ़ कॉमंस और हाउस ऑफ लॉर्ड्स।
- **भारत:** लोकसभा (House of People) एवं राज्यसभा (Council of States)।

11.6. निचले सदन के अधिक शक्तिशाली होने की अवधारणा

इंग्लैंड	भारत
हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स (उच्च सदन) को वित्तीय विधेयकों के मामले में सीमित अधिकार प्राप्त हैं।	धन विधेयक को केवल लोकसभा में ही पुर:स्थापित किया जा सकता है।

हाउस ऑफ कॉमंस में बहुमत खो देने पर प्रधानमंत्री अपदस्थ हो जाता है।	निम्न सदन में बहुमत खो देने पर प्रधानमंत्री अपदस्थ हो जाता है। अविश्वास प्रस्ताव केवल लोकसभा में प्रस्तुत किया जा सकता है।
उच्च सदन केवल अधिकतम दो संसदीय कार्यकाल के लिए निम्न सदन द्वारा पारित विधेयकों के मामले में देरी कर सकता है, लेकिन इसे अस्वीकार नहीं कर सकता।	धन विधेयक में राज्यसभा संशोधन नहीं कर सकती। यह केवल अधिकतम 14 दिनों का विलम्ब कर सकती है।

11.7. निम्न सदन का अध्यक्ष (Speaker in the Lower House)

इंग्लैंड	भारत
हाउस ऑफ कॉमंस का स्पीकर कॉमंस चैम्बर में बहस की अध्यक्षता करता है और वह एक सांसद होता है, जिसे संसद के अन्य सदस्यों द्वारा मनोनीत किया जाता है।	लोकसभा का अध्यक्ष सदन के कार्यों का संचालन करता है।
स्पीकर, हाउस ऑफ कॉमंस का मुख्य अधिकारी होता है और सर्वोच्च प्राधिकार धारण करता है। उससे सदैव राजनीतिक रूप से निष्पक्ष रहने की अपेक्षा की जाती है। वह बहस के दौरान व्यवस्था बनाए रखता है और सांसदों को क्रम से बोलने का अवसर प्रदान करता है।	वह निर्णय करता है कि कोई विधेयक धन विधेयक या नहीं।
स्पीकर सम्राट, लॉर्ड्स और अन्य अधिकारियों के लिए हाउस ऑफ कॉमंस का प्रतिनिधित्व भी करता है और हाउस ऑफ कॉमंस कमीशन की अध्यक्षता करता है।	वह सदन में अनुशासन और मर्यादा बनाए रखता है तथा सदस्यों को उनके अनियंत्रित व्यवहार के लिए निलंबित करके दंडित कर सकता है।
	वह अविश्वास प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव, निंदा प्रस्ताव और ध्यानाकर्षण प्रस्ताव जैसे विभिन्न प्रकार के प्रस्तावों एवं संकल्पों को नियमानुसार अनुमति प्रदान करता है।

11.8. न्यायपालिका

11.8.1. उच्चतम न्यायालय की संकल्पना

- यह संयुक्त राज्य अमेरिका से ग्रहण की गई है। सर्वप्रथम अमेरिका में अपील की एक सर्वोच्च अदालत की व्यवस्था की गयी, जिसे सुप्रीम कोर्ट के रूप में वर्णित किया जाता है। यह संघीय व्यवस्था में सुव्यवस्थित प्रशासन हेतु एक अनिवार्य आवश्यकता है।

11.8.2. उच्चतम न्यायालय की कार्यप्रणाली

- यह जापान के संविधान से अपनाया गया है।

जापानी संविधान	भारतीय संविधान
मुख्य न्यायाधीश को राज्य प्रमुख (सम्राट) द्वारा नियुक्त किया जाता है।	मुख्य न्यायाधीश राज्य प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।
सुप्रीम कोर्ट देश का सर्वोच्च न्यायिक प्राधिकरण है।	उच्चतम न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायिक प्राधिकरण है।
सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश मामलों की सुनवाई के लिए लघु पीठों का गठन करते हैं।	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश मामलों की सुनवाई के लिए लघु पीठों का गठन करते हैं।
सुप्रीम कोर्ट मुख्य रूप से एक अपीलीय अदालत के रूप में कार्य करता है, जहाँ अपील की सुनवाई की जाती है और निचली अदालतों के निर्णयों से असंतुष्ट वादियों की याचिकाओं पर सुनवाई की जाती है।	उच्चतम न्यायालय मुख्य रूप से एक अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करता है, जहाँ अपील की सुनवाई की जाती है और निचली अदालतों के निर्णय से असंतुष्ट वादियों की याचिकाओं पर सुनवाई की जाती है।

11.8.3. न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक पुनर्विलोकन

- न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सिद्धांत वर्णित करता है कि न्यायपालिका को विधायिका और कार्यपालिका के हस्तक्षेप से राजनैतिक रूप से परिरक्षित किया जाना चाहिए। अर्थात्, सरकार की अन्य शाखाओं, या व्यक्तिगत या पक्षपाती हितों द्वारा न्यायपालिका के मामले में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।
- न्यायिक पुनर्विलोकन एक सिद्धांत है, जिसके तहत न्यायपालिका को विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों की समीक्षा (और असंवैधानिक होने पर उन्हें निरस्त करने की शक्ति) की अधिकारिता प्रदान की गयी है।
  - न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति से सम्पन्न विशिष्ट न्यायालयों द्वारा राज्य/राष्ट्र के संविधान से असंगत कृत्यों को निरस्त/असंवैधानिक घोषित कर दिया जाता है।
- इन दोनों सिद्धांतों को अमेरिका के संविधान से ग्रहण किया गया है। ये सरकार की अन्य दो शाखाओं पर नियंत्रण रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

11.8.4. उच्चतम/उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को पद से हटाने की विधि

- यह संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से ग्रहण की गई है।

अमेरिकी संविधान	भारतीय संविधान
• यह पृथक-पृथक राज्यों में पृथक-पृथक है, जहाँ कभी-कभी जांच समिति की सिफारिश पर्याप्त होती है। • वहीं कुछ अन्य राज्यों में एक न्यायाधीश पर महाभियोग के	• कदाचार या असमर्थता के आधार पर व राष्ट्रपति के आदेश द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को उसके पद से हटाया जा सकता है। • राष्ट्रपति ऐसा तभी कर सकता है, जब इस प्रकार हटाए जाने हेतु प्रस्तुत प्रस्ताव को संविधान में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल

लिए दोनों सदनों के दो-तिहाई से अधिक सदस्यों के बहुमत की आवश्यकता होती है।	सदस्यता के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित किया गया हो।

11.9. मूल अधिकार

- मूल अधिकारों का उद्देश्य न केवल कार्यकारिणी की शक्तियों पर, बल्कि विधान-मंडल की शक्ति पर भी सीमाओं के रूप में कार्य करना है।

अन्य देशों में	भारत में
मूल अधिकार की अवधारणा अमेरिका से ग्रहण की गई है।	भारत के संविधान में मूल अधिकार विश्व में सबसे विस्तृत विवरण को संस्थापित करता है।
वाक्-स्वातंत्र्य, संगम एवं धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार को सोवियत संघ से अपनाया गया है।	इनमें शामिल हैं: • समता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18) • स्वतंत्रता का अधिकार (19) • शोषण के विरुद्ध अधिकार (23-24) • धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (25-28) • संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (29-30) • संवैधानिक उपचारों का अधिकार (32-35)
स्वतंत्रता और विधि के समक्ष समानता के अधिकार को फ्रांसीसी संविधान से ग्रहण किया गया है।	

11.9.1. आपातकाल के दौरान मूल अधिकारों का निलंबन

- आपातकाल के दौरान अधिकारों के निलंबन की अवधारणा जर्मनी के **वाईमर संविधान** से ग्रहण की गयी है।
- यह शक्ति राज्य प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति में निहित है।
    - आपातकाल के दौरान अधिकांश मूल अधिकारों का निलंबन किया जा सकता है। हालांकि, कुछ मूल अधिकार निलंबित नहीं किए जा सकते हैं, यथा- जीवन का अधिकार।

11.10. मूल कर्त्तव्य

- भारतीय संविधान में वर्णित मूल कर्त्तव्य जापान, यूगोस्लाविया, चीन और सोवियत संघ (USSR) के संविधान से ग्रहण किए गए हैं।
- वास्तव में, जापान मौलिक कर्त्तव्यों को कानूनी रूप से लागू करने वाला एकमात्र लोकतांत्रिक देश है।

- इन्हें भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिक को यह स्मरण कराने हेतु सम्मिलित किया गया है कि वे न केवल अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों, बल्कि उन्हें अपने कर्त्तव्यों के प्रति भी जागरूक होना चाहिए।

11.11. संघीय व्यवस्था

- यह केंद्र और राज्यों के मध्य शक्तियों के वितरण को संदर्भित करता है।
- यह भारत जैसे विविधतापूर्ण देश के विषय में स्थानीय मुद्दों से निपटने हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण है।
- यह विधायी और प्रशासनिक दोनों शक्तियों के संदर्भ में किया गया है।

11.11.1. सुदृढ़ केंद्र के साथ संघीय व्यवस्था

- केंद्र और राज्य दोनों की स्वायत्तता एवं आपसी समायोजन, सम्मान, समझ व सहयोग के साथ अपनी शक्तियों का प्रयोग करने वाले सहकारी व सहयोगात्मक निकाय के रूप में अपेक्षा की गयी है।
- विवादों के निवारण के साथ-साथ समाधान भी आवश्यक है। इस प्रकार, भारतीय संघीय व्यवस्था में एक सुदृढ़ केंद्र की संकल्पना अपनाई गयी है।

11.11.2. अमेरिकी संघवाद के साथ भारतीय संघवाद की तुलना

भारतीय संविधान

- भारतीय संघ, राज्यों के मध्य किसी समझौते का परिणाम नहीं है।
- राज्यों और संघ दोनों के लिए एकल नागरिकता की अवधारणा अपनाई गयी है।
- संसद में प्रत्येक राज्य को उसकी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है।
- इसमें राज्यों के मध्य समानता का सिद्धांत प्रचलित नहीं है।
- इसमें तीन सूचियां विद्यमान हैं, यथा- संघ सूची (प्रथम सूची), राज्य सूची (द्वितीय सूची) और समवर्ती सूची (तृतीय सूची)।
- संसद केवल संघ सूची और समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। राज्य संप्रभु नहीं हैं। संघ, राज्य सूची का कुछ विषयों पर विशेष परिस्थितियों में कानून बना सकता है।
- कोई राज्य भारत के राज्यक्षेत्र से पृथक नहीं हो सकता है।
- अवशिष्ट शक्तियां संसद, अर्थात् केंद्र में निहित हैं।
- संघ और राज्यों के लिए एकल संविधान अपनाया गया है।
- भारत में सामान्यतः दीवानी और आपराधिक कानूनों में एकरूपता है (कुछ मामलों में निजी कानूनों को छोड़कर)।
- भारतीय संघ, विनाशी राज्यों का एक अविनाशी संघ है। संसद किसी राज्य के क्षेत्र को परिवर्तित कर सकती है अर्थात् राज्यों की प्रकृति विनाशी हैं। लेकिन संघ को समाप्त नहीं जा सकता है अर्थात् संघ अविनाशी है।
- केन्द्र सरकार के पास एक नए राज्य के गठन; किसी राज्य के क्षेत्र में वृद्धि करने या उसके क्षेत्र को कम करने; किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन; किसी राज्य के नाम में परिवर्तन करने; और किसी राज्य से उसके राज्य क्षेत्र को अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों या विभिन्न राज्यों के भागों को मिलाकर या किसी राज्यक्षेत्र को किसी अन्य राज्य के साथ मिलकर नए राज्य को गठित करने की शक्ति है (अनुच्छेद 3)।
- हमारे संविधान में संघ (Federal) शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। संविधान निर्माताओं ने **यूनियन** शब्द का प्रयोग किया है।

- उच्चतम न्यायालय को अपीलीय (दीवानी और आपराधिक) क्षेत्राधिकार सहित बहुत व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं।
- जनमत संग्रह का प्रावधान नहीं किया गया है। संविधान में संशोधन के लिए, जनता की सहमति की आवश्यकता नहीं होती है। सांसदों का बहुमत प्राप्त करना पर्याप्त है और कुछ मामलों में, **राज्य विधान-मंडलों** के बहुमत की भी आवश्यकता होती है।

अमेरिकी संविधान

- अमेरिकन फेडरेशन राज्यों के मध्य एक समझौते का परिणाम है।
- यहाँ दोहरी नागरिकता (संघीय नागरिकता और राज्य की नागरिकता) का प्रावधान है।
- प्रत्येक राज्य द्वारा सीनेट में समान संख्या में प्रतिनिधियों को भेजा जाता है।
    - इसमें राज्यों के मध्य उनकी जनसंख्या, क्षेत्र आदि से निरपेक्ष समानता का सिद्धांत प्रचलित है।
- यहां संघीय सरकार और घटक इकाइयों के मध्य विधायी शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है। संघ के साथ-साथ प्रत्येक इकाई अपने क्षेत्र में संप्रभु है। संघ और इकाइयां अपने संबंधित विधायी क्षेत्रों में संप्रभु हैं। कोई भी दूसरे के क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण नहीं कर सकता है।
- अवशिष्ट शक्तियां राज्यों में निहित हैं।
- यहाँ दो संविधान (संघ और राज्यों के) प्रचलित हैं।
- भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न सिविल और आपराधिक कानून विद्यमान हैं।
- "फेडरल" शब्द का संविधान में कई बार प्रयोग किया गया है।
- अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट को भारत के उच्चतम न्यायालय के समान एक विस्तृत अपीलीय अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं किया गया है।

11.12. व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता

ऑस्ट्रेलिया	भारत
ऑस्ट्रेलियाई संविधान की धारा 92 के अंतर्गत मुक्त व्यापार का उपबंध किया गया है।	भारतीय संविधान के अनुच्छेद 301 में व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता के प्रावधान को ऑस्ट्रेलिया के संविधान की धारा 92 से लगभग शब्दशः लिया गया है।
	न्यायालय ने माना कि इस संबंध में विधायिका को न्यायपालिका से भी अधिक शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए तथा राज्य द्वारा व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों पर लगाए जाने वाले युक्तियुक्त प्रतिबंध संविधान के प्रावधानों के अनुसार होने चाहिए।

इसके अंगीकरण का महत्व

- देश भर में वस्तुओं की मुक्त आवाजाही और उनका आदान-प्रदान देश की आर्थिक एकता के लिए आवश्यक है। इसलिए, आर्थिक गतिविधियों हेतु सभी संघीय राष्ट्रों में संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से अंतर्राज्यीय व्यापार-वाणिज्य की बाधाओं को दूर करने तथा आर्थिक संसाधनों के मामले में देश में एकरूपता के निर्माण के लिए प्रयास किए गए हैं।
- इस प्रकार, व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता के प्रावधान को कुछ अपवादों के साथ ऑस्ट्रेलियाई संविधान से ग्रहण किया गया है।

11.13. राज्य की नीति के निदेशक तत्व (DPSP)

- ये ऐसे सिद्धांत हैं जिन्हें नागरिकों के लिए उपयुक्त सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सृजित करने के लिए निर्धारित किया गया है।
- भारत में, DPSP को आयरलैंड के संविधान से शब्दशः अपनाया गया है।
- आयरलैंड में DPSP स्पेन से अपनाए गए थे।

11.14. राष्ट्रपति द्वारा संसद सदस्यों को मनोनीत करना

- भारत में ऊपरी सदन में 250 सदस्य होते हैं, जिसमें से 12 सदस्यों को उनके संबंधित क्षेत्रों में अनुकरणीय कार्य के लिए देश के नाममात्र प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाता है।
- नाम निर्देशन का उद्देश्य यह है कि प्रतिष्ठित लोगों को निर्वाचन में भाग लिए बिना राज्य सभा में स्थान प्राप्त हो सके।
- इस प्रणाली को आयरलैंड के संविधान से अपनाया गया है।

11.15. संविधान के प्रमुख उपबंधों के स्रोतों की सूची

- विभिन्न देशों के संविधान से अपनायी गई कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

ब्रिटेन	• नाम मात्र राज्य प्रमुख - राष्ट्रपति (महारानी के समान) • मंत्रियों की कैबिनेट प्रणाली • प्रधानमंत्री का पद • सरकार का संसदीय स्वरूप • द्विसदनीय संसद • निचला सदन अधिक शक्तिशाली • मंत्रिपरिषद् निचले सदन के प्रति उत्तरदायी • लोकसभा अध्यक्ष
अमेरीका	• लिखित संविधान • राज्य का कार्यकारी प्रमुख राष्ट्रपति के रूप में जाना जाएगा और वह सशस्त्र बलों का सर्वोच्च कमांडर होगा • उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन अध्यक्ष होता है • मूल अधिकार • उच्चतम न्यायालय • न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक पुनर्विलोकन • उद्देशिका • उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया
सोवियत संघ	• मूल कर्त्तव्य
ऑस्ट्रेलिया	• समवर्ती सूची • उद्देशिका की भाषा • व्यापार, वाणिज्य और समागम के संबंध में प्रावधान
जापान	• कानून, जिसके आधार पर उच्चतम न्यायालय कार्य करता है
जर्मनी का वाईमर संविधान	• आपातकाल के दौरान मूल अधिकारों का निलंबन

कनाडा	• सुदृढ़ केंद्र के साथ संघीय व्यवस्था • केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण और स्थिति • केंद्र के पास अवशिष्ट शक्तियां
आयरलैंड	• राज्य की नीति के निदेशक तत्व की अवधारणा (आयरलैंड में स्पेन से ग्रहण की गई) • राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि • राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा में सदस्यों का नाम निर्देशन।

12. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions)

1. **भारतीय संविधान ने न्यायिक सर्वोच्चता की अमेरिकी प्रणाली और संसदीय सर्वोच्चता की ब्रिटिश प्रणाली के मध्य बहुत ही उल्लेखनीय ढंग से मध्यम मार्ग अपनाया है। व्याख्या कीजिए।**

दृष्टिकोण:

उत्तर में, ब्रिटेन में संसदीय सर्वोच्चता, अमेरिका में न्यायिक सर्वोच्चता तथा भारतीय संदर्भ में संसदीय संप्रभुता और न्यायिक सर्वोच्चता के संतुलित मेल-जोल या संश्लेषण पर विचार किया जाना चाहिए।

उत्तर:

- ब्रिटिश संविधान के अंतर्गत न्यायालय, किसी भी आधार पर संसद के किसी भी अधिनियम को निष्प्रभावी नहीं कर सकती है।
- दूसरी ओर अमेरिका में, उच्चतम न्यायालय निम्नलिखित आधारों पर किसी कानून को अमान्य घोषित कर सकता है:
  - संविधान में निहित विधायी शक्ति के दायरे का अतिक्रमण;
  - बिल ऑफ़ राइट्स (अधिकार-अधिनियम) में दिए गए निषेधों के आधार पर; और
  - कुछ अन्य सामान्य सिद्धांतों के आधार पर, यथा- विधि की सम्यक् प्रक्रिया आदि।
- इन चरम परिस्थितियों के विपरीत भारतीय संविधान, न्यायपालिका को किसी विधि को असंवैधानिक घोषित करने की शक्ति प्रदान करता है, यदि उक्त विधि संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों के विभाजन के अनुसार विधायिका के क्षेत्राधिकार से बाहर है या संविधान द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों के विरुद्ध है। साथ ही, जहाँ तक विधायी नीति के विवेक का संबंध है, यह न्यायपालिका को 'न्यायिक पुनर्विलोकन' के अधिकार से भी वंचित करता है।
- सरल रूप में, भारत का उच्चतम न्यायालय अपने न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार से संसदीय कानून को असंवैधानिक घोषित कर सकता है और संसद अपनी विधायी शक्ति के माध्यम से संविधान के बड़े भाग का संशोधन कर सकती है।
- इसके अतिरिक्त, भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार की संभावना, अमेरिका में उच्चतम न्यायलय की तुलना में, प्रत्यक्षतः संकीर्ण है क्योंकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में स्थापित विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया की अवधारणा के प्रतिकूल अमेरिकी संविधान में विधि की सम्यक प्रक्रिया का प्रावधान है।
- फिर भी, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि भारत में न्यायपालिका ने मूल ढांचे के सिद्धांत जैसे नवाचार के माध्यम से न्यायिक पुनर्विलोकन के संबंध में संवैधानिक प्रावधानों के दायरे को विस्तृत किया है।

2. विश्व भर में संसदों के ऊपरी सदन को आम तौर से उनके निचले सदन की तुलना में कम शक्तिशाली माना जाता है। हालांकि, वे भी निश्चित कार्यों और शक्तियों से निहित हैं, जो उन्हें एक निर्णायक भूमिका के निर्वहन में सक्षम बनाता है। भारत के संदर्भ में विशेष बल देते हुए आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

दृष्टिकोण:

- विधायी और महाभियोग प्रक्रिया आदि के विशेष संदर्भ में प्रदर्शित कीजिए कि किस प्रकार ऊपरी सदन की शक्तियाँ व प्रस्थिति निचले सदन की तुलना में कम हैं।
- अनुच्छेद 249 और 312 के संदर्भ में भारत में राज्यसभा को विशेष शक्तियाँ, कार्यकारिणी पर नियंत्रण आदि।
- यह दर्शाते हुए उत्तर समाप्त कीजिए कि उच्च सदन एक महत्वपूर्ण संस्था है। किन्तु इसे निचले सदन की अपेक्षा कम शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

उत्तर:

उच्च सदन द्विसदनीय विधानमंडल के दो सदनों में से एक है। एकल प्रणाली के अंतर्गत उच्च सदन को एक परामर्शदात्री सदन माना जाता है जबकि संघीय प्रणालियों में इसे निचले सदन के लगभग समान ही शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। भारत की राज्य सभा केवल कुछ वित्तीय मामलों को छोड़कर लगभग सभी पहलुओं में लोकसभा के समान शक्तियाँ व प्रस्थिति धारण करती है।

उच्च सदन की गौण (अधीनस्थ) स्थिति के कई कारण हैं। वास्तव में, उच्च सदन की आवश्यकता के बारे में लगभग सभी देशों की संविधान सभा में काफी अधिक बहसें हुई हैं। थॉमस जैफरसन ने भी दो सदनों के विचार का विरोध किया था। यह अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित निकाय होता है जिसे कई विशेषज्ञ निर्वाचित निचले सदन के द्वारा व्यक्त जन भावना को समाप्त करने वाला निकाय मानते हैं। कुछ विद्वानों ने यह तर्क दिया कि "यदि दूसरा सदन पहले का विरोध करता है तो उसे उपद्रवी माना जाता है; यदि यह सहमत होता है तो इसे निरर्थक समझा जाता है।"

निम्नलिखित कुछ निश्चित शक्तियां और स्थितियां हैं जिनका संपूर्ण विश्व में उच्च सदन द्वारा प्रयोग किया जाता है:

- कुछ देशों में केवल कुछ सीमित वैधानिक मामलों, जैसे- संविधान संशोधन हेतु इसकी अनुमति की आवश्यकता होती है। ब्रिटेन में, हाउस ऑफ लार्ड्स यानी उच्च सदन अधिकांश अधिनियमों को पारित किए जाने से रोक नहीं सकता। उन देशों में जहाँ यह किसी कानून को वीटो कर सकता है (जैसे- नीदरलैंड), यह प्रस्तावों में संशोधन करने में सक्षम नहीं हो सकता।
- निचले सदन को जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किया जाता है और इसलिए वित्त से संबंधित मामलों में इसे विशेष शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। राज्य सभा धन विधेयक को केवल 14 दिनों (भारत के संदर्भ में) के लिए रोक सकती है।
- संसदीय प्रणाली में, उच्च सदन सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान नहीं कर सकता। यह भारत के संदर्भ में भी सत्य है।
- इंग्लैंड में एक विकासवादी राजनैतिक प्रणाली है जहाँ शक्ति क्रमशः राजसत्ता से हाउस ऑफ लाड्र्स, उच्च सदन से निम्न सदन की ओर स्थानान्तरित हुई है। अब, उच्च सदन सामान्यतः एक संशोधक सदन के रूप में कार्य करता है।

हालांकि, कुछ संघीय प्रणाली में उच्च सदन को कुछ विशेष शक्तियां प्रदान की गयीं हैं। USA का उच्च सदन विश्व के सर्वाधिक सशक्त उच्च सदनों में से एक है। राज्यों ने अपनी शक्तियाँ केन्द्र को समर्पित कर दी हैं और इसलिए उच्च सदन कुछ ऐसी शक्तियों का प्रयोग करता है जो निम्न सदन के पास नहीं हैं। भारत भी आरम्भ में सुदृढ़ संघ का समर्थन करता था। किन्तु अब भी, राज्य सभा को कुछ विशेष शक्तियां प्राप्त है। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- USA जैसे देशों के उच्च सदन कुछ कार्यकारी निर्णयों पर सलाह और सहमति प्रदान कर सकते हैं। (उदाहरणार्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति, अंतर्राष्ट्रीय संधि या राजदूत)।
- कुछ राष्ट्रों में केवल उच्च सदन को ही कार्यपालिका के अधिकारियों के विरुद्ध अभियोग चलाने का एकमात्र अधिकार प्राप्त है। USA में, इस मुद्दे पर केवल सीनेट ही अंतिम रूप से निर्णय करती है और दोष सिद्ध करती है। भारत की राज्य सभा को भारत के उप-राष्ट्रपति को पदच्युत करने का अधिकार प्राप्त है, जिससे लोकसभा सहमत हो।
- वर्ष 2009 से पूर्व, ब्रिटेन का उच्च सदन अंतिम न्यायालय के रूप में कार्य करता था।
- अनुच्छेद 249 राज्य सभा को, राज्य सूची के विषय पर विधि निर्माण के लिए संसद को सक्षम बनाने हेतु प्रस्ताव पारित करने की शक्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार, राज्य सभा अनुच्छेद 312 के अंतर्गत एक नई अखिल भारतीय सेवा (AIS) के सृजन के लिए प्रस्ताव पारित कर सकती है।
- लोक सभा के भंग रहने की स्थिति में राज्य सभा अनुच्छेद 352, 356 और 360 के अन्तर्गत जारी किसी उद्घोषणा की अवधि बढ़ा सकती है।

निष्कर्षत:, उच्च सदन की आवश्यकता सदैव वाद-विवाद का विषय रही है। कुछ विद्वान इसे इसकी संरचना (सदस्यों के अप्रत्यक्ष चुनाव) के कारण अलोकतांत्रिक मानते हैं, जबकि अन्य संविधान संशोधन और अन्य क्षमताओं के लिए इसका पक्ष-समर्थन करते हैं। भारत में राज्य सभा, धन विधेयक के मामलों के अतिरिक्त लोक सभा के लगभग समान शक्तियाँ धारण करती है।

3. संयुक्त राज्य अमेरिका में विधायिका को अंतर्राष्ट्रीय संधियों के अनुसमर्थन को विनियमित करने का अधिकार प्राप्त है, जबकि भारत में यह मुख्यतः कार्यपालिका का अधिकार क्षेत्र है। उदाहरणों सहित इन दोनों दृष्टिकोणों के औचित्य और लाभों का परीक्षण कीजिए।

दृष्टिकोण:

- अंतर्राष्ट्रीय संधियों के अनुसमर्थन के संदर्भ में भारत सरकार और अमेरिकी सरकार की शक्तियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए तथा अन्य लोकतांत्रिक देशों, जहाँ संधियों के अनुसमर्थन में विधान-मंडल की भी भूमिका होती है, से तुलना कीजिए।
- उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों और संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को दृष्टिगत रखते हुए, संबद्ध मुद्दों का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

उत्तर:

विदेशी शक्तियों के साथ संधियाँ और समझौते करना संप्रभु राज्य की विभिन्न विशेषताओं में से एक है। कोई भी राष्ट्र - विदेश संबंध, व्यापार, पर्यावरण, संचार, पारिस्थितिकी या वित्त - इनमें से किसी भी मामले में स्वयं को विश्व के अन्य हिस्सों से अलग नहीं रख सकता।

संयुक्त राज्य अमेरिका (USA) में संधि से संबद्ध प्रावधान

- USA का संविधान यह व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति को सीनेट की सहमति और सलाह से संधियाँ करने का अधिकार है।
- अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ करने की शक्ति को सीनेट से साझा करने के पीछे निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए गए हैं:
    - राष्ट्रपति को सीनेट की सलाह और सहमति का लाभ पहुँचाना;
    - राष्ट्रपति की शक्ति पर नियंत्रण रखना; और
    - संधि करने की प्रक्रिया में प्रत्येक राज्य को एक वोट का हिस्सा प्रदान कर राज्यों की संप्रभुता की रक्षा करना।

- उल्लेखनीय है कि सीनेट, संधियों का अनुसमर्थन नहीं करती है अपितु यह (सीनेट) अनुसमर्थन के संकल्प को स्वीकृत या अस्वीकृत करती है। ऐसे संकल्प के पारित (अर्थात् स्वीकृत) होने के उपरांत ही अंतर्राष्ट्रीय संधियों के अनुसमर्थन को मूर्त रूप दिया जाता है। इसके पश्चात् अनुसमर्थन संबंधी दस्तावेजों का औपचारिक रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका और विदेशी शक्ति (यों) के मध्य आदान-प्रदान होता है।
- उपर्युक्त (अर्थात् अमेरिकी सीनेट की सलाह और सहमति के बिना बाध्यकारी और प्रभावी नहीं होने वाली संधियों) के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय समझौते भी हैं जिन्हें **कार्यकारी शाखा** द्वारा संपन्न किया जाता है और सीनेट के समक्ष प्रस्तुत **नहीं** किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इन्हें, संधियों के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जाता है, अपितु कार्यकारी समझौतों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है और इनका केवल घरेलू महत्व होता है।
- अमेरिका के संविधान में संधियों को समाप्त करने संबंधी प्रावधान नहीं हैं।

भारत में संधि से संबद्ध प्रावधान

- भारतीय संविधान के तहत, संघ सूची में शामिल विषयों पर संसद को कानून बनाने (अनुच्छेद 246) का विशेष अधिकार प्राप्त है।
- किसी भी संधि को लागू करने के लिए, अनुच्छेद 253 के तहत संसद **राज्य सूची** के किसी भी विषय पर कानून बना सकती है।
- लेकिन संधियों की सौदेबाजी और उनके अनुसमर्थन के लिए निर्धारित की गई एक विशिष्ट प्रक्रिया के प्रावधानों की अनुपस्थिति में, सामान्यतः इस शक्ति का कार्यान्वयन कार्यपालिका में निहित है।
- इसके विपरीत न्यायपालिका ने कई घोषणाओं के माध्यम से इस पर बल दिया है कि संधि करने की शक्ति अनिवार्य रूप से राजनीतिक प्रकृति की है और इसलिए संधियों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए एक पृथक विधान लागू किया जाना चाहिए।
- संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग द्वारा भी इसका समर्थन किया गया है और सरकार की संधि करने की शक्ति को विनियमित करने के लिए संसद से कानून पारित करने की सिफारिश की है, लेकिन इसने संसदीय अनुसमर्थन जैसी किसी भी व्यवस्था को अस्वीकृत किया है।
- राष्ट्रीय संसद द्वारा अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों के अनुसमर्थन की कोई भी प्रक्रिया; परस्पर विरोधी विचारों एवं हितों और लोकतंत्र की परिपक्वता से संबंधित संस्थागत तंत्र के विकास के स्तर जैसे विभिन्न अन्य कारकों को देखते हुए निश्चित रूप से लंबी हो जाएगी। फिर भी, संसद द्वारा अनुसमर्थन की आवश्यकता यह सुनिश्चित करेगी कि दूरगामी प्रभाव वाले अंतर्राष्ट्रीय समझौते और संधियां सूक्ष्म विधायी जांच और व्यापक राजनीतिक एवं सार्वजनिक चर्चा के अधीन हों।

विधायी और कार्यकारी शक्तियों के संघीय ढांचे को देखते हुए संधि संपन्न करने की शक्ति का प्रयोग स्वेच्छाचारी या अनाधिकृत रूप से नहीं किया जा सकता है। अतः संसद को संधि करने के विषय के संबंध में एक कानून बनाना चाहिए और शामिल प्रक्रियाओं को प्रभावी बनाने के लिए संसदीय कानून के माध्यम से इसे लागू करना चाहिए।

नागरिकों के अधिकारों और दायित्वों को प्रभावित करने वाले एवं प्रत्यक्षतः राज्य सूची के विषयों से असंगत संधियों के मामले में संसद के प्रतिनिधियों तथा राज्यों की अधिक से अधिक भागीदारी होनी चाहिए।

ऐतिहासिक आधार, विकास, विशेषताएं, संशोधन, महत्वपूर्ण प्रावधान और बुनियादी संरचना

विषय सूची

1. परिचय ______ 65
1.1. संविधान क्या है? ______ 65
1.2. संविधान के कार्य ______ 65
1.3. संविधानवाद (Constitutionalism) क्या है? ______ 65
1.3.1. भारत में संविधानवाद (Constitutionalism In India) ______ 67
2. ऐतिहासिक आधार (Historical Underpinnings) ______ 67
2.1. ब्रिटिश शासन के अंतर्गत संवैधानिक घटनाक्रमों की भूमिका ______ 67
2.2. विश्लेषण ______ 67
2.2.1. ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन संवैधानिक विकास (1773-1858) ______ 67
2.2.2. ब्रिटिश ताज के अधीन संवैधानिक विकास (1858-1947) ______ 70
2.2.3. अन्य महत्वपूर्ण घटनाक्रम ______ 75
3. विकास (Evolution) ______ 77
3.1. दो आयाम ______ 77
3.1.1. संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किए जाने से पूर्व का घटनाक्रम ______ 77
3.1.2. एक सतत प्रक्रिया के रूप में क्रमिक विकास ______ 80
4. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं (Salient Features of the Constitution of India) ______ 81
4.1. लिखित एवं सबसे विस्तृत संविधान ______ 81
4.2. नम्यता (लचीलापन) एवं अनम्यता (कठोरता) का समन्वय ______ 83
4.3. लोकतांत्रिक गणराज्य ______ 83
4.4. सरकार का संसदीय स्वरूप ______ 84
4.5. संघीय और एकात्मक विशेषताओं का मिश्रण (Mixture Of Federal And Unitary Features) ______ 84
4.6. असममित संघवाद (Asymmetric federalism) ______ 86
4.7. मूल अधिकार (Fundamental Rights) ______ 86
4.8. राज्य की नीति के निदेशक तत्व ______ 87
4.9. मूल कर्त्तव्य (Fundamental Duties) ______ 87
4.10. पंथनिरपेक्ष राज्य ______ 87
4.11. स्वतंत्र, निष्पक्ष और एकीकृत न्यायपालिका ______ 87
4.12. एकल नागरिकता ______ 88
4.13. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) ______ 88

4.14. आपातकालीन शक्तियां 88
4.15. शक्ति का पृथक्करण (Separation of Powers) 88
4.16. स्वतंत्र निकाय 89
4.17. सरकार के तीन स्तर 90
5. संशोधन (Amendments) 90
5.1. भूमिका 90
5.2. संवैधानिक प्रावधानों के संशोधन की आवश्यकता 90
5.3. संशोधन के प्रकार 90
5.3.1. अदृश्य या अनौपचारिक प्रक्रिया 91
5.3.2. दृश्य या औपचारिक प्रक्रिया 91
5.4. मूल अधिकारों का संशोधन 93
5.4.1. शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ वाद, 1951 93
5.4.2. सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य वाद, 1965 93
5.4.3. गोलखनाथ बनाम पंजाब राज्य वाद, 1967 93
5.4.4. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद, 1973 94
5.4.5. 42वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 95
5.4.6. मिनर्वा मिल्स वाद, 1980 95
5.4.7. वामन राव बनाम भारत संघ वाद, 1981 95
5.5. उपर्युक्त के आधार पर निष्कर्ष 95
5.6. संविधान संशोधन की क्रमवार प्रक्रिया 95
5.7. संविधान संशोधन की प्रक्रिया की आलोचना 96
6. मूल ढाँचा/बुनियादी संरचना (Basic Structure) 96
6.1. परिभाषा 96
6.2. मूल ढाँचे की अवधारणा का उद्भव 97
6.2.1. परिचय 97
6.2.2. वाद-विवाद 98
6.2.3. केशवानंद भारती वाद, 1973 98
6.3. 'मूल ढाँचे' के सिद्धांत का आलोचनात्मक विश्लेषण 100
7. भारतीय संविधान के स्रोत 101
8. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions) 103
9. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions) 106

1. परिचय

1.1. संविधान क्या है?

- संविधान विशिष्ट कानूनी वैधता वाला एक विधिक दस्तावेज़ है। इसमें राज्य के मूलभूत संस्थानों की स्थापना का ढांचा (framework) निहित होता है। यह विभिन्न संस्थानों की कार्य प्रणाली को नियंत्रित करने वाले मूल सिद्धांतों को निर्दिष्ट करता है। इसके साथ ही, यह विभिन्न संस्थानों की संरचना, संघटन, क्षेत्राधिकार एवं उनके प्रमुख अधिदेश को भी निर्धारित करता है।
- वस्तुतः, यह विभिन्न संस्थानों के मध्य अंतर्संबंधों को परिभाषित करता है तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में नागरिकों और राज्य के मध्य संबंधों का संचालन करता है। संक्षेप में, यह किसी राष्ट्र की नियम पुस्तिका होती है जो उस समाज और उसके क़ानूनों को विनियमित करती है।
- संविधान, राज्य के शासकीय निकायों द्वारा अनुसरण की जाने वाली नीतियों को भी दर्शाता है। चूंकि भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है, अत: इसका संविधान नागरिकों को उनके मूल अधिकारों की गारंटी प्रदान करता है। राज्य की नीति के निदेशक तत्व मूलभूत सामाजिक-राजनीतिक मूल्यों को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

1.2. संविधान के कार्य

संविधान (लिखित या अलिखित) की महत्वपूर्ण राजनीतिक महत्ता होती है। इसके अनेक प्रकार्य होते हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- **विचारधारा की अभिव्यक्ति:** यह किसी राष्ट्र के दर्शन एवं विचारधारा को दर्शाता है।
- **मूलभूत कानून की अभिव्यक्ति:** संविधान मूलभूत क़ानूनों को प्रदर्शित करता है। इन क़ानूनों को एक प्रक्रिया के माध्यम से सामान्यतया संशोधित या परिवर्तित किया जा सकता है, जिसे **संविधान संशोधन** कहा जाता है। कुछ विशेष कानून भी होते है, जो नागरिकों के अधिकारों पर केंद्रित होते हैं; उदाहरणार्थ- अभिव्यक्ति, धर्म, सम्मेलन, प्रेस आदि की स्वतंत्रता से संबंधित अधिकार।
- **संगठनात्मक ढांचा:** यह सरकार के लिए एक संगठनात्मक ढांचा प्रदान करता है। यह विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यों, उनके अंतर्संबंधों, उनके प्राधिकारों पर अंकुश आदि को परिभाषित करता है।
- **सरकार के स्तर:** संविधान, सामान्यत: सरकार के विभिन्न अंगों के स्तरों को प्रदर्शित करता है। प्राय: यह संविधान द्वारा निरुपित किया जाता है कि वह संघीय है, परिसंघीय है या एकात्मक है। यह राष्ट्रीय और प्रांतीय सरकारों की शक्तियों को भी निरुपित करता है। भारत में तो यह स्थानीय सरकार की शक्तियों को भी निरुपित करता है।
    - **उदाहरण: सोवियत संविधान** में मुख्यतः विचारधारा की अभिव्यक्ति को प्रदर्शित किया गया था। उसमें संगठनात्मक ढांचे को अभिव्यक्त नहीं किया गया था। इसके विपरीत, **अमेरिकी संविधान** में तत्कालीन सरकार के दर्शन की अभिव्यक्ति की तुलना में सरकार के संगठनात्मक ढांचे एवं शासन पद्धति को विस्तृत रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

1.3. संविधानवाद (Constitutionalism) क्या है?

सर्वप्रथम हमें **संविधान** और **संविधानवाद** के मध्य अंतर समझने की आवश्यकता है।

- राज्य सत्ता में निहित **बाध्यकारी शक्ति** का प्रयोग शासकों द्वारा मनमाने ढंग से किया जा सकता है। संविधान का निर्माण राज्य सत्ता के विरुद्ध एक सुरक्षा तंत्र के रूप में किया जाता है। वह व्यवस्था, जो सरकारों या शासकों को (सामान्यत:) लिखित या अलिखित संविधान के माध्यम से क्षेत्राधिकार की सीमा के भीतर रहकर कार्य करने हेतु बाध्य करती है, उसे **संविधानवाद** कहा जाता है।

- संविधानवाद का तात्पर्य है कि राजनीतिक शक्ति का प्रयोग वस्तुतः सीमाओं, निर्बंधनों, नियंत्रण और नियमों के भीतर किया जाएगा। संविधानवाद की अवधारणा में शक्ति के निरंकुश एवं अधिनायकवादी प्रयोग के विरुद्ध **'सीमित सरकार'** और **'विधि के शासन'** के सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया है।

एक **सीमित सरकार (Limited government)** वह होती है जिसकी वैध सत्ता और शक्ति, प्रत्यायोजित प्राधिकरणों के माध्यम से प्रतिबंधित होती है। सीमित सरकार वाले देशों में इस संबंध में विधियों का निर्माण किया गया होता है कि सरकार क्या कर सकती है और क्या नहीं कर सकती है। **भारत में, संवैधानिक रूप से सीमित सरकार है,** जो संविधान द्वारा निर्धारित विशिष्ट सिद्धांतों और कार्यों के प्रति बाध्य है।

डायसी के **विधि के शासन** के सिद्धांत के अंतर्गत निम्नलिखित तीन प्रमुख सिद्धांत सम्मिलित हैं:

- **स्वेच्छाचारी शक्ति की अनुपस्थिति या विधि की सर्वोच्चता (Absence of Arbitrary Power or Supremacy of Law):** इसका तात्पर्य विधि की पूर्ण सर्वोच्चता से है और सिवाय देश के न्यायालयों के समक्ष सामान्य विधि के द्वारा स्थापित कानून के स्पष्ट उल्लंघन के किसी भी व्यक्ति को दंडित नहीं किया जा सकता है। डायसी का विचार था कि सभी व्यक्ति चाहे वह साधारण व्यक्ति हो या सरकारी प्राधिकरण, विधि का पालन करने हेतु बाध्य है। उनका मानना था कि पहले से स्थापित कानून के उल्लंघन के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को दंडित नहीं किया जा सकता है।
- **विधि के समक्ष समानता (Equality before law):** इसका तात्पर्य विधि की समानता या सभी वर्गों के लोगों पर देश की सामान्य विधि के लागू होने से है, जिसे सामान्य विधि न्यायालयों द्वारा प्रशासित किया जाता है। इस अर्थ में, विधि का शासन यह निर्दिष्ट करता है कि सभी व्यक्ति विधि के समक्ष समान हैं। यहां तक कि इस विधि का अनुपालन करना सरकारी अधिकारियों का भी कर्तव्य होता है और इनसे संबंधित मामलों से निपटने के लिए विशिष्ट न्यायालय नहीं हो सकते हैं।
- **संविधान, देश की सामान्य विधि का परिणाम है (Constitution is the result of the ordinary law of the land):** डायसी के अनुसार, कई देशों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्वतंत्रता आदि जैसे अधिकार देश के लिखित संविधान द्वारा प्रदान किए जाते हैं। लेकिन इंग्लैंड में इन अधिकारों की उत्पत्ति विभिन्न पक्षकारों के मध्य टकराव के संबंध में दिए गए न्यायिक निर्णयों के परिणामस्वरूप हुई है। संविधान, व्यक्तियों के अधिकारों का स्रोत नहीं बल्कि परिणाम है। लेकिन डायसी का यह सिद्धांत भारत में लागू नहीं होता है क्योंकि भारत में संविधान को विधि का मूल आधार माना गया है, जो सभी विधियों का स्रोत है।

के. सी. व्हेयर एवं **डब्ल्यू. जी. एंड्रयूज** के अनुसार संविधानवाद का अर्थ है:

- शक्तियों का विभाजन, न कि शक्तियों का केन्द्रीकरण;
- समाज में बहुमत के हितों की स्वीकृति;
- अधिनायकवादी या तानाशाही नेतृत्व की अनुपस्थिति; और
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर न्यूनतम प्रतिबंधों का आरोपण।

कार्ल जे. फ्रेडरिक के अनुसार, **शक्तियों का विभाजन** संविधानवाद का सबसे महत्वपूर्ण आधार है। राजतंत्र या गणतंत्र, कुलीनतंत्र या लोकतंत्र जैसी शासन प्रणालियों में भी संविधानवाद की उपस्थिति हो सकती है, यदि इन प्रणालियों में शक्तियों का विभाजन विद्यमान है।

1.3.1. भारत में संविधानवाद (Constitutionalism In India)

संविधानवाद भारतीय संविधान में भी विद्यमान है। निम्नलिखित विशेषताएँ इसकी साक्ष्य हैं:

- लिखित संविधान;
- संसदीय लोकतंत्र;
- विधि का शासन;
- मूल अधिकार;
- शक्तियों का पृथक्करण तथा नियंत्रण एवं संतुलन;
- नम्य संविधान तथा अपरिवर्तनीय मूल ढांचा;
- सरकार का संघीय स्वरुप; एवं
- स्वतंत्र न्यायपालिका और न्यायिक पुनर्विलोकन।

2. ऐतिहासिक आधार (Historical Underpinnings)

संविधान का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि संविधान के निर्माण के पूर्व और निर्माण के समय की घटनाओं का अध्ययन किया जाए। हमारे संविधान एवं राजव्यवस्था की अनेक विशेषताएँ ब्रिटिश शासन प्रणाली से ग्रहण की गई हैं। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1946 में एक संविधान सभा का गठन किया गया था और 26 जनवरी 1950 को संविधान अस्तित्व में आया।

2.1. ब्रिटिश शासन के अंतर्गत संवैधानिक घटनाक्रमों की भूमिका

इन घटनाक्रमों को निम्नलिखित दो शीर्षकों के तहत संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

- ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन संवैधानिक विकास (1773-1858)
- ब्रिटिश ताज के अधीन संवैधानिक विकास (1858-1947)

2.2. विश्लेषण

हम निम्नलिखित दो दृष्टिकोणों से इन ऐतिहासिक घटनाक्रमों का अध्ययन कर सकते हैं:

- सामान्य विशेषताओं के माध्यम से; तथा
- संविधान की वर्तमान प्रणाली के साथ किसी न किसी रूप में संबंधित विशेषताओं के माध्यम से। **(* से चिन्हित किया गया है)**

2.2.1. ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन संवैधानिक विकास (1773-1858)

(i) 1773 का रेगुलेटिंग एक्ट

इस अधिनियम का संवैधानिक महत्व है क्योंकि इसने भारत में केंद्रीय प्रशासन के सिद्धांतों को लागू किया।*

- इस अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्नर को **'बंगाल का गवर्नर जनरल'** पद नाम दिया गया एवं उसकी सहायता हेतु एक चार सदस्यीय कार्यकारी परिषद का गठन किया गया। ज्ञातव्य है कि प्रथम गवर्नर जनरल **वारेन हेस्टिंग्स** थे।
- इसके तहत बंबई और मद्रास के गवर्नर, बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन हो गए, जबकि इससे पूर्व सभी प्रेसिडेंसियों के गवर्नर पृथक-पृथक रूप से कार्य करते थे। इसके द्वारा शक्ति के **'केंद्रीकरण'** की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई, जो 1833 के चार्टर अधिनियम तक जारी रही।*

- इस अधिनियम के अंतर्गत **वर्ष 1774 में कलकत्ता में** एक **उच्चतम न्यायालय** की स्थापना की गई, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश और तीन अन्य न्यायाधीश थे।*
- इस अधिनियम के माध्यम से ब्रिटिश सरकार का कंपनी पर कठोर नियंत्रण स्थापित किया गया। **'कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स'** (कंपनी की गवर्निंग बॉडी) के माध्यम से भारत में इसके राजस्व, नागरिक और सैन्य मामलों पर ब्रिटिश सरकार को जानकारी देना आवश्यक कर दिया गया।
- इसका संवैधानिक महत्व है क्योंकि इसने भारत में **केंद्रीय प्रशासन के सिद्धांतों** को स्थापित किया।*

(ii) 1784 का पिट्स इंडिया एक्ट

- इस अधिनियम के द्वारा **कंपनी के वाणिज्यिक और राजनीतिक कार्यों को पृथक** किया गया।
- इस अधिनियम द्वारा राजनीतिक मामलों के प्रबंधन हेतु **बोर्ड ऑफ़ कंट्रोल (नियंत्रण बोर्ड)** का गठन किया गया, जबकि कंपनी के **वाणिज्यिक कार्यों** के प्रबंधन हेतु **कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स** (निदेशक मंडल) का गठन किया गया।
- इंग्लैंड में नियंत्रण बोर्ड को ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यों की निगरानी का आदेश दिया गया था। इसमें निम्नलिखित छह सदस्य सम्मिलित थे:
  - **राज्य सचिव** (ब्रिटिश कैबिनेट का एक सदस्य);
  - **चांसलर ऑफ़ एक्सचेकर;** और
  - राज्य सचिव द्वारा नियुक्त प्रिवी काउंसिल (Privy Council) के चार सदस्य।
- इस अधिनियम के तहत कार्यकारी परिषद के सदस्यों की संख्या कम करके तीन कर दी गयी जिनमें से एक कमांडर-इन-चीफ था। इसके द्वारा बंगाल के समान मद्रास और बंबई की परिषदों को भी संशोधित किया गया।
- इस अधिनियम ने नियंत्रण बोर्ड को ब्रिटिश नियंत्रित भारत की सभी असैनिक (नागरिक), सैन्य एवं राजस्व गतिविधियों का अधीक्षण एवं नियंत्रण करने के लिए सशक्त बनाया।
- इस प्रकार, इसने **दोहरी नियंत्रण प्रणाली (dual system of control)** अथवा **संयुक्त सरकार (joint government)** का मार्ग प्रशस्त किया।
- पहली बार कंपनी के अधीन क्षेत्रों को **'भारत में ब्रिटिश आधिपत्य का क्षेत्र'** (British possession in India) कहा गया।

अधिनियम का विश्लेषण

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, इस अधिनियम के माध्यम से **दोहरी नियंत्रण प्रणाली** की स्थापना (नियंत्रण बोर्ड के गठन के माध्यम से) की गई, जिसके अंतर्गत **कंपनी** और एक **संसदीय बोर्ड** द्वारा शासन किया जाना निर्धारित किया गया तथा यह वर्ष 1858 तक लागू रहा।

- नियंत्रण बोर्ड को कोई स्वतंत्र कार्यकारी शक्ति प्राप्त नहीं थी।
- इसे किसी प्रकार का संरक्षण प्राप्त नहीं था तथा इसकी शक्तियां अस्पष्ट थी।
- बोर्ड को कंपनी के सभी दस्तावेज़ों तक पहुँच प्राप्त थी एवं उन सभी प्रेषणों (dispatches) के लिए जो पूर्णतया व्यावसायिक नहीं थे, उनके लिए बोर्ड का अनुमोदन आवश्यक हो गया था। इसके अतिरिक्त, आपातकाल की स्थिति में बोर्ड अपने मसौदे को हस्ताक्षर हेतु निदेशकों की गुप्त समिति को प्रेषित कर सकता था।

इस प्रकार, इस अधिनियम के अंतर्गत कंपनी की **नागरिक और सैन्य सरकार को इंग्लैंड की सरकार के अधीन** किया गया।

(iii) 1813 का चार्टर अधिनियम

- इस अधिनियम के द्वारा भारत के प्रशासन में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आया।
- नेपोलियन द्वारा लागू की गई **महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System)** के परिणामस्वरूप ब्रिटेन का यूरोपीय देशों के साथ व्यापार बाधित हो गया था। परिणामस्वरूप ब्रिटिश कंपनियां एवं व्यापारी यूरोप से दूर अन्य देशों में व्यापार करने हेतु विवश हुए। अतः वे भारतीय व्यापार पर ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार को समाप्त करना चाहते थे। फलतः इस चार्टर एक्ट द्वारा भारत के साथ **कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त** कर दिया गया।
- यद्यपि, यह अधिनियम ईस्ट इंडिया कंपनी के **भारत के साथ व्यापार के एकाधिकार को समाप्त** करने के कारण महत्वपूर्ण था, तथापि कंपनी का चीन के साथ व्यापार और चाय के व्यापार पर एकाधिकार बना रहा।
- इसमें यह उपबंध किया गया था कि **भारतीयों की शिक्षा के लिए कंपनी द्वारा प्रतिवर्ष 1 लाख रुपये का व्यय** किया जाएगा। हालांकि, इस प्रावधान को लागू नहीं किया गया।
- इसके द्वारा स्थानीय निकायों को कर लगाने और उनके भुगतान न करने पर दंड देने का अधिकार दिया गया। हालांकि, यह कार्य सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन था।

(iv) 1833 का चार्टर अधिनियम

- इसे **'सेंट हेलेना अधिनियम'** के नाम से भी जाना जाता है। इसके द्वारा **'केंद्रीकरण'** को अंतिम स्वरूप प्रदान प्रदान किया गया।
- ब्रिटिश भारत में शासन के केंद्रीकरण की दिशा में यह अधिनियम एक निर्णायक कदम था:
  - बंगाल के गवर्नर जनरल को **भारत का गवर्नर जनरल** बना दिया गया, जिसमें सभी असैनिक (नागरिक) और सैन्य शक्तियां निहित थीं। ज्ञातव्य है कि **भारत के प्रथम गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक थे।**
  - सपरिषद् गवर्नर जनरल (Governor General in Council) को विधि निर्माण की सभी शक्तियां प्रदान की गई। सपरिषद् गवर्नर जनरल को कंपनी के सैनिक तथा असैनिक कार्य का नियंत्रण, निरीक्षण तथा निदेशन सौंप दिया गया।
  - इस प्रकार, इस अधिनियम ने पहली बार एक ऐसी सरकार का गठन किया, जिसका ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र वाले संपूर्ण क्षेत्र पर नियंत्रण था।
- पूर्व निर्मित कानूनों को **'नियामक कानून या रेगुलेशन'** कहा जाता था, वहीं इस नए एक्ट के अधीन निर्मित कानूनों को **'एक्ट या अधिनियम'** कहा गया।
- इस एक्ट के तहत ईस्ट इंडिया कंपनी के **व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त** कर दिया गया। अब यह विशुद्ध रूप से एक प्रशासनिक निकाय बन गयी।
- इसके द्वारा सभी भारतीय **कानूनों को संहिताबद्ध** करने का प्रयास किया गया। इस संबंध में, सरकार को एक भारतीय विधि आयोग गठित करने का निर्देश दिया गया था। इस प्रकार **लॉर्ड मैकाले की अध्यक्षता** में भारत के **प्रथम विधि आयोग** का गठन किया गया।
- **सिविल सेवकों के चयन के लिए खुली प्रतियोगिता का आयोजन प्रारंभ करने** हेतु प्रयास किए गए*। हालाँकि, कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स के **विरोध के कारण** उपर्युक्त प्रावधान को **समाप्त** कर दिया गया।

(v) 1853 का चार्टर ऐक्ट

संवैधानिक विकास की दृष्टि से यह अधिनियम महत्वपूर्ण माना जाता है:

- पहली बार सपरिषद् गवर्नर जनरल के **विधायी** एवं **प्रशासनिक** कार्यों को स्पष्ट रूप से पृथक किया गया।
  - इसके तहत परिषद में छह नए सदस्यों को शामिल कर एक नए निकाय **भारतीय विधान परिषद् या केंद्रीय विधान परिषद् (Indian Legislative Council or Central Legislative Council)** का गठन किया गया।
  - इस प्रकार, इस एक्ट द्वारा **भारत में संसदीय प्रणाली की शुरुआत** हुई।

- इसने **सिविल सेवकों की भर्ती एवं चयन हेतु खुली प्रतियोगी परीक्षा** का शुभारम्भ किया।*
    - इस प्रकार **संश्रावित जानपद सेवा (Covenanted Civil Services)** के लिए भारतीय नागरिकों को भी अनुमति प्रदान की गई।
    - 1854 में भारतीय सिविल सेवा के संबंध में **मैकाले समिति** की नियुक्ति की गई।
- पहली बार **भारतीय विधान परिषद में स्थानीय (प्रांतीय) प्रतिनिधित्व** प्रदान किया। मद्रास, बॉम्बे, बंगाल और आगरा की स्थानीय सरकारों द्वारा चार सदस्यों की नियुक्ति की गई।
- इस अधिनियम ने कंपनी के शासन अवधि का विस्तार किया और ब्रिटिश ताज की ओर से ट्रस्ट (प्रन्यास) के रूप में कंपनी को भारतीय प्रदेशों पर अधिकार बनाए रखने की अनुमति प्रदान दी। हालाँकि, पिछले चार्टर्स के विपरीत, इसमें कोई विशेष अवधि या समय-सीमा निर्धारित नहीं की गयी थी। इस प्रकार, इसमें यह संकेत निहित था कि संसद किसी भी समय जब चाहे कंपनी के शासन को समाप्त कर सकती है।

2.2.2. ब्रिटिश ताज के अधीन संवैधानिक विकास (1858-1947)

(i) 1858 का भारत शासन अधिनियम (Government of India Act, 1858)

- इस अधिनियम को **'भारत शासन को अधिक अच्छा बनाने के लिए अधिनियम'** (The Act for the Better Government of India) के नाम से जाना जाता है। इसके द्वारा भारतीय प्रदेशों पर ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को समाप्त कर दिया गया तथा शासन, प्रदेश और राजस्व संबंधी शक्तियों को ब्रिटिश ताज को हस्तांतरित कर दिया गया।
- इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य प्रशासनिक तंत्र में सुधार करना था। हालांकि, इसने भारत में प्रचलित शासन प्रणाली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया।

इस अधिनियम की कुछ अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- इस अधिनियम ने **बोर्ड ऑफ़ कंट्रोल** और **कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स** को समाप्त कर भारत में **दोहरी नियंत्रण प्रणाली** अथवा **डबल गवर्नमेंट** की व्यवस्था को समाप्त कर दिया।
- **भारत राज्य सचिव (Secretary of State for India)** नामक एक नवीन पद का सृजन किया गया, जिसे भारतीय प्रशासन पर संपूर्ण नियंत्रण की शक्ति प्रदान की गई।
    - भारत राज्य सचिव **ब्रिटिश कैबिनेट** का एक सदस्य था और वह अंतिम रूप से **ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी** था।
    - सचिव की सहायता के लिए एक 15 सदस्यीय परिषद् का प्रावधान किया गया, जो एक सलाहकारी निकाय थी। भारत राज्य सचिव इस परिषद् का अध्यक्ष था।
    - इस प्रकार, इसने भारतीय मामलों पर ब्रिटिश संसद का नियंत्रण स्थापित किया। देश का प्रशासन अब अत्यधिक केंद्रीकृत हो गया था।

वर्ष 1833 से वर्ष 1858 तक भारत में ब्रिटिश शासन का प्रमुख **भारत का गवर्नर जनरल** कहलाता था और उसे ईस्ट इंडिया कंपनी के **कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स** द्वारा नियुक्त किया जाता था एवं वह उन्हीं के प्रति उत्तरदायी भी था। वहीं वर्ष 1858 में कंपनी का शासन समाप्त होने के पश्चात भारत में शासन का प्रमुख **वायसराय** के नाम से जाना जाने लगा, जो ब्रिटिश ताज का प्रतिनिधि था और उसी के प्रति उत्तरदायी था।

(ii) भारत परिषद अधिनियम (Indian Councils Acts): इसे कुल तीन बार **1861, 1892** और **1909** में अधिनियमित किया गया:

- **1861 का भारत परिषद अधिनियम**
    - इस अधिनियम के द्वारा पहली बार भारतीय प्रतिनिधियों को कानून निर्माण प्रक्रिया में शामिल किया गया।
    - वायसराय अब कार्यकारी परिषद में कुछ भारतीयों को गैर-सरकारी सदस्य के रूप में **नामित** (nominate) कर सकता था।
    - इस अधिनियम ने मद्रास और बॉम्बे प्रेसिडेन्सियों को पुनः विधायी शक्तियाँ प्रदान कर **विकेंद्रीकरण** की प्रक्रिया की शुरुआत की।*
    - इसके तहत बंगाल, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत (NWFP) और पंजाब के लिए नई विधान परिषदों के गठन हेतु प्रावधान किया गया, जिन्हें क्रमशः 1862, 1866 और 1897 में स्थापित किया गया।
    - इसने लॉर्ड कैनिंग द्वारा वर्ष 1859 में प्रारंभ की गई **'पोर्टफोलियो'** प्रणाली को भी मान्यता प्रदान की।*
    - इसने वायसराय को **अध्यादेश** जारी करने के लिए अधिकृत किया।*
- **1892 का भारत परिषद अधिनियम**
    - इसने केंद्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या में वृद्धि की, लेकिन उनमें अभी भी सरकारी सदस्यों के बहुमत को बनाए रखा गया अर्थात इनकी संख्या अभी भी अधिक बनी रही।
    - इस अधिनियम ने केंद्रीय और प्रांतीय दोनों विधान परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति के लिए एक **सीमित और परोक्ष चुनाव का प्रावधान** किया।* हालांकि 'चुनाव' (elections) शब्द के बदले **'मनोनयन' (nomination)** शब्द का प्रयोग किया गया। इस प्रकार, पहली बार चुनाव संबंधी प्रावधान को सम्मिलित किया गया।
    - विधान परिषद के सदस्यों को **बजट पर बहस करने** और **प्रश्न पूछने की शक्ति** प्रदान की गई, हालाँकि **मत विभाजन का अधिकार नहीं** दिया गया।
- **1909 का भारत परिषद अधिनियम (मॉर्ले-मिंटो सुधार)**
    - इसने प्रांतीय और केंद्रीय दोनों विधान परिषदों के स्तर पर, सदस्यों की संख्या में वृद्धि की।
    - इसने केंद्रीय विधान परिषद में सरकारी सदस्यों के बहुमत को बनाए रखा। हालांकि, प्रांतीय विधान परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों के बहुमत को स्वीकृति प्रदान की गई।
    - विधान परिषदों के सदस्यों को चर्चा करने का अधिकार प्रदान किया गया। वे **अनुपूरक प्रश्न** पूछ सकते थे और बजट पर संकल्प प्रस्तुत कर सकते थे।
    - इसने **कार्यकारी परिषद में भारतीयों के प्रवेश का प्रावधान** किया। **सत्येन्द्र प्रसाद सिन्हा वायसराय की कार्यकारी परिषद के प्रथम भारतीय सदस्य** बने। उन्हें **विधि सदस्य** बनाया गया था।
    - इसने **सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व (communal representation)** की अवधारणा को स्वीकार करते हुए मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल (separate electorate) की शुरुआत की। इसके तहत, मुस्लिम सदस्यों को केवल मुस्लिम मतदाताओं द्वारा निर्वाचित किया जाना था। इस प्रकार, इस अधिनियम ने 'सांप्रदायिकता को वैधता' प्रदान की। **लॉर्ड मिंटो** को **सांप्रदायिक निर्वाचक मंडल का जनक** माना जाता है।

(iii) भारत शासन अधिनियम, 1919 (मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार)

वर्ष 1917 में ब्रिटिश सरकार ने पहली बार घोषित किया कि उसका उद्देश्य भारत में क्रमिक रूप से **उत्तरदायी शासन (राज्य सचिव मोंटेग्यू की घोषणा)** की स्थापना करना है। वर्ष 1919 में भारत शासन अधिनियम निर्मित किया गया। हालांकि, यह उक्त उद्देश्य के अनुरूप पूर्णत: संगत नहीं था। इस अधिनियम की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- केंद्रीय और प्रांतीय विषयों की सूची की पहचान कर एवं उन्हें पृथक कर राज्यों पर केंद्रीय नियंत्रण में कमी की गई। केंद्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों को अपनी-अपनी सूचियों के विषयों के संबंध में विधान बनाने का अधिकार प्रदान किया गया।*
    - हालांकि सरकार का मूल ढांचा पूर्णतया **केंद्रीय** और **एकात्मक** ही बना रहा।*
- **प्रांतीय स्तर पर द्वैध शासन (Dyarchy)** की शुरुआत की गई।
    - द्वैध शासन का अर्थ है: शासन के विषयों को दो भागों में विभक्त किया जाना।
    - ये दो भाग थे: **हस्तांतरित विषय** (जिन्हें मंत्रियों की सहायता से गवर्नर द्वारा प्रशासित किया जाना था) और **आरक्षित विषय** (इन्हें कार्यकारी परिषद की सहायता से गवर्नर द्वारा प्रशासित किया जाना था, जो विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी नहीं थे)।
- पहली बार **द्विसदनीय व्यवस्था (Bicameralism)** की शुरुआत की गई। इसे केन्द्रीय स्तर पर लागू किया गया था।
- पहली बार **प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था** प्रारंभ की गई।
    - **संपति, कर** और **शिक्षा** के आधार पर सीमित संख्या में **लोगों को मताधिकार** प्रदान किया गया।
- केंद्रीय बजट को **प्रांतीय बजट से पृथक** किया गया।
- इसमें एक **लोक सेवा आयोग के गठन** का प्रावधान किया गया। अतः वर्ष **1926** में सिविल सेवकों की भर्ती के लिए एक केंद्रीय लोक सेवा आयोग (1923-24 के **ली कमीशन** की सिफारिश पर) का गठन किया गया।
- इसने सिखों, भारतीय ईसाईयों, एंग्लो-इंडियन और यूरोपीय लोगों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल का प्रावधान करके **सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का विस्तार** किया।
- इसमें यह प्रावधान किया गया था कि इस अधिनियम से हुई प्रगति की समीक्षा और रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए 10 वर्ष पश्चात् एक वैधानिक आयोग गठित किया जाएगा।

(iv) भारत शासन अधिनियम, 1935 (Government of India Act, 1935)

1919 के भारत शासन अधिनियम को पारित करते समय की गयी घोषणा के अनुसरण में ब्रिटिश सरकार द्वारा इसकी समीक्षा के लिए **सर जॉन साइमन** की अध्यक्षता में एक **वैधानिक आयोग (statutory commission)** की नियुक्ति की घोषणा की गई। इस आयोग में कुल **सात सदस्य** थे। आयोग के सभी सदस्य ब्रिटिश थे, इसलिए सभी भारतीय दलों द्वारा आयोग का बहिष्कार किया गया। आयोग के प्रस्तावों पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा, ब्रिटिश भारत एवं ब्रिटिश सरकार तथा भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों के मध्य तीन गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया गया। इन सम्मेलनों की चर्चाओं के आधार पर, 'संवैधानिक सुधारों के संबंध में **श्वेत पत्र'** (White Paper on Constitutional Reforms) तैयार किया गया और इसे ब्रिटिश संसदीय समिति के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। इस समिति की सिफारिशों को कुछ परिवर्तनों के साथ भारत शासन अधिनियम, 1935 में सम्मिलित कर लिया गया।

इस अधिनियम का हमारे संविधान के वर्तमान स्वरूप के निर्माण में सर्वाधिक महत्व रहा है क्योंकि इसके कई प्रावधानों को हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा, किसी न किसी रूप में सम्मिलित किया गया है। साथ ही, इस अधिनियम के माध्यम से देश के लिए **एक लिखित संविधान** का निर्माण किया गया।*

इसके अतिरिक्त, भारत शासन अधिनियम, 1935 के द्वारा कई वर्षों के पश्चात्, भारतीयों को अपने देश के प्रशासन के संचालन का उत्तरदायित्व प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। इसकी कुछ प्रमुख **विशेषताएँ निम्नलिखित** हैं:

- इसने एक **अखिल भारतीय संघ (All-India Federation)** की स्थापना का प्रावधान किया, जिसमें ब्रिटिश शासित प्रांतों एवं देसी रियासतों को एक इकाई के समान माना गया था।*
    - इस अधिनियम द्वारा केंद्र और इकाइयों के मध्य शक्तियों को **तीन सूचियों** - संघीय सूची, प्रांतीय सूची और समवर्ती सूची में विभाजित किया गया।*
        - **संघीय सूची,** जिसमें केंद्र सरकार को सौंपे गए विषय शामिल थे।*
        - **प्रांतीय सूची,** जिसमें केवल प्रांतों के क्षेत्राधिकार में शामिल सभी विषय सम्मिलित थे।*
        - **समवर्ती सूची,** जिसमें केंद्र तथा प्रांतों दोनों के सामूहिक प्राधिकार वाले विषय सम्मिलित थे।*
    - **अवशिष्ट शक्तियां** वायसराय को प्रदान की गईं।
    - हालाँकि, यह फेडरेशन (संघ) कभी भी अस्तित्व में नहीं आया, क्योंकि देसी रियासतें इसमें शामिल नहीं हुईं। *
- इसने भारत शासन अधिनियम, 1919 के द्वारा राज्यों में लागू द्वैध शासन पद्धति को समाप्त कर (इसके स्थान पर) **'प्रांतीय स्वायत्तता'** की शुरुआत की। राज्यों को उनके लिए निर्धारित सीमा के तहत स्वायत्त तरीके से प्रशासन संचालन का अधिकार प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त, इस अधिनियम ने **राज्यों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना** की। अब गवर्नर के लिए राज्य विधान परिषदों के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह पर कार्य करना आवश्यक था। इस व्यवस्था को वर्ष **1937** में लागू किया गया तथा वर्ष **1939** को समाप्त कर दिया गया।
- इसके अंतर्गत केंद्र में द्वैध-शासन प्रणाली का प्रावधान किया गया था। इसके परिणामस्वरूप संघीय विषयों को आरक्षित और हस्तांतरित विषयों में विभाजित किया गया था। हालांकि, अधिनियम के इस प्रावधान को कभी भी लागू नहीं किया गया।
- ग्यारह में से छः प्रांतों में द्विसदनीय व्यवस्था को प्रारम्भ किया गया। इसके परिणामस्वरूप संयुक्त प्रांत, बिहार, असम, बंगाल, मद्रास और बॉम्बे की विधायिकाओं में दो सदन (विधानसभा और विधान परिषद्) तथा अन्य प्रांतों में एक सदन (विधानसभा) वाली विधायिका का गठन हुआ। इन सदनों की सदस्यता से संबंधित मानदंड भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न थे। केंद्र के स्तर पर संघीय विधायिका के दो सदनों **राज्य परिषद्** (Council of States) और **संघीय सभा** (Federal Assembly) में क्रमशः 260 और 375 सदस्यों का प्रावधान किया गया। राज्य परिषद् (उच्च सदन) एक स्थायी निकाय थी, जिसके एक तिहाई सदस्य प्रत्येक **तीन वर्षों** में सेवानिवृत्त होने थे।*
- केंद्र में एक **संघीय न्यायालय की स्थापना** की गयी।*

उपर्युक्त के अतिरिक्त, इसमें निम्नलिखित प्रावधान भी शामिल थे:

- सिंध और उड़ीसा प्रांतों का गठन।
- इसने **वंचित वर्गों (अनुसूचित जातियों), महिलाओं तथा मजदूर वर्ग के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था कर सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व** व्यवस्था का और विस्तार किया। हालांकि, महात्मा गांधी के प्रयासों से पूना समझौता के उपरांत अनुसूचित जातियों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था में थोड़ा सा परिवर्तन किया गया।

- बर्मा को भारत से पृथक कर दिया गया।
- 1858 के भारत शासन अधिनियम द्वारा स्थापित भारत परिषद् (इंडिया काउंसिल) को समाप्त कर दिया गया तथा भारत सचिव को भारत विषयक नीतियों पर परामर्श देने हेतु 3 से 6 सदस्यों वाली सलाहकारों की एक टीम का गठन किया गया।
- भारत सचिव से सामान्यतः भारतीय मामलों में हस्तक्षेप न करने की अपेक्षा की गई और इन मामलों पर गवर्नरों द्वारा निर्णय किया जाना था।
    - साथ ही, भारत के वायसराय के द्वारा पाँच वर्षों के कार्यकाल के लिए एक उच्चायोग की नियुक्ति की जानी थी।
- संघीय सरकार के संबंध में किए गए परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में, वायसराय इसका प्रमुख बना रहा। इस अधिनियम के तहत उसे प्रशासनिक, विधायी और वित्तीय शक्तियों सहित व्यापक शक्तियां प्रदान की गईं।
- आरक्षित विषयों का प्रशासन अपने कार्यकारिणी सदस्यों की सहायता से वायसराय अपनी इच्छानुसार कर सकता था। इसी प्रकार, हस्तांतरित विषय भी वायसराय के अधीन किए गए, जिन पर वह विधायिका से चुने गए भारतीय मंत्रियों (जिनकी अधिकतम संख्या 10 हो सकती थी) की सलाह के अनुसार कार्य करता था।
- प्रांतीय सरकारों के मामले में गवर्नर द्वारा प्रांतीय विधायिका से एक मंत्रिपरिषद् का चयन किया जाना था और इसके द्वारा इन्हीं मंत्रियों की सहायता से प्रशासनिक कार्यों का संचालन किया जाता था। प्रांतीय विधायिका की संरचना भी भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न रही।
- देश की मुद्रा एवं साख पर नियंत्रण रखने हेतु एक **भारतीय रिज़र्व बैंक** की स्थापना का प्रावधान किया गया।
- इसके माध्यम से मताधिकार का विस्तार किया गया और **लगभग 10 प्रतिशत जनसंख्या को मतदान का अधिकार** प्राप्त हुआ।

इस अधिनियम का आलोचनात्मक विश्लेषण

ऐसा कहा जाता है कि यह अधिनियम 'चाशनी में लिपटी कुनैन' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था:

- **संघीय व्यवस्था कभी अस्तित्व में नहीं आई** क्योंकि देसी रियासतों ने इसमें शामिल होने से मना कर दिया था।
- यद्यपि केंद्र में द्वैध शासन तथा प्रांतों की स्वायत्तता का प्रावधान किया गया था, तथापि निर्वाचित या मनोनीत सदस्यों की शक्तियां सीमित ही रहीं। इस अधिनियम ने एक प्रकार से प्रांतों में केन्द्र सरकार के नियंत्रण को बनाए रखा, क्योंकि गवर्नर को अपने 'विवेक' या कुछ मामलों में अपने 'व्यक्तिगत निर्णय' का प्रयोग करते हुए कार्य करने की शक्ति प्रदान की गई थी। ऐसे मामलों में गवर्नर बिना मंत्रियों की सलाह के तथा वायसराय एवं भारत सचिव के निर्देशन व नियंत्रण में कार्य करने के लिए बाध्य था।
- केंद्रीय और प्रांतीय विधायिकाओं की विधायी शक्तियां विभिन्न सीमाओं के अधीन थीं तथा दोनों में से किसी को भी एक संप्रभु विधान-मंडल की शक्तियां प्राप्त नहीं थी। उदाहरणार्थ:
    - वायसराय द्वारा वीटो की शक्ति के अतिरिक्त, केंद्रीय विधायिका द्वारा पारित किसी भी अधिनियम पर क्राउन द्वारा भी वीटो किया जा सकता था।
    - यदि वायसराय आश्वस्त हो कि विधायिका में प्रस्तुत विधेयक उसके "विशिष्ट उत्तरदायित्वों" के निर्वहन को प्रभावित कर रहा है तो वह उस विधेयक पर हो रही चर्चा को स्थगित कर सकता था और सदन की कार्यवाहियों को निलंबित कर सकता था।

- विधायिका के सत्र में न रहने के दौरान अध्यादेश प्रख्यापित करने के अतिरिक्त वायसराय को विधायिका के समानांतर कानून बनाने की स्वतंत्र शक्ति भी प्राप्त थी। इस प्रकार, वह अपने विशिष्ट उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए किसी भी समय अस्थायी अध्यादेशों के साथ-साथ स्थायी अधिनियमों के निर्माण की शक्ति भी धारण करता था।
- कुछ मामलों में वायसराय की पूर्व स्वीकृति के बिना विधायिका में कोई विधेयक या संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। उदाहरणार्थ - यदि विधेयक या संशोधन ब्रिटिश संसद द्वारा भारत में लागू किए जाने के आशय से निर्मित या वायसराय अथवा गवर्नर द्वारा पारित किसी अधिनियम के अधीन किसी कानून को निरस्त करने, उसमें सुधार करने अथवा उसके विरोध में कानून बनाने से संबंधित होता था या फिर यह किसी ऐसे मुद्दे को संबोधित करता था जिस पर वायसराय द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने की आवश्यकता थी, तो ऐसे विधेयक हेतु उसकी पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती थी।
- इसी प्रकार प्रांतीय विधायिकाओं पर भी अंकुश लगाया गया। अधिनियम के तहत जारी अन्य निर्देशों के अनुसार कुछ विषयों, यथा- उच्च न्यायालय की शक्तियों को कम करने या स्थायी बंदोबस्त को प्रभावित करने वाले इत्यादि से संबंधित विधेयक वायसराय या गवर्नर के समक्ष उनकी सहमति हेतु प्रस्तुत किए जाने पर क्रमशः क्राउन एवं वायसराय के विचारार्थ हेतु आरक्षित किए जाने थे।

2.2.3. अन्य महत्वपूर्ण घटनाक्रम

(i) साइमन कमीशन

- 1919 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा स्थापित भारतीय संविधान की कार्यप्रणाली पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु नवंबर 1927 में ब्रिटेन के कंजर्वेटिव दल की सरकार द्वारा साइमन कमीशन की नियुक्ति की गयी थी।
- आयोग की संरचना को लेकर भारत में इसकी व्यापक रूप से निंदा हुई **क्योंकि कोई भी भारतीय इसमें शामिल नहीं था।** कांग्रेस सहित अधिकांश भारतीय राजनीतिक दलों ने इस आयोग का बहिष्कार किया।
- आयोग की रिपोर्ट वर्ष 1930 में प्रकाशित हुई। इसके द्वारा भारत में प्रांतीय स्वायत्तता का प्रस्ताव रखा गया और प्रांतों में द्वैध शासन को प्रतिस्थापित कर उत्तरदायी सरकार के गठन की सिफारिश की गयी, जिसे वर्ष 1935 में लागू किया गया। हालांकि, इसने केंद्र में उत्तरदायी सरकार के विचार को अस्वीकृत कर दिया। इसने संघवाद को स्वीकार कर लिया और ब्रिटिश ताज तथा भारतीय रियासतों के मध्य प्रत्यक्ष संपर्क बनाए रखने की मांग की।
- वर्ष 1929 में वायसराय लॉर्ड इरविन द्वारा की गयी अक्टूबर घोषणा ने इस आयोग की अधिकांश सिफारिशों को अप्रचलित (आउटडेटेड) कर दिया। उल्लेखनीय है कि इस घोषणा में भारतीय संवैधानिक विकास का लक्ष्य डोमिनियन स्टेटस रखा गया था।

(ii) सांप्रदायिक पंचाट (Communal Award)

- अगस्त 1932 में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के पश्चात्, ब्रिटिश प्रधानमंत्री, **रैमजे मैकडोनाल्ड** ने 'सांप्रदायिक पंचाट' की घोषणा की। इसके अनुसार, अगड़ी जातियों, निचली जातियों, मुस्लिम, बौद्ध, सिख, भारतीय ईसाईयों, आंग्ल-भारतीय, यूरोपीय और दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाना था। दलितों को कुछ विशेष विधानसभा क्षेत्रों में कुछ सीटें प्रदान की गईं जिन पर केवल दलित समुदाय से संबंधित मतदाता ही वोट कर सकते थे।

- महात्मा गांधी द्वारा इस पंचाट का विरोध किया गया। उन्होंने इसके विरुद्ध उपवास भी किया। इस संबंध में गाँधीजी और अंबेडकर के बीच एक विस्तृत वार्ता के बाद एक समझौता हुआ, जिसे **पूना समझौता** कहा जाता है। इस समझौते में गाँधीजी एवं डॉ. अंबेडकर के अतिरिक्त मदन मोहन मालवीय एवं एम. सी. रजा भी शामिल थे। इस समझौते में यह व्यवस्था की गई थी कि हिंदुओं का एक ही मत होगा, उनमें सांप्रदायिक पंचाट के आधार पर विभाजन नहीं किया जाएगा और दलितों के लिए इसी के अंतर्गत सीटें आरक्षित होंगी।

(iii) क्रिप्स मिशन (Cripps Mission)

- **मार्च 1942** में, ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सदस्य, सर स्टैनफ़ोर्ड क्रिप्स, ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तुत एक मसौदा प्रस्ताव के साथ भारत आए। इन प्रस्तावों को, द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात लागू किया जाना था, बशर्ते कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा उक्त प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की जाए।
- क्रिप्स प्रस्ताव के अनुसार:
  - भारतीय लोगों द्वारा निर्वाचित संविधान सभा द्वारा **भारत के संविधान का निर्माण** किया जाएगा।
  - उक्त संविधान, भारत को अधिराज्य **(डोमिनियन)** का दर्जा प्रदान करेगा।
  - सभी प्रांतों और भारतीय राज्यों के लिए एक **भारतीय संघ** की स्थापना की जाएगी।
  - जो भी प्रांत (या देसी रियासत) इस संविधान को अस्वीकृत करेंगे, उन्हें यह अधिकार होगा कि वह अपनी यथास्थिति को बनाए रखें। उक्त संविधान को न स्वीकारने वाले राज्यों के लिए, ब्रिटिश सरकार पृथक संवैधानिक व्यवस्था स्थापित कर सकती है।

(iv) कैबिनेट मिशन (Cabinet Mission)

- मार्च 1946 में, **लार्ड एटली** द्वारा तीन कैबिनेट मंत्रियों से निर्मित एक शिष्टमंडल (कैबिनेट मिशन) को भारत भेजा गया, जिसमें **लार्ड पेथिक लॉरेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स** और **ए. वी. अलेक्जेंडर** शामिल थे।
- कैबिनेट मिशन का उद्देश्य भारत की यथाशीघ्र स्वतंत्रता प्राप्ति में सहायता करना और एक संविधान सभा का गठन करना था।
- कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार, ब्रिटिश भारत और देसी रियासतों को शामिल कर **भारत संघ** का गठन किया जाना था, जिसके अधिकार क्षेत्र में विदेश, रक्षा और संचार संबंधी विषय होंगे। जबकि सभी अवशिष्ट शक्तियाँ प्रांतों और राज्यों में निहित होंगी।
- संघ में एक **कार्यपालिका** और एक **विधायिका** का गठन किया जाना था, जिसमें रियासतों एवं प्रांतों के प्रतिनिधि शामिल होने थे।
- प्रत्येक प्रांत कार्यपालिका और विधायिका के साथ समूह बना सकते थे और प्रत्येक समूह को प्रांतीय विषयों के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार था।

(v) माउंटबेटन योजना (Mountbatten Plan)

इस योजना में **भारतीयों को सत्ता का हस्तांतरण** और **देश के विभाजन** संबंधी प्रावधान किए गए थे। 3 जून 1947 को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तुत एक औपचारिक घोषणा के माध्यम से इसे लागू किया गया।

(vi) भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947

20 फरवरी 1947 को तत्कालीन **ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली** ने घोषणा की थी कि 30 जून 1948 तक भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाएगा। इसी को ध्यान में रखते हुए भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 पारित किया गया। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के तहत निम्नलिखित प्रावधान थे:

- ब्रिटिश शासन की समाप्ति।
- भारत और पाकिस्तान के रूप में देश का विभाजन।
- वायसराय के पद की समाप्ति तथा भारत और पाकिस्तान दोनों के लिए एक गवर्नर जनरल की नियुक्ति।
- भारत और पाकिस्तान दोनों डोमिनियनों की संविधान सभाओं को सशक्त करना ताकि वे दोनों देशों के लिए संविधान का निर्माण एवं अंगीकरण कर सकें।

3. विकास (Evolution)

3.1. दो आयाम

इसे हम निम्नलिखित दो आयामों के अंतर्गत समझ सकते हैं:

- संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किए जाने से पूर्व का घटनाक्रम (वर्ष 1950 के पूर्व की घटनाएँ); एवं
- एक सतत प्रक्रिया के रूप में विकास (वर्ष 1950 के पश्चात् की घटनाएँ)।

3.1.1. संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किए जाने से पूर्व का घटनाक्रम

- **संविधान सभा**
  - **परिचय**
    - एक संप्रभु लोकतांत्रिक राष्ट्र का संविधान तैयार करने का कार्य इसके लोगों की एक प्रतिनिधि संस्था द्वारा किया जाता है। संविधान पर विचार करने एवं उसे अंगीकृत करने के उद्देश्य से लोगों द्वारा निर्वाचित (प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष) ऐसे निकाय को संविधान सभा कहा जाता है।
  - **संविधान सभा के विचार की उत्पत्ति**
    - संविधान सभा का विचार वर्ष 1906 में ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा स्वराज के लिए की गई मांग में निहित था।
    - भारत में संविधान सभा के गठन का विचार सर्वप्रथम वर्ष **1934** में **एम. एन. रॉय** द्वारा प्रस्तुत किया गया।
    - वर्ष 1936, में कांग्रेस ने यह संकल्प किया कि, "कांग्रेस भारत में एक ऐसे विशुद्ध लोकतांत्रिक राज्य हेतु दृढ़ संकल्पित है, जहां सम्पूर्ण सत्ता जनता में निहित होगी तथा सरकार उनके प्रभावी नियंत्रण में कार्य करेगी। ऐसा राज्य केवल एक संविधान सभा के माध्यम से ही अस्तित्व में सकता है, जिसे (संविधान सभा) देश के लिए संविधान निर्मित करने की अंतिम शक्ति प्राप्त होगी।"
    - 15 मार्च 1946 को लेबर पार्टी के प्रधानमंत्री ऐटली द्वारा स्पष्ट रूप से स्वयं अपना संविधान निर्मित करने संबंधी भारतीयों के अधिकार को स्वीकार किया गया।
    - तदनुपरांत ब्रिटिश संसद द्वारा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 पारित किया गया। 15 अगस्त 1947 से प्रभावी होने वाले इस अधिनियम के तहत दो स्वतंत्र डोमिनियन (भारत एवं पाकिस्तान) का निर्माण किया गया।
    - पहले से ही गठित संविधान सभा ने कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार कार्य करना आरम्भ कर दिया। संपूर्ण भारत के लिए इसकी सदस्य संख्या 389 थी। इसके अंतर्गत 93 सदस्य देसी रियासतों और 292 सदस्य ब्रिटिश भारतीय प्रांतों से निर्वाचित (अप्रत्यक्ष रीति से) किए गए थे तथा 4 चीफ कमिश्नर वाले क्षेत्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे।

- 9 दिसंबर 1946 को संविधान सभा की प्रथम बैठक हुई थी। ज्ञातव्य है कि **प्रथम बैठक के समय संविधान सभा एक संप्रभु निकाय नहीं थी।** इसे ब्रिटिश संसद के कैबिनेट मिशन द्वारा निर्धारित एक निश्चित प्रक्रिया का अनुपालन करना था।
- **11 दिसंबर 1946** को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने **डॉ. राजेंद्र प्रसाद** को **संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष** के रूप में चुना।

(i) संविधान सभा का गठन

- संविधान सभा आंशिक रूप से निर्वाचित और आंशिक रूप से नामित एक निकाय थी। इसके सदस्यों का चयन **अप्रत्यक्ष** रूप से **प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा** किया गया था। उल्लेखनीय है कि प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों का निर्वाचन सीमित मताधिकार (कर, संपत्ति और शिक्षा के आधार पर) के आधार पर हुआ था।
- यद्यपि, यह अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित निकाय थी, तथापि, इसमें भारतीय समाज के सभी वर्गों (यथा- हिंदू, मुस्लिम, सिख, पारसी, आंग्ल-भारतीय) के प्रतिनिधि शामिल थे। इसके अतिरिक्त, गाँधीजी और जिन्ना को छोड़कर संविधान सभा में तत्कालीन भारत के लगभग सभी प्रमुख व्यक्तित्व (नेता) शामिल थे।

(ii) संविधान सभा की समितियां

संविधान सभा ने संविधान निर्माण से संबंधित विभिन्न कार्यों के सरलतापूर्वक निर्वहन हेतु 8 प्रमुख समितियों और कई अन्य छोटी समितियों का गठन किया था। प्रमुख समितियां और उनके अध्यक्षों के नाम इस प्रकार हैं:

- **प्रारूप समिति - डॉ. बी. आर. अंबेडकर**
  - यह संविधान सभा की **सबसे महत्वपूर्ण** समिति थी। इसमें **सात सदस्य** थे और इसे नए संविधान का एक प्रारूप तैयार करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था। संविधान का प्रारूप छः माह से भी कम समय में बनकर तैयार हुआ जो स्वयं में एक बड़ी उपलब्धि है।
- **संघ शक्ति समिति -** जवाहर लाल नेहरू
- **संघीय संविधान समिति -** जवाहर लाल नेहरू
- **प्रांतीय संविधान समिति -** सरदार वल्लभभाई पटेल
- **मूल अधिकार, अल्पसंख्यकों एवं जनजातीय और अपवर्जित क्षेत्रों संबंधी सलाहकारी समिति -** सरदार वल्लभभाई पटेल

  इसकी निम्नलिखित उप-समितियां थीं:
  - **अल्पसंख्यक उप-समिति-** एच. सी. मुखर्जी
  - **मूल अधिकार उप-समिति-** जे. बी. कृपलानी
  - **अपवर्जित और आंशिक रूप से अपवर्जित क्षेत्रों (असम के क्षेत्रों को छोड़कर) संबंधी उपसमिति-** ए. वी. ठक्कर
  - **पूर्वोत्तर सीमांत जनजातीय क्षेत्रों और आसाम के अपवर्जित और आंशिक रूप से अपवर्जित क्षेत्रों संबंधी उपसमिति-** गोपीनाथ बारदोलोई
- **राज्यों के लिए समिति -** जवाहर लाल नेहरू
- **प्रक्रिया नियम समिति -** डॉ. राजेंद्र प्रसाद
- **संचालन समिति -** डॉ. राजेंद्र प्रसाद

छोटी समितियों में से कुछ निम्नलिखित थीं:

- **कार्य संचालन समिति -** के. एम. मुंशी
- **राष्ट्रीय ध्वज संबंधी तदर्थ समिति -** डॉ. राजेंद्र प्रसाद
- **संविधान सभा के कार्यों से संबंधी समिति -** जी. वी. मावलंकर

- **सदन समिति -** बी. पट्टाभिसीतारमैया
- **क्रेडेंशियल समिति -** सर अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर
- **वित्त एवं कार्मिक समिति -** डॉ. राजेंद्र प्रसाद
- **चीफ कमिश्नर वाले प्रांतों की समिति -** बी. पट्टाभिसीतारमैया
- **सर्वोच्च न्यायालय संबंधी तदर्थ समिति-** एस. वर्दाचारियर

(iii) कार्यप्रणाली

संविधान सभा की प्रथम बैठक 9 दिसम्बर 1946 को हुई, जिसका मुस्लिम लीग द्वारा बहिष्कार किया गया और पृथक पाकिस्तान की मांग पर बल दिया गया।

- **उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolutions)**

  13 दिसम्बर 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा के समक्ष ऐतिहासिक 'उद्देश्य प्रस्ताव' प्रस्तुत किया। 'उद्देश्य प्रस्ताव' का मूल विचार संवैधानिक संरचना के मूल सिद्धांतों एवं दर्शन को प्रतिष्ठापित करना था। इसके प्रमुख अंश इस प्रकार थे:
  - संविधान सभा भारत को एक स्वतंत्र एवं संप्रभु गणराज्य घोषित करने संबंधी अपने दृढ़ एवं महत्त्वपूर्ण संकल्प को व्यक्त करती है।
  - संप्रभु स्वतंत्र भारत की सभी शक्तियां एवं प्राधिकार, इसके अभिन्न अंग तथा सरकार के अंग, सभी का स्रोत भारत की जनता होगी। (लोकतंत्र का समर्थन)
  - भारत के सभी लोगों के लिए न्याय, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता एवं सुरक्षा, अवसर की समानता, विधि के समक्ष समता, विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विश्वास, आस्था, उपासना, व्यवसाय करने, संगठन बनाने की स्वतंत्रता तथा लोक सदाचार की स्थापना सुनिश्चित की जाएगी। (मूल अधिकार)
  - अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गों तथा जनजातीय क्षेत्रों के लोगों को पर्याप्त सुरक्षा उपाय प्रदान की जाएगी। (भाग X, भाग XVI)
  - केंद्रीय सरकार भारतीय गणराज्य के क्षेत्रों की एकता तथा विश्व के सभ्य देशों के न्याय एवं विधियों के आधार पर भू-क्षेत्र, समुद्र और वायु क्षेत्र में अपनी संप्रभुता को अक्षुण्ण बनाए रखेगी।
  - एक प्राचीन भूमि होने के कारण भारत विश्व में अपना उचित और सम्मानजनक स्थान रखता है तथा यह विश्व शांति एवं मानव कल्याण को बढ़ावा देने में अपना पूर्ण योगदान सुनिश्चित करेगा।
- 'उद्देश्य प्रस्ताव', वर्तमान भारतीय संविधान की उद्देश्यिका का आधार बना।

(iv) अधिनियमन और प्रवर्तन

- संविधान के प्रारूप के दो बार वाचन के पश्चात् विभिन्न परिवर्तनों को इसमें शामिल किया गया, तत्पश्चात डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने 26 नवंबर 1949 को एक प्रस्ताव प्रस्तावित किया। 26 नवंबर 1949 के दिन ही भारत के लोगों ने 'संविधान सभा में संविधान को **अंगीकृत, अधिनियमित एवं आत्मार्पित** किया'।
- अपने (26 जनवरी के) ऐतिहासिक महत्व के कारण 26 जनवरी 1950 को संविधान के **'लागू होने की तिथि'** के रूप में चुना गया। (हालांकि, संविधान के कुछ प्रावधानों को 26 नवंबर 1949 से ही लागू कर दिया गया था)

(v) संविधान सभा की आलोचना

- **यह प्रतिनिधि निकाय नहीं थी:** संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव लोगों द्वारा सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से **नहीं** किया गया था।

- **यह एक संप्रभु निकाय नहीं थी:** यह कहा जाता है कि संविधान सभा का गठन ब्रिटिश सरकार के प्रस्तावों के आधार पर किया गया था। इसके अतिरिक्त, इसके द्वारा ब्रिटिश सरकार की अनुमति के पश्चात् ही अपने सत्र का आयोजन किया जाता था।
- **कांग्रेस के सदस्यों का वर्चस्व:** ब्रिटिश संविधान विशेषज्ञ **ग्रेनविले ऑस्टिन** ने टिप्पणी की: "संविधान सभा एक-दलीय देश का एक-दलीय निकाय थी। सभा ही कांग्रेस थी और कांग्रेस ही भारत थी।"
- **वकीलों एवं राजनीतिज्ञों का वर्चस्व:** यह माना जाता है कि वकीलों और राजनेताओं का विधानसभाओं में प्रभुत्व था। उल्लेखनीय है कि इसे संविधान की विस्तृत और जटिल प्रकृति के पीछे मुख्य कारण के रूप में उद्धृत किया गया है।

3.1.2. एक सतत प्रक्रिया के रूप में क्रमिक विकास

- न्यायमूर्ति **श्री एच. आर. खन्ना** ने अपनी पुस्तक '**मेकिंग ऑफ़ कॉन्स्टिट्यूशन**' में कहा है कि: "संविधान का निर्माण कार्य उच्चतम शासन कौशल की मांग करता है। जिन्हें इस कार्य का दायित्व सौंपा जाता है, उन्हें सरकार की व्यवहारिक आवश्यकताओं का ज्ञान होना चाहिए, साथ ही उन्हें राष्ट्र निर्माण को प्रेरित करने वाले आदर्शों को भी ध्यान में रखना होता है"।
- किसी संविधान को जीवंत दस्तावेज़ के रूप में होना चाहिए। इसे एक या दो पीढ़ियों के लिए नहीं बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए एक जीवंत दस्तावेज़ होना चाहिए। इसका कारण यह है कि संविधान के प्रावधान को सामान्य शब्दों में वर्णित किया जाता है, असाधारण सामान्योक्ति के लिए संविधान की विषय-वस्तु और महत्व समय-समय पर परिवर्तित होते रहते हैं और साथ ही उसमें अनुभवातीत निरंतरता भी शामिल होती है।
- एक संविधान को भूतकाल के लिए नियमों का निर्माण नहीं करना चाहिए बल्कि उसे भविष्य के लिए सिद्धांतों का निर्माण करना चाहिए।
- संविधान की निम्नलिखित दो अंतर्जात विशेषताओं के कारण इसे जीवंत माना गया है:

(i) भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह सतत परिवर्तन के लिए उपलब्ध है, ताकि समय के साथ इसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन किए जा सकें। नवीन संशोधनों द्वारा संविधान को अभिपुष्ट (ratify) करके या किसी विद्यमान प्रावधान को निरस्त करके इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:

- **42वें संविधान संशोधन अधिनियम** द्वारा संविधान के एक अंग के रूप में स्पष्ट रूप से **पंथनिरपेक्षता** और **समाजवाद** की अवधारणाओं का उल्लेख किया गया।
- अनुच्छेद 15(4) को प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया है और इसके द्वारा सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों के लिए सकारात्मक कार्रवाई करने का प्रावधान किया गया था।
- इसी प्रकार, अनुच्छेद 15(5) शिक्षण संस्थानों (चाहे वे सरकारी सहायता प्राप्त हो या गैर-सहायता प्राप्त) में सामाजिक और शैक्षणिक रूप से कमजोर वर्गो के लिए सकारात्मक कार्रवाई करने का प्रावधान करता है। अनुच्छेद 15(5) को 93वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया है।

(ii) इसके अतिरिक्त, संविधान उच्चतम न्यायालय द्वारा निरंतर व्याख्या के लिए खुला है। संविधान उच्चतम न्यायालय को ऐसी व्याख्याओं की अनुमति प्रदान करता है जो:

- उत्तरोत्तर समय और समकालीन वास्तविकता की प्रवृत्ति के लिए प्रासंगिक हों।
- अधिकतम सीमा तक लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करता हो।

पुनः निम्नलिखित उदाहरण व्याख्या करते हैं कि कैसे नागरिकों की आकांक्षाओं और समय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संवैधानिक प्रावधानों को जोड़ा, संशोधित और पुनर्व्याख्यायित किया गया:

- **शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21-A):** शिक्षा के अधिकार को उच्चतम न्यायालय द्वारा **मोहिनी जैन और उन्नीकृष्णन वाद** में ऐतिहासिक निर्णय के पश्चात् भारत की संसद द्वारा पारित 86वें संविधान संशोधन के माध्यम से सम्मिलित किया गया था।
- उच्चतम न्यायालय ने **अनुच्छेद 21 या 'प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण'** की सीमा को निरंतर विस्तृत करके लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने तथा संविधान को जीवंत बनाए रखने में सहायता की है। वर्ष 1978 के **मेनका गांधी बनाम भारत संघ वाद** के अपने निर्णय के साथ आरंभ करते हुए उच्चतम न्यायालय ने समय-समय पर लोगों के सामान्य जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों के समाधान और समकालिक अन्य आवश्यकताओं से निपटने के लिए विभिन्न निर्णय दिए हैं। दिल्ली का CNG मामला, गंगा नदी संरक्षण मामला, पर्याप्त आश्रय के अधिकार से संबंधित मामला इत्यादि के संबंध में दिए गए निर्णय इसके उदाहरण हैं।

इस प्रकार, संविधान एक जीवित जीव (जो अपने अनुभव और आसपास के पर्यावरण से सीखते हैं) के समान निरंतर विकसित होता है।

4. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं (Salient Features of the Constitution of India)

- संविधान की प्रमुख विशेषताएं स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने वाले लक्षण या विशेष तथ्य होते हैं। भारतीय संविधान इन्हीं विशिष्ट लक्षणों के माध्यम से विभिन्न वैचारिक नियमों और मूल्यों के मध्य समन्वय स्थापित करता है। ये सब विशिष्ट लक्षण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के ऐतिहासिक मूल्यों से प्रेरित रहे हैं, जो भारतीय संविधान की सफलता को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

4.1. लिखित एवं सबसे विस्तृत संविधान

- भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है। इसके साथ ही यह विश्व के सभी देशों के संविधान की तुलना में सबसे अधिक विस्तृत भी है। मूल संविधान में 395 अनुच्छेद एवं 8 अनुसूचियां सम्मिलित थी, जिनमें संविधान संशोधनों के माध्यम से कई परिवर्तन किए गए हैं। अप्रैल 2017 तक इसमें 25 भाग, 12 अनुसूचियों और 5 परिशिष्टों सहित 448 अनुच्छेद थे। वर्ष 1950 में अधिनियमित होने के पश्चात् संविधान संशोधन हेतु 125 संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किए गए हैं तथा 103 संविधान संशोधन कानून पारित किए जा चुके हैं।

लिखित और अलिखित संविधान

- **लिखित संविधान** विधियों के रूप में विधिवत प्रवर्तित विधायी दस्तावेज होता है। यह स्पष्ट, निश्चित और व्यवस्थित होता है। यह लोगों के सचेतन एवं सुविचारित प्रयासों का परिणाम होता है तथा इसे देश के राजनीतिक इतिहास की एक विशिष्ट अवधि में लोगों द्वारा विधिवत रूप से चयनित एक प्रतिनिधित्व निकाय द्वारा निर्मित किया जाता है। इसे भूतकाल में एक निर्दिष्ट तिथि को प्रख्यापित किया गया होता है। एक लिखित संविधान सामान्यतया अनम्य (rigid) होता है तथा इसके संशोधन या पुनरीक्षण हेतु साधारण कानून को अधिनियमित करने की प्रक्रिया से पृथक एक प्रक्रिया होती है अर्थात् संवैधानिक विधि एवं सामान्य विधि के मध्य एक विभेद स्थापित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान एक प्रतिनिधित्वकारी संविधान सभा (representative constituent assembly) द्वारा निर्मित प्रथम लिखित संविधान है। फ्रांस में भी लिखित संविधान का अनुपालन किया जाता है। उल्लेखनीय है कि 19वीं शताब्दी के दौरान अनेक देशों ने अपने-अपने लिखित संविधान का निर्माण किया था। केवल इंग्लैंड ही एक अपवाद है, जिसने लिखित संविधान का निर्माण नहीं किया है। भारतीय संविधान भी लिखित संविधान का एक उदाहरण है।

- **अलिखित संविधान** में सरकार के अधिकांश सिद्धांतों को विधियों के रूप में अधिनियमित नहीं किया जाता है। इसमें रीतियों, प्रथाओं, परंपराओं और विभिन्न तिथियों में लागू किए गए लिखित कानूनों को शामिल किया जाता है। यह अव्यवस्थित एवं अनिश्चित होता और इसकी प्रकृति विशुद्ध नहीं होती है। ऐसा संविधान लोगों के सचेतन एवं सुविचारित प्रयासों का परिणाम नहीं होता बल्कि यह सामान्यतया ऐतिहासिक विकास का परिणाम होता है। इसे इतिहास के एक नियत चरण पर एक प्रतिनिधित्वकारी संविधान सभा द्वारा निर्मित नहीं किया जाता तथा यह न ही एक विशिष्ट तिथि पर प्रख्यापित होता है। इसलिए, इसे एक "विकसित अथवा संचयी संविधान" कहा जाता है। इंग्लैड का संविधान अलिखित संविधान का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जो मुख्यतया ऐतिहासिक विकास का परिणाम है।

हालांकि, लिखित और अलिखित संविधान में कोई विशिष्ट **विभेद** नहीं होता है। ऐसा कोई भी संविधान नहीं है जो पूर्णतया लिखित स्वरूप में हो। साथ ही, कोई भी संविधान पूर्णतया अलिखित नहीं होता है। प्रत्येक लिखित संविधान में कुछ अलिखित अवयव होते हैं तथा इसी प्रकार प्रत्येक अलिखित संविधान के भी कुछ लिखित घटक होते हैं।

महत्वपूर्ण बिंदु

हालांकि, अनुच्छेद 395, संविधान का अंतिम अनुच्छेद है, परन्तु भारतीय संविधान में अनुच्छेदों की कुल संख्या 448 है। संशोधन के माध्यम से जोड़े गए नए अनुच्छेद, मूल संविधान के संबंधित भाग में सम्मिलित कर दिए गए हैं। अनुच्छेदों के मूल क्रम में अत्यधिक परिवर्तन न करने के उद्देश्य से नए अनुच्छेद अल्फान्यूमेरिक सूची के अनुसार सम्मिलित किए गए हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षा के अधिकार से संबंधित अनुच्छेद 21A, को 86वें संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में जोड़ा गया था।

संविधान के विस्तृत होने के पीछे विभिन्न कारक जिम्मेदार हैं:

- सबसे प्रमुख कारकों में से एक यह है कि संविधान निर्माताओं ने विभिन्न स्रोतों और विश्व के कई अन्य संविधानों से कई उपबंध ग्रहण किए, जैसे- संविधान निर्माताओं ने प्रशासनिक विवरण से संबंधित विषयों से संबद्ध प्रावधानों के निर्माण हेतु **भारत शासन अधिनियम, 1935** (गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट, 1935) का अनुसरण किया तथा उसकी कई विशेषताओं को बनाए रखा गया।
- दूसरा, भारत से संबंधित विशिष्ट मुद्दों के लिए विभिन्न प्रावधानों को संविधान में शामिल करना आवश्यक था, जैसे- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े क्षेत्रों से संबंधित विभिन्न प्रावधान।
- तीसरा, केंद्र-राज्य संबंधों में उनके प्रशासनिक, विधायी एवं वित्तीय संबंधों तथा अन्य गतिविधियों के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं के लिए विस्तृत प्रावधान किए गए हैं।
- चौथा, चूंकि भारतीय राज्यों के लिए पृथक संविधान नहीं है, अतः राज्य प्रशासन से संबंधित प्रावधान भी भारतीय संविधान में सम्मिलित किए गए हैं।
- पाँचवां, स्थानीय स्वशासी संस्थाओं से संबंधित प्रावधान भी भारतीय संविधान में सम्मिलित किए गए हैं।
- इसके अतिरिक्त, संविधान को आम नागरिकों के लिए सुस्पष्ट बनाने हेतु व्यक्तिगत अधिकारों, राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की एक विस्तृत सूची एवं प्रशासकीय प्रक्रिया की जानकारी संविधान में समाविष्ट की गयी है।

4.2. नम्यता (लचीलापन) एवं अनम्यता (कठोरता) का समन्वय

- भारतीय संविधान विशुद्ध रूप से न तो कठोर या अनम्य है और न ही नम्य या लचीला है। इसमें कठोरता और लचीलेपन का समावेश है। संविधान के कुछ भागों को संसद के साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया द्वारा संशोधित किया जा सकता है। हालांकि, कुछ प्रावधानों में संशोधन तभी किया जा सकता है, जब इस उद्देश्य के लिए एक विधेयक संसद के प्रत्येक सदन के कुल सदस्यों के बहुमत तथा सदन में उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के कम से कम **दो-तिहाई बहुमत** से पारित हो जाता है।

- साथ ही, कुछ अन्य ऐसे प्रावधान भी हैं जो उपर्युक्त विधि द्वारा संशोधित किए जा सकते हैं परन्तु उन्हें राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करने से पूर्व कम से कम आधे राज्यों का अनुसमर्थन प्राप्त होना आवश्यक है। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत करने की शक्ति केवल संसद में निहित है, राज्य विधान-मंडलों में नहीं।
- संविधान सभा में **पंडित नेहरू** के शब्द: "यद्यपि हम संविधान को इतना दृढ़ और स्थायी बनाना चाहते हैं जितना हम बना सकते हैं, तथापि संविधान में कोई स्थायित्व नहीं है। संविधान में कुछ लचीलापन होना चाहिए। यदि आप कुछ भी कठोर और स्थायी बनाते हैं, तो आप राष्ट्र के विकास, जीवन के विकास... आदि को रोक देते हैं। किसी भी स्थिति में, हम इस संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते थे कि बदलती परिस्थितियों के अनुसार इसका पालन नहीं किया जा सके। जब विश्व में अशांति है और हम अत्यंत तीव्र संक्रमण काल से गुजर रहे हैं, तब हम जो आज करते है संभवतः वह भविष्य में पूर्णतया लागू नहीं हो सकता है।"

हालांकि, उच्चतम न्यायालय ने मूल ढांचे के एक भाग के रूप में संविधान संशोधन हेतु संसद की सीमित शक्तियाँ निर्धारित की है। अन्य शब्दों में, संसद, संविधान के सभी भागों में संशोधन नहीं कर सकती है।

4.3. लोकतांत्रिक गणराज्य

- भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत की संप्रभुता भारत के लोगों में निहित है। भारत के नागरिक सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से स्वयं को प्रशासित करते हैं। भारत के राष्ट्रपति (जो देश का सर्वोच्च अधिकारी होता है) को एक निश्चित समयावधि के लिए चुना जाता है।
- यद्यपि, भारत एक संप्रभु गणराज्य है, तथापि इसकी राष्ट्रमंडल (कॉमनवेल्थ) की सदस्यता जारी है। राष्ट्रमंडल का प्रमुख ब्रिटिश साम्राज्ञी हैं। राष्ट्रमंडल में भारत की सदस्यता एक संप्रभु गणराज्य के रूप में उसकी स्थिति को प्रभावित नहीं करती है क्योंकि राष्ट्रमंडल, मुक्त और स्वतंत्र राष्ट्रों की एक संस्था है। ब्रिटिश साम्राज्ञी इस संस्था की मात्र प्रतीकात्मक प्रमुख हैं।

क्या भारतीय संसद "संप्रभु" अथवा "गैर-संप्रभु" अथवा दोनों विशेषताओं से संपन्न एक विधायिका है?

संसदीय संप्रभुता की अवधारणा

- उपर्युक्त स्थिति के सूक्ष्म विभेदों का मूल्यांकन करने के लिए "संसदीय संप्रभुता" के निहितार्थों को समझने की आवश्यकता है।
- **संसदीय संप्रभुता:** इसे संसदीय सर्वोच्चता अथवा विधायी सर्वोच्चता के रूप में भी जाना जाता है। यह संसद को सर्वप्रमुख विधायी प्राधिकरण के रूप में स्थापित करती है, जो किसी भी विधि का निर्माण अथवा समापन कर सकती है। इसके अतिरिक्त, न्यायपालिका ऐसे विधान को निरस्त नहीं कर सकती है तथा कोई भी संसद ऐसा कानून पारित नहीं कर सकती, जिन्हें भावी संसद परिवर्तित न कर सके।

- **ससंदीय संप्रभुता के समक्ष निम्नलिखित रूप में कुछ बाधाएं विद्यमान हैं:**
    - संवैधानिक सर्वोच्चता का सिद्धांत;
    - शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत (यह सामान्य विधि निर्माण हेतु विधायिका के कार्य क्षेत्र को सीमित करता है); एवं
    - न्यायिक पुनर्विलोकन का सिद्धांत (विधायिका द्वारा पारित विधियों को कुछ परिस्थितियों में अमान्य अथवा शून्य घोषित किया जा सकता है)।
- संसदीय संप्रभुता वस्तुतः यूनाइटेड किंगडम (UK) के संविधान का एक सिद्धांत है, जो UK की संसद को UK में सर्वोच्च विधायी प्राधिकरण बनाता है।

क्या भारतीय संसद संप्रभु है?

- UK के विपरीत भारतीय संसद पूर्णतया संप्रभु नहीं है, क्योंकि यह संविधान के प्रावधानों के अधीन है। इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संसद भी अपनी शक्ति और प्राधिकार संविधान से ही ग्रहण करती है।
- भारतीय ससंद की पूर्व-निर्धारित सीमाएं हैं, जिनका नीचे वर्णन किया गया है:
    - संसद केवल संघ सूची और समवर्ती सूची में सूचीबद्ध मामलों के संबंध में ही कानून पारित कर सकती है।
    - संसद द्वारा निर्मित कानून उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के अधीन हैं। इसका अर्थ है कि यदि कोई कानून संविधान के प्रावधानों के प्रतिकूल है तो इसे न्यायपालिका द्वारा अमान्य घोषित किया जा सकता है। इस प्रकार, भारत में UK के संसद की सर्वोच्चता सिद्धांत के विपरीत संविधान की सर्वोच्चता सिद्धांत को अपनाया गया है।

4.4. सरकार का संसदीय स्वरूप

- भारत ने ब्रिटेन द्वारा अपनाई गयी **वेस्टमिंस्टर प्रणाली** को अपनाया है। यह सरकार की एक लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली है। इस प्रणाली में कार्यकारिणी, विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। यह सत्ता में केवल तब तक बनी रहती है जब तक इसे विधायिका का विश्वास प्राप्त होता है।
- भारत का राष्ट्रपति नाममात्र का संवैधानिक प्रमुख होता है। केंद्रीय मंत्रिपरिषद का गठन विधायिका से ही किया जाता है। इसका प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। केंद्रीय मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। यदि केंद्रीय मंत्रिपरिषद सदन में बहुमत खो देती है तो उसके द्वारा इस्तीफ़ा देना आवश्यक होता है।
- राष्ट्रपति जो नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख होता है, केंद्रीय मंत्रिपरिषद अर्थात् वास्तविक कार्यकारिणी की सलाह के अनुसार अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है। राज्यों में भी सरकार का स्वरूप संसदीय प्रणाली जैसा ही है।

4.5. संघीय और एकात्मक विशेषताओं का मिश्रण (Mixture Of Federal And Unitary Features)

भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 1** के अनुसार: **'भारत, अर्थात् इंडिया, राज्यों का संघ'** होगा। यद्यपि, संविधान में कही भी 'परिसंघ' (federation) शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, तथापि, भारत एक संघीय गणतंत्र (federal republic) है।

कोई राज्य संघीय (federal) होता है, यदि:

- सरकार दो स्तरों में विभक्त होती है तथा दोनों के मध्य शक्तियों का वितरण होता है;
- लिखित संविधान होता है, जो देश का सर्वोच्च कानून होता है; तथा
- संविधान की व्याख्या और केंद्र एवं राज्यों के मध्य विवादों के समाधान के लिए एक स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान होता है।

भारतीय संविधान में संघीय व्यवस्था के लक्षण निम्नलिखित हैं:

- उपर्युक्त सभी संघीय विशेषताएँ भारतीय संविधान में निहित हैं। सरकार के दो स्तर विद्यमान हैं, एक केंद्र स्तर पर एवं दूसरा राज्य स्तर पर। इन दोनों के मध्य शक्तियों के वितरण का विस्तृत विवरण हमारे संविधान में किया गया है (73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के पश्चात् शक्तियों को स्थानीय स्तर तक विकेंद्रीकृत किया गया है)।
- भारत का संविधान लिखित है और संविधान ही देश का सर्वोच्च कानून है।
- एकल एकीकृत न्यायिक प्रणाली के शीर्ष पर, उच्चतम न्यायालय विद्यमान है, जो कार्यपालिका और विधायिका के नियंत्रण से स्वतंत्र है।

भारतीय संविधान में एकात्मकता के लक्षण निम्नलिखित हैं:

- संघीय राज्य की इन सभी आवश्यक विशेषताओं के बावजूद, भारतीय संविधान में कुछ एकात्मक प्रवृत्तियां भी विद्यमान हैं। अन्य संघ, जैसे- संयुक्त राज्य अमेरिका में दोहरी नागरिकता का प्रावधान किया गया है जबकि भारत के संविधान में एकल नागरिकता का प्रावधान है।
- सम्पूर्ण देश के लिए एकीकृत न्यायपालिका है।
- अखिल भारतीय सेवाओं, जैसे- भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा से संबंधित प्रावधान, एक अन्य एकात्मक विशेषता प्रदर्शित करते हैं। इन सेवाओं के सदस्य, संघ लोक सेवा आयोग द्वारा अखिल भारतीय आधार पर नियुक्त किए जाते हैं। चूंकि इन सेवाओं पर केंद्र सरकार का नियंत्रण होता है, अत: कुछ सीमा तक ये राज्यों की स्वायत्तता में बाधा उत्पन्न करती हैं।
- भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण एकात्मक विशेषता आपातकाल का प्रावधान है। आपातकाल के दौरान केंद्र सरकार और अधिक शक्तिशाली हो जाती है तथा संघीय संसद को राज्यों हेतु कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।
- राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है। यह केंद्र सरकार के एजेंट के रूप में कार्य करता है और केंद्र सरकार के हितों की रक्षा करने के निमित्त होता है। उपर्युक्त प्रावधान, हमारे संघ की एकात्मक प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं।

निष्कर्ष:

- **प्रोफेसर के. सी. व्हेयर** के अनुसार, भारतीय संविधान, "सरकार की एक अर्द्ध-संघीय प्रणाली तथा सहायक एकात्मक विशेषताओं के साथ एक एकात्मक राज्य" का प्रावधान करता है।
- संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था कि संघवाद और एकात्मकता के मध्य सामंजस्य विद्यमान है। डॉ. अंबेडकर के अनुसार, "संविधान में अपनाई गई राजनीतिक प्रणाली, समय एवं परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार एकात्मक के साथ-साथ संघीय हो सकती है"।
- संयुक्त राज्य अमेरिका वास्तविक संघीय संविधान को अपनाने वाला पहला देश था। इसकी संघीय संरचना को वर्तमान में भी यह संदर्भित करने हेतु प्रयुक्त किया जाता है कि कोई संविधान संघीय है या नहीं।
- भारतीय संविधान का निर्माण जिन परिस्थितियों में किया गया था वे वर्ष 1787 में निर्मित अमेरिकी संविधान की परिस्थितियों से बिलकुल भिन्न थीं। स्वतंत्रता के समय भारत दुखद विभाजन और देशभर में विद्यमान विभाजनकारी प्रवृत्तियों का साक्षी रहा है। इसलिए राज्य को एक इकाई के रूप में बनाए रखने तथा अंत में अपने लोगों को एकल राष्ट्र के अंतर्गत एकीकृत रखने के लिए एक सुदृढ़ केंद्र का निर्माण करना तात्कालिक आवश्यकता थी।
- हालांकि, संविधान में कुछ केंद्रीय प्रवृत्तियां भी विद्यमान हैं, परन्तु भारतीय राज्यों में भी शक्ति और स्वायत्तता का एक उचित स्तर निहित है। भारतीय विधि आयोग के अनुसार, एक सुदृढ़ संघ और सुदृढ़ राज्यों के मध्य कोई विरोधाभास नहीं होता है।

- बोम्मई वाद (1994) में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि संविधान की प्रकृति संघीय (federal) है तथा न्यायालय ने संघवाद (federalism) को इसके "मूल ढांचे" के रूप में भी विशेषीकृत किया। न्यायालय ने कहा कि केंद्र में अत्यधिक शक्तियों के निहित होने का तात्पर्य यह नहीं है कि राज्य, केंद्र के सहायक मात्र हैं। राज्यों का एक स्वतंत्र अस्तित्व है। वे केंद्र के अनुगामी या अभिकर्ता मात्र नहीं हैं। अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर प्रत्येक राज्य की स्थिति सर्वोच्च है। संविधान में संघवाद प्रशासनिक सुविधा का मामला नहीं है, परन्तु यह सिद्धांत का एक विषय है। उपर्युक्त चर्चा को संभवतः **प्रोफेसर अलेक्सेंडरोंविज़** (Alexanderowicz) के शब्दों में सर्वश्रेष्ठ रूप से संक्षेपित किया जा सकता है, जिसमें उन्होंने कहा है कि "भारत एक संघ है, परंतु यह एक अद्वितीय (sui generis) संघ है, अर्थात् यह अपने ही प्रकार का संघ है।"
- निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में केंद्रीय निर्देशन और राज्य अनुपालन के साथ "सहकारी संघवाद" विद्यमान है। हालिया समय में "प्रतिस्पर्धात्मक संघवाद" की अवधारणा विकसित हुई है, जिसके अंतर्गत भारत के विकास हेतु अपने संयुक्त प्रयासों में राज्य, केंद्र के साथ और केंद्र, राज्यों के साथ तथा प्रत्येक राज्य एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं।

4.6. असममित संघवाद (Asymmetric federalism)

- भारत के संविधान में कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। जम्मू-कश्मीर राज्य को अनुच्छेद 370 (हाल ही में अनुच्छेद 370 के अधिकांश प्रावधानों को समाप्त कर दिया गया है) के अंतर्गत विशेष अधिकार प्रदान किए गए थे। साथ ही भारतीय संविधान के सभी उपबन्ध जम्मू-कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होते थे। उल्लेखनीय है कि हाल ही में सरकार द्वारा किए गए प्रावधानों के अनुसार संविधान के सभी प्रावधान अब जम्मू और कश्मीर पर भी लागू होंगे। इसके अतिरिक्त, महाराष्ट्र एवं गुजरात (अनुच्छेद 371), नागालैंड (अनुच्छेद 371-A), असम (अनुच्छेद 371-B), मणिपुर (अनुच्छेद 371-C), आंध्र प्रदेश (अनुच्छेद 371-D एवं 371-E), सिक्किम (अनुच्छेद 371-F), मिज़ोरम (अनुच्छेद 371-G), अरुणाचल प्रदेश (अनुच्छेद 371-H) और गोवा (अनुच्छेद 371-I) के लिए भी विशेष उपबन्ध विभिन्न राज्यों की प्रादेशिक समस्याओं और मांगो के कारण किए गए हैं। इन सब विशेषताओं के कारण ही भारतीय संघवाद को असममित संघवाद के नाम से जाना जाता है।

4.7. मूल अधिकार (Fundamental Rights)

- **प्रो. एच. जे. लास्की** के अनुसार "प्रत्येक राज्य को उन अधिकारों से जाना जाता है जिन्हें वह बनाए रखता है। भारतीय संविधान इस मूल सिद्धांत की पुष्टि करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ आधारभूत अधिकार प्राप्त हैं। इन अधिकारों की चर्चा संविधान के भाग III में की गयी है। इन्हें मूल अधिकारों के रूप में जाना जाता है। मूल रूप से संविधान में **7 मूल अधिकारों** की श्रेणियां थीं, परन्तु अब यह संख्या 6 रह गयी है। ये हैं: (i) समता का अधिकार (ii) स्वतंत्रता का अधिकार (iii) शोषण के विरुद्ध अधिकार (iv) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (v) संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार तथा (vi) सांविधानिक उपचारों का अधिकार। संपत्ति का अधिकार (अनुच्छेद 31), मूलतः, एक मूल अधिकार था, जिसे 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा समाप्त कर दिया गया। वर्तमान में यह केवल एक **विधिक अधिकार** है।
- मूल अधिकार राज्य के नकारात्मक दायित्वों के रूप में वर्णित हैं और ये राज्य की सत्ता के विरुद्ध सीमाओं के रूप में कार्य करते हैं।

- मूल अधिकार प्रवर्तनीय (justiciable) हैं। इन अधिकारों में से किसी एक का भी अतिक्रमण होता है तो कोई भी व्यक्ति उच्चत्तर न्यायपलिका, अर्थात उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है। मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए अनुच्छेद 32 (सांविधानिक उपचारों का अधिकार) के तहत सीधे उच्चतम न्यायालय में जाने के अधिकार की गारंटी प्रदान की गई है। हालांकि, भारत में मूल अधिकार असीमित नहीं हैं। राज्य और समाज की सुरक्षा तथा अन्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इन पर युक्तियुक्त प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है।

4.8. राज्य की नीति के निदेशक तत्व

- संविधान की एक अद्वितीय विशेषता इसमें सम्मिलित राज्य की नीति के निदेशक तत्व हैं। ये सिद्धांत सरकार के लिए **निर्देशात्मक प्रकृति** के हैं, जिन्हें सरकार **सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र** की स्थापना के लिए लागू कर सकती है।
- इनके अंतर्गत जीविका के लिए पर्याप्त साधन; पुरुषों और महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन; लोकहित के लिए धन का वितरण; नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा; कार्य का अधिकार; वृद्धावस्था, बेरोजगारी, बीमारी और दिव्यांगता की स्थिति में सार्वजनिक सहायता; ग्राम पंचायतों का गठन; आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान आदि महत्वपूर्ण निदेशक तत्व सम्मिलित हैं।
- इन सिद्धांतों में से अधिकांश भारत को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करने में सहायता करते हैं। हालांकि, ये प्रवर्तनीय नहीं हैं, फिर भी इन सिद्धांतों को **"देश के शासन के लिए आधारभूत"** माना गया है।

4.9. मूल कर्त्तव्य (Fundamental Duties)

- 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के पश्चात् मूल कर्त्तव्यों से संबंधित एक नया भाग IV(A) जोड़ा गया। संविधान में मूल कर्त्तव्यों को सम्मिलित करने का उद्देश्य नागरिकों को यह स्मरण कराना है कि जिस प्रकार नागरिक अपने अधिकारों का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार उन्हें अपने कर्त्तव्यों का भी पालन करना चाहिए क्योंकि **अधिकार और कर्तव्य सहसंबद्ध** होते हैं।

4.10. पंथनिरपेक्ष राज्य

- एक पंथनिरपेक्ष राज्य न तो धार्मिक और न ही अधार्मिक या धर्म विरोधी होता है। बल्कि यह धर्म के मामलों में तटस्थ होता है। भारत में कई धर्मों की विद्यमानता के कारण संविधान के संस्थापकों ने इसे पंथनिरपेक्ष राज्य के रूप में स्थापित करना उचित समझा।
- भारत एक पंथनिरपेक्ष राज्य है क्योंकि यह धर्म के आधार पर लोगों के मध्य किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करता है। यह न तो किसी विशेष धर्म को प्रोत्साहित करता है और न ही किसी धर्म को हतोत्साहित करता है। इसके विपरीत, संविधान में धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार सुनिश्चित किया गया है और किसी भी धार्मिक समूह से संबंधित लोगों को उनकी पसंद के धर्म को मानने, आचरण करने या प्रसार करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

4.11. स्वतंत्र, निष्पक्ष और एकीकृत न्यायपालिका

- हमारे संविधान में न्यायपालिका को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है तथा इसे विधायिका और कार्यपालिका से स्वतंत्र भी रखा गया है। भारत का उच्चतम न्यायालय एकल एकीकृत न्यायिक प्रणाली के शीर्ष पर है।

- यह भारतीय नागरिकों के मूल अधिकारों के रक्षक और संविधान के संरक्षक (गार्जियन) के रूप में कार्य करता है।
- यदि विधायिका द्वारा पारित कोई कानून या कार्यपालिका द्वारा की गयी कोई भी कार्यवाही संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन करती है तो उसे उच्चतम न्यायालय द्वारा अमान्य अथवा शून्य घोषित किया जा सकता है। इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय के पास न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति है।

4.12. एकल नागरिकता

- भारत का संविधान एकल नागरिकता को मान्यता प्रदान करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, दोहरी नागरिकता का प्रावधान है। भारत में हम केवल भारत के नागरिक है, न कि उस संबंधित राज्य के जिससे हम निवास करते हैं। यह प्रावधान राष्ट्र की एकता और अखंडता को बढ़ावा देने में सहायता करता है तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लोगों के मध्य बंधुत्व को बढ़ावा देता है।

4.13. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise)

- भारत के संविधान में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का उल्लेख किया गया है। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के तहत सभी व्यस्क नागरिकों को उनके धर्म, जाति, मूलवंश, रंग और लिंग के आधार पर कोई विभेद किए बिना चुनाव प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार प्रदान किया गया है।
- मूल संविधान में मतदान करने की आयु 21 वर्ष निर्धारित की गयी थी, जिसे 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1989 द्वारा घटाकर 18 वर्ष कर किया गया।

4.14. आपातकालीन शक्तियां

- भारतीय संविधान में आपातकालीन शक्तियों का प्रावधान किया गया है। ये प्रावधान देश को इसके समक्ष उपस्थित किसी भी आपात स्थिति से निपटने में सक्षम बनाते हैं।
- **आपातकालीन शक्तियां भारत के राष्ट्रपति में निहित हैं।** संविधान में तीन प्रकार के आपातकाल का उल्लेख किया गया है: राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352); संवैधानिक तंत्र की विफलता (अनुच्छेद 356) और वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360)।

4.15. शक्ति का पृथक्करण (Separation of Powers)

- शक्तियों के पृथक्करण की संकल्पना के पीछे की मूल धारणा यह है कि शक्तियों का केन्द्रीकरण जब किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह में हो जाता है तो वे सरकारी मशीनरी का उपयोग जनहित के स्थान पर व्यक्तिगत हित में करने लगते हैं। शक्तियों का पृथक्करण किसी भी व्यक्ति या समूह में सत्ता के संकेन्द्रण को रोकने का एक तरीका है। इससे सत्ता का दुरुपयोग करना कठिन हो जाता है।
- इसके अनुसार, राज्य सत्ता एकल इकाई नहीं अपितु विभिन्न राज्य निकायों द्वारा एक-दूसरे से स्वतंत्र रहकर किए जाने वाले विभिन्न सरकारी कार्यों (अर्थात् विधायी, कार्यकारी और न्यायिक) का संयोजन है। विधायिका कानून का निर्माण करती है; कार्यपालिका कानून को लागू करती है और न्यायपालिका उन कानूनों की व्याख्या करती है।
- शक्ति के पृथक्करण का परंपरागत विचार **मोंटेस्क्यू** द्वारा वर्ष 1748 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **"द स्पिरिट ऑफ द लॉ"** (The Spirit of the Laws) में दिया गया है। इन्होंने सरकार के तीनों अंगों अर्थात् कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के मध्य शक्ति और प्रकार्यों के कठोर एवं निरपेक्ष पृथक्करण की वकालत की है। इन तीनों पृथक निकायों के मध्य शक्तियों का वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि उनके प्रकार्य पूर्णतया पृथक हों और इनके प्रकार्यों में कोई अतिव्यापन (ओवरलेपिंग) न हो।

- हालांकि, भारत का संविधान शक्तियों के विभाजन के सिद्धांत के संदर्भ में एक समकालीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। हमारे संविधान के तहत शक्तियों का कठोर पृथक्करण, सिद्धांत और व्यवहार दोनों में व्याप्त नहीं है। चूंकि संसदीय लोकतंत्रों में कार्यपालिका या मंत्रीपरिषद् (जैसे- भारत या ब्रिटेन में) विधायिका का भी भाग होती है, इसलिए, यहाँ शक्ति का कठोर पृथक्करण मौजूद नहीं हो सकता है।
- वस्तुतः भारत के संविधान ने शक्ति के पृथक्करण के सिद्धांत के साथ नियंत्रण और संतुलन के सिद्धांत को अपनाया है। इस सिद्धांत के तहत सरकार के विभिन्न अंग (जैसे- विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका) एक-दूसरे को नियंत्रित करते हैं। इसलिए भारत में सरकार का प्रत्येक अंग अपने क्रियाकलापों के दौरान दूसरे अंगों के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करता है। लेकिन ठीक उसी समय यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक होता है कि सरकार के दूसरे अंग शक्तियों का दुरुपयोग न करें या अपने लिए निर्धारित अधिदेश (मैंडेट) की सीमा का अतिक्रमण न करें।
- इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न राज्य के इन तीनों अंगों के मध्य संबंध का है अर्थात क्या इन तीन अंगों के मध्य शक्तियाँ पूर्ण रूप से पृथक होनी चाहिए या उनके मध्य समन्वय होना चाहिए।

डॉ. दुर्गा दास बसु के शब्दों में,

- "जहाँ तक न्यायपालिका का संबंध है, इस सिद्धांत (शक्तियों का पृथक्करण का सिद्धांत) के अनुप्रयोग में दो प्रस्ताव निहित हो सकते हैं:
    - सरकार के तीनों अंगों, यथा- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में से कोई भी एक अंग **समुचित (properly)** रूप से अन्य दोनों अंगों में से किसी के भी अंतर्गत आने वाली शक्तियों का उपयोग नहीं कर सकता है।
    - विधायिका अपनी शक्तियों का प्रत्यायोजन (Delegation) नहीं कर सकती है। ज्ञातव्य है कि किसी उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारी को विशिष्ट सत्ता एवं प्राधिकार प्रदान करना **प्रत्यायोजन** कहलाता है।
- यहाँ महत्वपूर्ण "समुचित" शब्द है और इसलिए शक्तियों के व्यापक पृथक्करण को प्रदर्शित करता है जहाँ मुख्य (कोर) प्रकार्य एक है जो विशेष रूप से सरकार के किसी अंग को प्रदत्त है, यद्यपि वहां दिए गए कुछ विषयों के सीमावर्ती क्षेत्रों को लेकर कुछ व्याप्ति हो सकती है। न्यायालयों के द्वारा कानून के इन पहलुओं पर राय यह है कि भारत के संविधान के तहत शक्तियों का व्यापक पृथक्करण है।

4.16. स्वतंत्र निकाय

- भारतीय संविधान सरकार (केंद्र एवं राज्य) के केवल विधायी, कार्यकारी और न्यायिक अंगों का ही प्रावधान नहीं करता, अपितु, यह निर्वाचन आयोग, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक और संघ लोक सेवा आयोग जैसे स्वतंत्र निकायों की स्थापना का भी प्रावधान करता है। संविधान में इनकी परिकल्पना भारत में सरकार की लोकतांत्रिक प्रणाली के एक रक्षक के रूप में की गई है।
    - **निर्वाचन आयोग:** यह संसद, राज्य विधान-मंडलों, राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था करता है। इस संस्था को कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त रखने के लिए संविधान में कुछ प्रावधान किए गए हैं।
    - **नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक:** यह संघ तथा राज्यों के वित्त एवं लेखाओं का परीक्षण करता है और उनको नियंत्रित करता है। इसे भी संघीय और राज्यों की कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त रखने के लिए संविधान में व्यवस्था की गई है।
    - **संघ और राज्य लोक सेवा आयोग:** ये क्रमशः केंद्रीय और राज्य सरकारों की उच्चतर सेवाओं के लिए अभ्यर्थियों की भर्ती हेतु परीक्षाओं का संचालन एवं उनकी नियुक्ति की संस्तुतियाँ करते हैं।

4.17. सरकार के तीन स्तर

- मूल रूप से, अन्य संघीय संविधानों की भांति भारतीय संविधान में भी एक द्वैध राजव्यवस्था का प्रावधान किया गया था तथा केंद्र एवं राज्यों के संगठनों और शक्तियों से संबंधित उपबंधों को भी शामिल किया गया था। कालांतर में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के रूप में सरकार के तृतीय स्तर का सृजन किया गया, जो विश्व के किसी भी संविधान में विद्यमान नहीं है।

उपर्युक्त भारतीय संविधान की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं, जो इसे विश्व का सर्वाधिक अद्वितीय एवं विशिष्ट संविधान बनाती हैं।

5. संशोधन (Amendments)

5.1. भूमिका

- परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है। समय के साथ-साथ राजनीतिक समाज में परिवर्तन होता रहा है। नई समस्याओं और चुनौतियों का सामना करने के लिए राष्ट्रीय जीवन के सभी आयामों में परिवर्तन और उपांतरण आवश्यक हो जाता है। जिस प्रकार समाज की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा पद्धति परिवर्तित होती है, औद्योगिक नीति में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार विधियों और संविधान में भी परिवर्तन की आवश्यकता होती है।
- यदि कोई संविधान, संशोधन का अधिकार नहीं देता है तो इस बात की संभावना बढ़ जाती है कि नई पीढ़ी उसे नष्ट कर उसके स्थान पर नया संविधान स्थापित कर देगी। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि संविधान में परिवर्तन की प्रक्रिया को संविधान में ही समाविष्ट कर दिया जाए। भारतीय संविधान में ये विशेषताएँ विद्यमान हैं, इसलिए यह एक जीवंत दस्तावेज कहलाता है।
- **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद** में उच्चतम न्यायालय ने 'संशोधन' शब्द के क्षेत्र विस्तार एवं परिभाषा का सबसे बेहतर विवरण प्रस्तुत किया। न्यायालय ने 'संशोधन' शब्द की व्यापक परिभाषा प्रस्तुत की है, जहाँ संशोधन शब्द में किसी भी परिवर्तन या संशोधन को शामिल किया जाता है।
  - *'संशोधन' शब्द जब संविधान के संबंध में उपयोग किया जाता है, तो यह एक नए और स्वतंत्र विषय से संबंधित प्रावधान को जोड़ने को संदर्भित कर सकता है। ये प्रावधान अपने आप में पूर्ण हो सकते हैं और अन्य प्रावधानों से पूर्ण रूप से पृथक हो सकते हैं, या किसी विशेष अनुच्छेद या उपबंध के समान हो सकते हैं, और तत्पश्चात इसका उपयोग इस विशेष अनुच्छेद या उपबंध में परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन को संदर्भित करने हेतु किया जा सकता है।*

5.2. संवैधानिक प्रावधानों के संशोधन की आवश्यकता

- संविधान एक जीवंत और परिवर्तनशील दस्तावेज़ है। समकालीन परिवर्तनों के अनुकूल संविधान में परिवर्तन अतिआवश्यक होते हैं। इसका संविधान के मूल दर्शन में भी उल्लेख किया गया है। संविधान को बदलती परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार समायोजित करने के लिए संशोधन की अनुमति प्रदान करना अत्यावश्यक है।

5.3. संशोधन के प्रकार

- अदृश्य या अनौपचारिक; एवं
- दृश्य या औपचारिक।

5.3.1. अदृश्य या अनौपचारिक प्रक्रिया

- संविधान का संशोधन करने की **अदृश्य या अनौपचारिक प्रक्रिया** की भूमिका और दायरा सीमित होता है। इस प्रकार के परिवर्तन निम्नलिखित तरीके से किए जाते हैं:
    - न्यायालय द्वारा निर्वचन के माध्यम से;
    - विधायन द्वारा संविधान की अनुपूर्ति करके या रिक्त स्थानों को पूरित करके; तथा
    - अभिसमय और संवैधानिक परंपराओं में परिवर्तन करके।
- न्यायिक निर्वचन द्वारा किए गए परिवर्तन संविधान के पाठ को बिना बदले उसे एक नया या परिवर्तित अर्थ प्रदान करते हैं। यहाँ संविधान की भाषा नहीं बदलती किंतु विद्यमान परिस्थितियों और समाज की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए न्यायालय नया अर्थ प्रदान करता है। न्यायिक निर्वचन की उन संविधानों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है जहां संशोधन की प्रक्रिया कठोर और कठिन है।
- कई बार अभिसमय के कारण संविधान के उपबंध निष्प्रभावी हो जाते हैं। अभिसमय का प्रवर्तन संविधान की सीमा के भीतर होता है, फिर भी वह संविधान को प्रभावित और उपांतरित कर देता है।

5.3.2. दृश्य या औपचारिक प्रक्रिया

- प्रत्येक संविधान में यह उल्लेख होता है कि किस रीति से उसे परिवर्तित किया जा सकेगा। संशोधन द्वारा संविधान के पाठ को परिवर्तित किया जाता है जिससे कि समाज में हुए परिवर्तन के लिए या राष्ट्र के विकास के लिए अपेक्षित नया अर्थ संविधान में प्रतिबिंबित हो सके।
- ऐसे संशोधन की प्रक्रिया औपचारिक होती है। यह संशोधन की एक घोषित और स्पष्ट प्रक्रिया है। संविधान को नई समस्याओं का सामना करने के लिए अनुकूल बनाने हेतु यह सर्वाधिक स्वीकृत मार्ग है। भारत में औपचारिक संशोधन की प्रक्रिया को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जाता है। जिसे नीचे सविस्तार वर्णित किया गया है।
- संशोधन की प्रक्रिया ने संविधान को न ही पूर्णतः कठोर और न ही पूर्णतः लचीला बनाया है, यद्यपि यह दोनों का मिश्रण है। कुछ उपबंधों को सरलता से संशोधित किया जा सकता है और कुछ के लिए विशिष्ट प्रक्रिया का अनुकरण किया जाता है। भारत के एक संघीय राज्य होने के बावजूद, संविधान संशोधन का प्रस्ताव केवल संसद के किसी एक सदन में ही लाया जा सकता है, राज्य विधानमंडलों के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है।
- साधारण विधेयक के मामले में यदि संसद के दोनों सदनों में सहमति नहीं होती है, तो संयुक्त बैठक का प्रावधान है। परन्तु संविधान संशोधन विधेयक के मामले में जब तक प्रत्येक सदन में सहमति नहीं बनती है, तब तक विधेयक पारित नहीं हो सकता है, क्योंकि इस मामले में संसद की संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं है।

संविधान को निम्नलिखित तीन प्रकार से संशोधित किया जा सकता है:

(i) साधारण बहुमत द्वारा संशोधन

संविधान के अनेक ऐसे उपबंध हैं, जिनके संशोधन हेतु संसद के दोनों सदनों में केवल साधारण बहुमत की आवश्यकता होती है। इन्हें दो वर्गों में बांट सकते हैं:

- **जहाँ संविधान के मूल पाठ में परिवर्तन नहीं होता है किंतु विधि में परिवर्तन हो जाता है:**
    - अनुच्छेद 11 संसद को नागरिकता के संबंध में विधि अधिनियमित करने की शक्ति प्रदान करता है। इस शक्ति के अनुसरण में जो अधिनियम निर्मित किया जाएगा, वह नागरिकता से संबंधित विधि को परिवर्तित कर देगा किंतु अनुच्छेद 5 से 10 तक के अनुच्छेद यथावत रहेंगे।
    - अनुच्छेद 124 में उल्लेख है कि उच्चतम न्यायालय, मुख्य न्यायमूर्ति और सात से अनधिक न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा। किंतु संसद ने न्यायाधीशों की संख्या 7 से बढ़ाकर 34 कर दी है।

- **जहां संविधान का मूल पाठ परिवर्तित हो जाता है:**
    - नए राज्यों का गठन, अनुसूची 1 और 4 का संशोधन आदि साधारण विधि द्वारा किए जा सकते हैं। संसद विधि बनाकर पांचवीं और छठी अनुसूची को संशोधित कर सकती है।
    - जो उपबंध साधारण विधि द्वारा परिवर्तित किए जा सकते हैं उनमें (उपर्युक्त वर्णित के अतिरिक्त) शामिल हैं: विधान परिषदों का सृजन और उत्सादन; संघ राज्य क्षेत्रों के लिए मंत्रिपरिषद् का सृजन; अनुच्छेद 343 में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग के लिए 15 वर्ष की अवधि का विस्तार; संसदीय विशेषाधिकारों को परिनिश्चत करना; राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशों आदि के वेतन और भत्ते आदि।

(ii) विशेष बहुमत द्वारा संशोधन

- इस संशोधन प्रक्रिया में प्रत्येक सदन के सदस्यों की कुल संख्या का बहुमत तथा उस सदन में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है। **प्रथम श्रेणी** (साधारण बहुमत से संशोधित होने वाले उपबंधों) और **तृतीय श्रेणी** (विशेष बहुमत के साथ-साथ कम से कम भारत के आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा संशोधित होने वाले उपबंधों) में शामिल अनुच्छेदों के अतिरिक्त अन्य सभी अनुच्छेद ऐसे हैं, जिन्हें संसद विशेष बहुमत द्वारा ही संशोधित कर सकती है।

> **नोट:** 'कुल सदस्यता' का तात्पर्य सदन के कुल सदस्यों की संख्या से है, भले ही सदन में रिक्तियां हों या सदस्य अनुपस्थित हैं। हालांकि, राष्ट्रपति के महाभियोग की प्रक्रिया एकमात्र अपवाद है, जहाँ संकल्प को प्रत्येक सदन की कुल सदस्यता के दो-तिहाई बहुमत से पारित किया जाना चाहिए।

(iii) विशेष बहुमत तथा कम से कम आधे राज्य विधान मंडलों की स्वीकृति द्वारा संशोधन

- इस प्रक्रिया के तहत संविधान के कुछ विशिष्ट अनुच्छेद शामिल हैं, जिन्हें संशोधित करने हेतु कठिन प्रक्रिया अपनायी जाती है। इन अनुच्छेदों में संशोधन करने के लिए संसद के विशेष बहुमत के साथ-साथ भारत के कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति आवश्यक होती है।
- यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि सभी राज्यों की भागीदारी आवश्यक नहीं है। जैसे ही आधे राज्य अपनी सहमति (उपर्युक्त विधि के माध्यम से) प्रदान करते हैं, प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।
- इस हेतु राज्यों को अपनी सहमति प्रदान करने के लिए कोई समय सीमा का प्रावधान नहीं है।
- इस श्रेणी में निम्नलिखित अनुच्छेद सम्मिलित हैं:
    - अनुच्छेद 54- राष्ट्रपति का निर्वाचन
    - अनुच्छेद 55- राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि
    - अनुच्छेद 73–संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार
    - अनुच्छेद 162- राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार
    - अनुच्छेद 241- संघ राज्य क्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय
    - संघीय न्यायपालिका (भाग-5 अध्याय-4)
    - राज्यों के लिए उच्च न्यायालय (भाग-VI अध्याय-V)
    - संघ-राज्य-संबंध (विधायी) (भाग-XI अध्याय-I)
    - सातवीं अनुसूची का कोई भी विषय
    - संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व
    - संविधान-संशोधन से संबंधित अनुच्छेद-368

5.4. मूल अधिकारों का संशोधन

- मूल अधिकारों में संशोधन अत्यधिक विवादास्पद विषय रहा है, इसके परिणामस्वरूप न्यायपालिका और संसद दोनों के मत में समय-समय पर परिवर्तन देखा गया है। इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न निम्नलिखित हैं:
  - मूल अधिकार संशोधनीय हैं या नहीं, अर्थात् क्या संसद संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार को समाप्त कर सकती है?
  - संविधान संशोधन के संदर्भ में संसद का अधिकार, उसकी सीमा और विस्तार क्या है?
- उच्चतम न्यायालय द्वारा समय-समय पर इस संदर्भ में तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। इसे निम्नलिखित मामलों तथा परिणामी संसदीय प्रतिक्रिया के आलोक में समझा जा सकता है:

5.4.1. शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ वाद, 1951

- वर्ष 1951 में, संविधान के प्रवृत्त होने के एक वर्ष के भीतर, प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम से अनुच्छेद 31 द्वारा प्रत्याभूत संपत्ति के अधिकार को सीमित किया गया। इस संशोधन की संवैधानिकता पर शंकरी प्रसाद वाद में प्रश्नचिन्ह लगाया गया।
- याचिकाकर्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि अनुच्छेद 13(2) **राज्य** को ऐसी **विधि** निर्माण से प्रतिषिद्ध करता है जो मूल अधिकार को समाप्त या न्यून करती है।
- याचिकाकर्ता का तर्क था कि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त शब्द **'विधि'** के अधीन सभी अधिनियम आते हैं अर्थात् उसमें संविधान संशोधन अधिनियम भी सम्मिलित हैं। इस तर्क को अस्वीकार करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि **अनुच्छेद 368** द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए जो संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया जाता है, वह **अनुच्छेद 13(2) के अंतर्गत विधि नहीं है**। न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि इस अनुच्छेद में **विधि** का अर्थ है- सामान्य विधि, संविधान संशोधन अधिनियम नहीं (अर्थात् सांविधानिक विधि नहीं)।
- अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अंतर्गत संसद, मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है। यदि दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यह कहना उचित होगा कि साधारण विधियों के माध्यम से मूल अधिकारों का संशोधन नहीं किया जा सकता है किंतु संवैधानिक विधियों द्वारा किया जा सकता है।

5.4.2. सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य वाद, 1965

- 17वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1964 की वैधता को उसी आधार पर चुनौती दी गई, जैसे शंकरी प्रसाद मामले में दी गई थी।
- सज्जन सिंह वाद में उच्चतम न्यायालय अपने पूर्ववर्ती शंकरी प्रसाद वाले निर्णय पर दृढ़ रहा।

5.4.3. गोलखनाथ बनाम पंजाब राज्य वाद, 1967

- वर्ष 1967 में न्यायालय ने गोलकनाथ वाद में अपने पूर्ववर्ती विनिश्चयों को उलट दिया। बहुमत ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि संविधान में मूल अधिकारों को एक सर्वोच्च स्थिति प्रदान की गयी है।
- अनुच्छेद 368 के अधीन कार्य करते हुए संसद या किसी अन्य प्राधिकारी को यह शक्ति नहीं है कि वह मूल अधिकारों को न्यून या समाप्त कर सके। न्यायालय ने इस संदर्भ में संसद की विधायी शक्ति और संविधान संशोधन करने की शक्ति के मध्य भेद करने से अस्वीकृत कर दिया।
- यह निर्णय 11 न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिया गया था। 6 न्यायाधीश बहुमत में थे और 5 अल्पमत में। अल्पमत वाले न्यायाधीशों ने यह माना कि मूल अधिकारों के संशोधन से संबंधित पूर्व मत सही है अर्थात् मूल अधिकारों का संशोधन किया जा सकता है।

गोलकनाथ वाद में प्रदत्त निर्णय की प्रतिक्रिया स्वरूप संसद ने 24वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 पारित किया। इस अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 13 में खंड (4) और अनुच्छेद 368 में एक नया खंड (1) अंतःस्थापित किया गया। इस संशोधन द्वारा यह घोषणा की गई कि अनुच्छेद 368 के अनुसार पारित संविधान का संशोधन अनुच्छेद 13 के अंतर्गत विधि **नहीं** होगी। इस प्रकार, अनुच्छेद 13 संविधान का संशोधन करने वाले अधिनियमों पर लागू नहीं होगा।

- **24वां संविधान संशोधन अधिनियम (1971):** उच्चतम न्यायालय द्वारा गोलकनाथ वाद में दिए निर्णय के प्रतिक्रियास्वरूप यह संशोधन अधिनियम पारित किया गया। संसद द्वारा पारित 24वें संशोधन अधिनियम ने अनुच्छेद 368 के पुराने शीर्षक - **"संविधान संशोधन के लिए प्रक्रिया"** - को परिवर्तित कर इसे एक नवीन शीर्षक - **"संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति और उसके लिए प्रक्रिया"** - प्रदान किया।
    - विधि निर्माताओं की सुविधा (अथवा उन्हें लाभ की स्थिति प्रदान करने) के लिए इस अधिनियम ने संसद के संविधान में संशोधन करने की शक्ति को पुनः स्थापित किया तथा इसके (संसद) दायरे का विस्तार किया। इस हेतु निम्नलिखित शब्दों को जोड़ा गया "....संसद अपनी संविधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए इस संविधान के किसी उपबंध का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन इस अनुच्छेद में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार कर सकेगी"।
- इसके अतिरिक्त, इस संशोधन के माध्यम अनुच्छेद 368 में एक अन्य खंड 3 को जोड़ कर यह प्रावधान किया गया कि "अनुच्छेद 13 की कोई बात इस अनुच्छेद के अधीन किए गए किसी भी संशोधन को लागू नहीं होंगी"।

5.4.4. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद, 1973

- वर्ष 1973 में केशवानंद भारती वाद में यह विषय पुनः उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ। इस मामले में उठाए गए विभिन्न प्रश्नों में से एक, अनुच्छेद 368 के तहत संसद के संविधान संशोधन की शक्ति की सीमा का प्रश्न था। उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश, **एस. एम. सिकरी** की अध्यक्षता में **13 न्यायाधीशों** की एक संवैधानिक पीठ द्वारा इस मामले पर विचार किया गया। बहुमत वाले न्यायाधीशों (7 न्यायाधीश) ने 24वें संविधान संशोधन अधिनियम को विधिमान्य ठहराते हुए गोलकनाथ वाद में दिए निर्णय को उलट दिया। किंतु, साथ ही एक नया सिद्धांत भी प्रतिपादित किया।
- न्यायालय ने यह कहा कि संसद मूल अधिकारों वाले भाग का संशोधन करने के लिए उतनी ही सक्षम है जितनी कि संविधान के किसी अन्य भाग का। किंतु संविधान का संशोधन करके संसद, संविधान के **मूल ढांचे (आधारिक संरचना/आधारभूत लक्षण) (Basic Structure)** को न तो संक्षिप्त कर सकती है, न ही समाप्त कर सकती है और न नष्ट कर सकती है।
- गोलकनाथ वाद के पश्चात् किसी भी मूल अधिकार को न तो समाप्त किया जा सकता था और न ही न्यून किया जा सकता था। केशवानंद वाद के पश्चात् न्यायालय को यह विनिश्चय करना है कि कोई मूल अधिकार **मूल ढाचे का भाग** है या नहीं। यदि वह मूल ढाचे का भाग है तो उसे हटाया **नहीं** जा सकता।

गोलकनाथ वाद में उच्चतम न्यायालय ने शंकरी प्रसाद वाद और सज्जन सिंह वाद में दिए निर्णयों को उलट दिया। आगे, केशवानंद वाद में गोलकनाथ वाद में दिए निर्णय को पलट दिया गया।

5.4.5. 42वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976

- संसद ने अनुच्छेद 368 में संशोधन कर उपर्युक्त निर्णय पर पुनः प्रतिक्रिया व्यक्त की। यह घोषणा की गई कि संसद की संविधान संशोधन करने की संवैधानिक शक्ति पर किसी प्रकार का निर्बंधन नहीं है और संविधान का कोई भी संशोधन किसी भी न्यायालय में किसी भी आधार (मूल अधिकारों में से किसी के उल्लंघन सहित) पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है।
- इस प्रकार न्यायपालिका ने जो मूल ढांचे का सिद्धांत (केशवानंद भारती वाद) प्रस्तुत किया था उसे निरस्त करने के लिए 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 368 में खंड (4) अंतःस्थापित किया गया। इस खंड का उद्देश्य **न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति पर अंकुश लगाना था।**
- इस खंड से यह अधिनियमित किया गया कि संविधान के (जिसके अंतर्गत भाग 3 के उपबंध शामिल हैं) इस अनुच्छेद के अधीन किया गया कोई संशोधन किसी न्यायालय में किसी भी आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।

5.4.6. मिनर्वा मिल्स वाद, 1980

- उच्चतम न्यायालय ने **मिनर्वा मिल्स वाद** में यह अभिनिर्धारित किया कि 42वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 31(C) में किया गया संशोधन अविधिमान्य है, क्योंकि यह संविधान के मूल ढांचे को क्षति पहुँचता है।
- अनुच्छेद 368 का खंड 4 और 5 अविधिमान्य हैं क्योंकि वे संविधान के मूल ढांचे में शामिल दो लक्षणों का उल्लंघन करते हैं। ये लक्षण हैं- संशोधन करने की शक्ति का सीमित होना और न्यायिक पुनर्विलोकन। न्यायालयों को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है।

5.4.7. वामन राव बनाम भारत संघ वाद, 1981

- इस मामले में न्यायालय ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मूल ढांचे का सिद्धांत **24-4-1973** (केशवानंद भारती वाद में निर्णय सुनाए जाने की तारीख) के पश्चात् पारित संविधान संशोधन अधिनियमों पर लागू होगा अर्थात् **भविष्यलक्षी** रूप से लागू होगा। यह पूर्ववर्ती विधान पर अर्थात् भूतलक्षी रूप से लागू नहीं होगा।

5.5. उपर्युक्त के आधार पर निष्कर्ष

इन संशोधनों और विनिश्चयों का परिणाम यह है कि:

- संसद मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग का संशोधन कर सकती है।
- प्रत्येक मामले में न्यायालय यह विचार कर सकता है कि क्या मूल अधिकारों के संशोधन से संविधान के किसी आधारिक लक्षण (मूल ढांचे) का निराकरण या उत्सादन या समापन हो रहा है। यदि **'हाँ'** तो संशोधन **उस सीमा तक शून्य होगा।**
- हालांकि, उच्चतम न्यायालय द्वारा भारतीय संविधान के 'मूल ढांचे' की सभी विशेषताओं को परिभाषित करना और उसकी स्पष्ट व्याख्या करना अभी शेष है।

5.6. संविधान संशोधन की क्रमवार प्रक्रिया

अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन हेतु अनुसरण की जाने वाली प्रक्रियाओं का वर्णन है। ये निम्नलिखित हैं:

- संशोधन का प्रारंभ उस प्रयोजन के लिए विधेयक पुरः स्थापित करके किया जाता है।
- विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है।
- विधेयक को प्रत्येक सदन द्वारा आवश्यकतानुसार साधारण या विशेष बहुमत द्वारा पारित किया जाना चाहिए।
- कुछ विशेष सुरक्षित उपबंधों की दशा में विधेयक का कम से कम आधे राज्य विधान-मंडलों द्वारा अनुसमर्थन किया जाना चाहिए।

- इस प्रकार सम्यक् रूप से जब विधेयक पारित कर दिया जाता है और जहाँ अपेक्षा है वहां अनुसमर्थित कर दिया जाता है, तब उसे राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है।
- राष्ट्रपति स्वीकृति देने हेतु **बाध्य** है। साधारण विधेयक की स्थिति में राष्ट्रपति इसे पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है या अनुमति रोक कर सकता है।
- यदि दोनों सदनों के मध्य असहमति होती है तो इस संबंध में **संयुक्त बैठक** का कोई उपबंध **नहीं** है। विधेयक प्रत्येक सदन द्वारा पृथक रूप से पारित किया जाना चाहिए।
- संविधान संशोधन विधेयक को प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता **नहीं** होती है।

5.7. संविधान संशोधन की प्रक्रिया की आलोचना

- भारत में संविधान संशोधन के लिए कोई विशेष निकाय नहीं है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका {जहाँ पर एक विशेष संस्था (एमेंडमेंट कन्वेंशन) स्थापित है} की तुलना में भारत में इस प्रकार की कोई संस्था नहीं है। अतः संविधान को कई बार राजनीतिक स्वार्थ और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी संशोधित किया गया है।
- राज्य विधान-मंडल, संविधान संशोधन विधेयक को प्रारंभ नहीं कर सकते (अमेरिका के विपरीत)। यह भारत के संघीय संरचना के आधार पर की जाने वाली आलोचना है। उपर्युक्त बिंदु में भी एक अपवाद है (राज्य विधान-मंडल राज्य विधान परिषद् के सृजन और उत्सादन के लिए प्रस्ताव ला सकते हैं), यहां भी संसद इसे या तो पारित कर सकती है या नहीं या इस पर कोई कार्यवाही नहीं कर सकती है। संविधान के अधिकांश भाग को संसद द्वारा या तो विशेष बहुमत से अथवा साधारण बहुमत से संशोधित किया जा सकता है। केवल कुछ मामलों में, राज्य विधान-मंडलों की सहमति आवश्यक है।
- राज्य विधान-मंडल द्वारा अनुसमर्थन और अस्वीकृति के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है।
- किसी संविधान संशोधन अधिनियम के संदर्भ में गतिरोध हो तो संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का कोई प्रावधान नहीं है, जैसाकि साधारण विधेयक के मामले में उपलब्ध है।
- संशोधन प्रक्रिया से संबद्ध व्यवस्था अपर्याप्त है, अतः इन्हें न्यायपालिका को संदर्भित करने के व्यापक अवसर प्राप्त हो जाते हैं (उपर्युक्त उल्लेखित)। इसने न्यायपालिका और संसद के मध्य टकराव में वृद्धि की है, जिससे भारतीय राज्य-व्यवस्था का संतुलन कमजोर हुआ है।

6. मूल ढाँचा/बुनियादी संरचना (Basic Structure)

6.1. परिभाषा

मूल ढाँचे (बुनियादी संरचना) का सिद्धांत एक न्यायिक नवाचार है। इसके अनुसार, संविधान की कुछ ऐसी मूलभूत विशेषताएँ हैं, जिन्हें संसद अनुच्छेद 368 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से परिवर्तित या समाप्त नहीं कर सकती है। इसलिए, यदि कोई संविधान संशोधन अधिनियम, संविधान के मूल ढाँचे या संरचना को परिवर्तित करने का प्रयास करता है, तो न्यायालय के पास उक्त अधिनियम को अधिकारातीत (ultra vires) ठहराते हुए निरस्त करने का अधिकार है। अनुच्छेद 368 में प्रयुक्त 'संशोधन' शब्द, ऐसे संशोधन जो संविधान के मूल ढाँचे में परिवर्तन के फलस्वरूप नया संविधान बनाने के समतुल्य हों, को छोड़कर संविधान में संशोधन की अनुमति प्रदान करता है।

मूल ढाँचे का सिद्धांत वस्तुतः केशवानंद भारती वाद (1973) में उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई न्यायिक व्याख्या का परिणाम है। यह सिद्धांत संसद द्वारा अधिनियमित ऐसे संविधान संशोधनों को पुनर्विलोकित (समीक्षा) करने और उन्हें अमान्य घोषित करने की उच्चतम न्यायालय की सीमित शक्ति के आधार का सृजन करता है, जो संविधान के "मूल ढाँचे" के प्रतिकूल हैं या उसमें परिवर्तन करना चाहते हैं।

इस सिद्धांत (मूल ढाँचे) के संबंध में कुछ उल्लेखनीय बिंदु निम्नलिखित हैं:

- मूल ढाँचे का सिद्धांत केवल संविधान संशोधनों पर लागू होता है।
  - यह संसद द्वारा पारित साधारण अधिनियमों (जिन्हें स्वयं संविधान के अनुरूप होना चाहिए) पर लागू नहीं होता है।
- उल्लेखनीय है कि संविधान के मूल ढाँचे को न्यायपालिका ने पूर्णत: परिभाषित नहीं किया है। ऐसे में संविधान की कोई विशिष्ट विशेषता "मूल ढाँचे" का हिस्सा है या नहीं, इसका निर्धारण न्यायालय द्वारा अपने विभिन्न निर्णयों में किया जाता रहा है।

हालांकि, मूल ढाँचे के अंतर्गत संविधान की वे विशेषताएं सम्मिलित हैं, जिन्हें उच्चतम न्यायालय ने अलंघनीय माना है। विगत वर्षों के दौरान (वर्ष 1973 के बाद से) विभिन्न न्यायिक निर्णयों के माध्यम से इन्हें रेखांकित किया गया है। इन मूल विशेषताओं (अर्थात् मूल ढाँचे) में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

- संविधान की सर्वोच्चता
- भारतीय राजव्यवस्था का संप्रभु, लोकतांत्रिक और गणतंत्रात्मक स्वरूप
- संविधान का पंथनिरपेक्ष चरित्र
- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य शक्तियों का पृथक्करण
- संविधान का संघीय चरित्र
- राष्ट्र की एकता और अखंडता
- कल्याणकारी राज्य (सामाजिक-आर्थिक न्याय)
- न्यायिक पुनर्विलोकन
- व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा
- संसदीय प्रणाली
- विधि का शासन
- मूल अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों के मध्य सामंजस्य और संतुलन
- समानता का सिद्धांत
- स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता
- संविधान में संशोधन करने की संसद की सीमित शक्ति
- न्याय तक प्रभावी पहुँच
- युक्तियुक्तता/तर्कसंगतता
- अनुच्छेद 32, 136, 141 और 142 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय की शक्तियाँ

6.2. मूल ढाँचे की अवधारणा का उद्भव

6.2.1. परिचय

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 'मूल ढाँचे' की अवधारणा को सर्वप्रथम केशवानंद भारती वाद (1973) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के माध्यम से प्रतिपादित किया गया था। उल्लेखनीय है कि 'मूल ढाँचा' वाक्यांश सर्वप्रथम गोलकनाथ वाद (1967) में याचिकाकर्ताओं की ओर से बहस करते हुए एम. के. नांबियार और अन्य अधिवक्ताओं द्वारा प्रयुक्त किया गया था, लेकिन वर्ष 1973 में यह अवधारणा शीर्ष न्यायालय के निर्णय द्वारा प्रस्तुत की गई।

6.2.2. वाद-विवाद

'मूल ढाँचे' की अवधारणा का उद्भव संसदीय संशोधनों और उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला की चरम परिणति के रूप में देखा जा सकता है। इन्हें प्रथम संशोधन अधिनियम, 1951 से लेकर वर्ष 1971 और वर्ष 1972 में हुए अधिकाधिक संशोधनों से व्युत्पन्न वाद-विवाद से समझा जा सकता है। वाद-विवाद के मूल बिंदु निम्नलिखित हैं, जिन्होंने उच्चतम न्यायालय और संसद के विचारों में विभेद का मार्ग प्रशस्त किया:

- क्या संसद की 'संविधानी शक्ति (constituent power)' (संविधान में संशोधन करने की शक्ति) उसकी 'विधायी शक्ति (legislative power)' (विधि निर्माण की शक्ति) के समान है?
- क्या संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति असीमित है?
- साथ ही, DPSPs (राज्य की नीति के निदेशक तत्व) और मूल अधिकारों के सापेक्षिक महत्व को लेकर उच्चतम न्यायालय और संसद, दोनों के मत एक-दूसरे से विपरीत थे। जहाँ, संसद मूल अधिकारों का अधिक्रमण (supersede) करते हुए राज्य के नैतिक दायित्व के रूप में DPSPs का प्रवर्तन चाहती थी, वहीं उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकारों को DPSPs की तुलना वरीयता प्रदान की।
- एक अन्य प्रश्न संविधान की व्याख्या करने और उसे अस्तित्व में बनाए रखने हेतु न्यायालयों की शक्ति की तुलना में संसद की सर्वोच्चता से संबंधित था।

केशवानंद भारती वाद में उपर्युक्त प्रश्न से संबंधित तर्क-वितर्कों का समाधान करने का प्रयास किया गया और तभी से उच्चतम न्यायालय ने इस वाद में दिए गए निर्णय का बाद के न्यायिक निर्णयों में पालन किया है।

6.2.3. केशवानंद भारती वाद, 1973

- संसद ने न्यायिक पुनर्विलोकन से कुछ कानूनों को प्रतिरक्षित करने के साधन के रूप में वर्ष 1951 में प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से संविधान में नौवीं अनुसूची को सम्मिलित किया। अनुच्छेद 31 के प्रावधानों (जिसमें कि बाद में स्वयं कई बार संशोधन किया गया) के अनुसार, नौवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट कानूनों (राज्य द्वारा निजी संपत्ति के अधिग्रहण और इस प्रकार के अधिग्रहण के लिए देय क्षतिपूर्ति कानून) को इस आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे उन नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लंघन करते हैं, जिनकी संपत्ति का अधिग्रहण किया गया है।
    - संविधान (विशेष रूप से नागरिकों के मूल अधिकारों से संबंधित इस खंड) में संशोधन करने की संसद के प्राधिकार को वर्ष 1951 में ही चुनौती दी गई थी।
    - उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता के उपरांत, भू-स्वामित्व और काश्तकारी व्यवस्था में सुधार के उद्देश्य से विभिन्न राज्यों में कई कानून पारित किए गए थे। यह संविधान के समाजवादी लक्ष्यों {DPSPs के अनुच्छेद 39 (b) और (c) में निहित} को कार्यान्वित करने के सत्तारुढ़ कांग्रेस पार्टी के चुनावी वादे के अनुरूप था। ये अनुच्छेद उत्पादन के संसाधनों का सभी नागरिकों के मध्य समान वितरण और कुछ लोगों में धन-संपत्ति के अहितकारी संकेद्रण की रोकथाम को आवश्यक बनाते हैं। इन कानूनों से प्रतिकूल रूप से प्रभावित संपत्तिधारकों (अर्थात् भू-स्वामियों) ने न्यायालयों में याचिका दायर की। आरंभ में, न्यायालय ने यह कहते हुए भूमि सुधार कानूनों को निरस्त कर दिया कि वे संविधान द्वारा प्रदत्त संपत्ति के मूल अधिकार का उल्लंघन करते हैं।

- प्रतिकूल निर्णयों की प्रतिक्रिया स्वरूप, संसद ने इन कानूनों को संविधान की नौवीं अनुसूची में प्रथम और चतुर्थ संविधान संशोधन अधिनियम (क्रमशः वर्ष 1951 और 1952 में अधिनियमित) के माध्यम से सम्मिलित कर दिया। इस प्रकार उन्हें प्रभावी ढंग से न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे से बाहर रखा गया।
    - हालाँकि, वर्ष 1952 (शंकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत संघ वाद) और वर्ष 1955 (सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य वाद) में उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकृत कर दिया कि उपर्युक्त संसदीय कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 13(2) (नागरिकों के मूल अधिकारों की सुरक्षा के लिए प्रावधानित) का उल्लंघन करती है। इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय ने संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने की संसद की शक्ति को यथावत रखा, जिसमें नागरिकों के मूल अधिकारों को प्रभावित करने वाले संशोधन भी सम्मिलित थे।
- लेकिन, वर्ष 1967 में, गोलकनाथ वाद में, उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व के मत के विपरीत निर्णय सुनाया। बहुमत के निर्णय ने संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति पर अंतर्निहित सीमाओं की अवधारणा का सूत्रपात किया। तब, उच्चतम न्यायालय का यह दृष्टिकोण था कि संविधान, नागरिकों की मूलभूत स्वतंत्रता को स्थायित्व प्रदान करता है। बहुमत के निर्णय के अनुसार, अनुच्छेद 13, संसद की शक्तियों पर यह सीमा आरोपित करता है।
    - उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय का प्रतिकार करने के लिए संसद ने पुन: कई उपाय किए। जुलाई 1971 और जून 1972 के मध्य अनेक संशोधनों के द्वारा संसद ने संविधान में संशोधन करने की अपनी शक्ति को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया।
        - संसद ने अपने लिए मूल अधिकारों से संबंधित (संविधान के) भाग 3 सहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की पूर्ण शक्ति पुनर्स्थापित की।
        - राष्ट्रपति को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किसी भी संविधान संशोधन विधेयक पर अपनी सहमति देने के लिए बाध्य किया गया।
        - पारित किए गए अनेक कानून में संपत्ति के अधिकार पर कई अंकुश लगाए गए। विधि के समक्ष समता और विधि का समान संरक्षण (अनुच्छेद 14) के अधिकार तथा अनुच्छेद 19 के अंतर्गत प्रत्याभूत मूल स्वतंत्रताओं को DPSPs के अंतर्गत आने वाले अनुच्छेद 39 (b) और (c) के अधीनस्थ बनाया गया।
    - पूर्ववर्ती राजाओं को प्रदत्त प्रिवी पर्स समाप्त कर दिया गया।
    - भूमि सुधारों से संबंधित कानूनों की संपूर्ण श्रेणी को न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे से बाहर कर नौवीं अनुसूची में रखा गया।

वर्ष 1971 और वर्ष 1972 के मध्य हुए अधिकाधिक संशोधनों के उपर्युक्त घटनाक्रमों को **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद (1973)** में उच्चतम न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई। इस वाद की सुनवाई करने के लिए पूर्ण पीठ (13 न्यायाधीशों) का गठन किया गया।

केशवानंद भारती वाद में प्रदत्त निर्णय के मूल तत्व निम्नलिखित थे:

- सभी न्यायाधीशों ने यह कहते हुए 24वें संविधान संशोधन अधिनियम की वैधता को यथावत रखा कि संसद के पास संविधान के किसी भी या सभी भाग में संशोधन करने की शक्ति है।
    - न्यायाधीशों ने यह माना कि गोलकनाथ वाद में संवैधानिक प्रावधानों के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णय त्रुटिपूर्ण था और अनुच्छेद 368 में संविधान में संशोधन करने की शक्ति और प्रक्रिया दोनों सम्मिलित है।

- हालांकि, संविधान में संशोधन करना, केवल विधि निर्माण के समान नहीं है, जैसा कि अनुच्छेद 13(2) के अनुरूप समझा जाता है। अपितु, इसका मूल निहितार्थ यह है कि संसद की 'संवैधानिक शक्ति (constituent power)' उसकी 'विधायी शक्ति (legislative power)' के समान नहीं है।

संसद की 'संवैधानिक शक्ति' अंतर्निहित सीमाओं के अधीन है। संसद, अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन संबंधी अपनी शक्तियों का उपयोग कर, संविधान के **'मूल ढाँचे'** को 'क्षतिग्रस्त', 'क्षीण', 'नष्ट', 'निरस्त', 'परिवर्तित' या 'रूपांतरित' नहीं कर सकती है।

6.3. 'मूल ढाँचे' के सिद्धांत का आलोचनात्मक विश्लेषण

- **विपक्ष में तर्क**
  - संविधान में मूल ढाँचे के संबंध में कोई प्रावधान नहीं है। मूल संविधान में इसे परिलक्षित करने वाला कोई प्रावधान भी नहीं है कि संविधान निर्माता, संविधान के किसी भी प्रावधान को पूर्ण रूप से असंशोधनीय रखना चाहते थे।
  - अभी तक, इस संबंध में कोई सर्वसम्मति नहीं बनी है कि वास्तव में कौन-से प्रावधान 'मूल ढाँचे' के भाग हैं। साथ ही, कुछ निर्णयों के संदर्भ में भी न्यायाधीशों के मध्य ही इस संबंध में मतभेद रहा है कि कौन-सा विशेष तत्व मूल ढाँचे का हिस्सा है।
  - उच्चतम न्यायालय ने स्वयं ही यह टिप्पणी की है कि, संविधान में प्रत्येक शब्द अपने साधारण या सामान्य अर्थ में उपयोग किया गया माना जाना चाहिए और उसे सामान्य अर्थबोध दिया जाना चाहिए। हालांकि, 'मूल ढाँचे' की अवधारणा इससे विचलन की ओर संकेत करती है और यह संविधान में वर्णित के बजाय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या पर अधिक आधारित है।
  - प्रतिनिधित्वकारी लोकतंत्र (representative democracy) में, संप्रभु लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली सर्वोच्च संस्था संसद होती है। लेकिन, 'मूल ढाँचे' का सिद्धांत, संवैधानिक शक्तियों को निर्वाचित प्रतिनिधियों से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को हस्तांतरित करता है।
- **पक्ष में तर्क**
  - ऐसा कहा जाता है कि केशवानंद भारती वाद (1973) में यदि उच्चतम न्यायालय के बहुमत ने यह निर्णय दिया होता (जैसा कि 6 न्यायाधीशों ने वास्तव में किया था) कि संसद, संविधान के किसी भी भाग में परिवर्तन कर सकती है, तो भारत संभवतः सर्वसत्तावादी राज्य (Totalitarian State) में परिवर्तित हो गया होता या एकदलीय शासन वाला राज्य बन गया होता।
  - इसके अतिरिक्त, संभवतः संविधान ने अपनी सर्वोच्चता खो दी होती। यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि मूल ढाँचे के सिद्धांत ने भारतीय लोकतंत्र को संरक्षित रखा है।
  - मूल ढाँचे के सिद्धांत के पक्ष में दिए गए कुछ अन्य तर्क निम्नलिखित हैं:
    - यह कहा जाता है कि केवल आपात-काल के दौरान किए गए संशोधनों का परीक्षण करके, कोई भी व्यक्ति 'मूल ढाँचे' के सिद्धांत का महत्व समझ सकता है।
    - **39वें संविधान संशोधन अधिनियम** ने चुनावी कदाचार के बावजूद राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, अध्यक्ष और प्रधानमंत्री के चुनाव को किसी भी आधार पर चुनौती देने से निषिद्ध कर दिया था।
    - **41वें संविधान संशोधन अधिनियम** ने राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री या राज्यपालों के विरूद्ध न केवल उनके कार्यकाल के दौरान, अपितु सदैव के लिए कोई भी वाद (दीवानी या आपराधिक) दायर करने से प्रतिबंधित कर दिया था।

- इस प्रकार, यदि कोई व्यक्ति केवल एक दिन के लिए राज्यपाल के पद पर आसीन होता, तो वह जीवन-भर के लिए किसी भी कानूनी कार्यवाही से संरक्षण प्राप्त कर लेता।
- मूल ढाँचे का सिद्धांत विकासशील लोकतंत्र के लिए आवश्यक है। यह इस तथ्य के आलोक में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है कि भारतीय लोकतंत्र अभी भी अपनी शैशवास्था में है और जिन संस्थानों को विरासत के तौर पर इसे संरक्षित रखने का दायित्व सौंपा गया है, उन्हें परिपक्व होने के लिए कुछ और समय प्रदान करने की आवश्यकता है।

7. भारतीय संविधान के स्रोत

- भारतीय संविधान इस संदर्भ में भी अद्वितीय है कि इसके निर्माण में विश्व के कई देशों के संविधानों को दृष्टिगत रखा गया है। हमारे संविधान निर्माता सभी ज्ञात शासन-विधानों के कार्यकरण से प्राप्त अनुभवों को अपने संविधान में समाविष्ट करना चाहते थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अन्य देशों के संविधानों से विभिन्न प्रावधानों को ग्रहण करना किसी नकलची मानसिकता का परिचायक नहीं है, अपितु, इसका उद्देश्य भारतीय परिप्रेक्ष्य, समस्याओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाले विश्व के सर्वोत्तम संवैधानिक प्रावधानों को ग्रहण करना था।
- हमारे संविधान के मूल अधिकार और उच्चतम न्यायालय संबंधी व्यवस्थाओं पर संयुक्त राज्य अमेरिका का, राज्य की नीति के निदेशक तत्वों पर आयरलैंड का, आपातकालीन व्यवस्थाओं पर जर्मनी का, विधायी शक्तियों के वितरण पर कनाडा का तथा संसदीय संस्थाओं पर ब्रिटेन (के संविधान) का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।
- इनके अतिरिक्त, हमारे संविधान निर्माताओं ने भारत शासन अधिनियम, 1935 के कई प्रावधानों को अक्षरशः ग्रहण कर लिया था। 1935 के अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों में संघ तथा राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियां, अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की रक्षा, उच्चतम न्यायालय का अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण, संघ का राज्य के शासन में हस्तक्षेप, द्विसदनीय विधायिका आदि सम्मिलित हैं।

भारतीय संविधान के विदेशी स्रोतों को संक्षेप में निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है:

देश	ग्रहण किये गए प्रावधान
यूनाइटेड किंगडम (UK)	• सांकेतिक प्रमुख - राष्ट्रपति (जैसा कि ब्रिटेन में सम्राट/साम्राज्ञी की स्थिति है) • विधि का शासन • विधि निर्माण की पद्धति • मंत्रियों की कैबिनेट प्रणाली • प्रधानमंत्री का पद • सरकार का संसदीय स्वरुप • द्विसदनीय विधायिका • एकल नागरिकता • अधिक शक्तिशाली निम्न सदन • मंत्रिपरिषद्, निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी • लोकसभा अध्यक्ष की शक्तियां और उसकी भूमिका • सर्वाधिक मत के आधार पर चुनावों में जीत का निर्णय (फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम)

संयुक्त राज्य अमेरिका (USA)	• लिखित संविधान • उद्देशिका • मूल अधिकार • राज्य के कार्यकारी प्रमुख और सशस्त्र बलों के सर्वोच्च सेनापति के रूप में राष्ट्रपति की स्थिति • राज्यसभा के पदेन सभापति के रूप में उप-राष्ट्रपति • राज्यों से संबंधित प्रावधान • राष्ट्रपति पर महाभियोग • उच्चतम न्यायालय • न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति • उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पदच्युति
USSR	• मूल कर्त्तव्य • उद्देश्यिका में न्याय (सामजिक, आर्थिक एवं राजनितिक) का आदर्श
ऑस्ट्रेलिया	• समवर्ती सूची का प्रावधान • उद्देश्यिका की भाषा • व्यापार, वाणिज्य और समागम संबंधी प्रावधान
जापान	• विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया • वह विधि जिसके आधार पर उच्चतम न्यायालय कार्य करता है
जर्मनी का वाईमर संविधान	• आपात-काल के दौरान मूल अधिकारों का निलंबन
कनाडा	• एक सुदृढ़ केंद्र सहित संघीय व्यवस्था • केंद्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का वितरण • अवशिष्ट शक्तियों का केंद्र में निहित होना
आयरलैंड	• राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की अवधारणा (आयरलैंड ने यह अवधारणा **स्पेन से ग्रहण** की है) • राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि • राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा में सदस्यों का नामनिर्देशन
फ्रांस	• गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली
दक्षिण अफ्रीका	• संविधान संशोधन की प्रक्रिया

8. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions)

1. संविधान को त्वरित ढंग से बार-बार संशोधित नहीं किया जाना चाहिए, जब तक ऐसा करना अनिवार्य न हो। कैसे भारतीय संविधान में किए गए संशोधन ऐसी आवश्यकता का अनुपालन करते हैं?

दृष्टिकोण:

- सर्वप्रथम प्रश्न के कथन पर विचार कीजिए। क्या यह न्यायसंगत है? उत्तर देने का सही तरीका इस पर निर्भर होना चाहिए कि क्या कथन उचित है? यदि आप कथन का खंडन करते हैं, तो प्रश्न के दूसरे भाग की प्रासंगिकता का अधिक महत्व नहीं रह जाएगा।
- जो भी निर्णय आप लेते हैं उसके समर्थन में तर्क भी दीजिए। यहाँ आप संविधान की सत्यात्मक प्रणाली की आवश्यकता पर भी चर्चा कर सकते हैं। इस तरह, इस पर भी विचार करना आवश्यक है कि संशोधन त्वरित और बार-बार नहीं होने चाहिए।
- तत्पश्चात इस पर विचार कीजिए कि भारतीय संविधान इस कथन की सत्यता पर खरा उतरता है। जब आप इस पर विचार कर रहे हों तब आपका यह मानना होगा कि यह कथन उचित है।
- कुछ संविधान संशोधनों का उदाहरण भी दीजिए और विचार कीजिए कि संशोधन त्वरित रूप से किए गए हैं या केवल तब किए गए जब परिस्थितिवश आवश्यक हो गए थे।

उत्तर:

साधरणतः यह माना जाता है कि संविधान एक गतिशील दस्तावेज़ है। इसे समाज की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तनों को स्वीकार करने योग्य होना चाहिए। कभी-कभी नई सामाजिक और आर्थिक शक्तियों के प्रभाव में सरकार बड़े बदलाव करती है क्योंकि राजनीतिक स्थिति समय के अनुसार अरिवार्तित होती रहती है। इसलिए तत्कालीन परिस्थिति के साथ सामंजस्य स्थापित करना भी संवैधानिक दस्तावेज़ों का लाभ होना चाहिए और इसको अपनी प्रासंगिकता निरंतर सुनिश्चित करनी चाहिए। संवैधानिक परिवर्तन यह प्रदर्शित करते हैं कि नागरिक किस तरह से शासित हो रहे हैं।

फिर भी, यह अनुभव होना चाहिए कि संविधान सरकार के लिए कोई ऐसा उपकरण नहीं हैं जो लोगों के अधिकारों को नियंत्रित करे। इसके विपरीत, यह ऐसा उपकरण है जो लोगों द्वारा सरकार को गलत नीतियों के निर्माण से निषिद्ध करता है। यदि संविधान में परिवर्तन त्वरित रूप से होते हैं तो यह अपना महत्व खो देगा क्योंकि जो संरक्षण संविधान के द्वारा प्रदान की गयी है वह बार-बार के संशोधन से अपना महत्व खो देगी। यह संविधान को किसी भी साधारण कानून के जैसा बना सकता है। इससे संविधान की शक्तियों के महत्व में कमी हो सकती हैं। अत: संविधान के जो मूलभूत अवधारणा हैं जैसे शक्तियों का पृथक्करण, जाँच और संतुलन, सरकार पर नियंत्रण इत्यादि को निश्चित रूप से अक्षुण्ण रखना चाहिए।

सरकार के प्रचलित स्वरूप में अनेक दोष विद्यमान हैं क्योंकि इसका संचालन लोगों द्वारा किया जा रहा है। लेकिन इन दोषों का संविधान में परिवर्तन के बिना ही समाधान किया जा सकता है। जिसको पंडित नेहरू ने उचित ही कहा था कि - संविधान में निरंतर परिवर्तन नहीं होना चाहिए। इसमें परिस्थिति की अनिवार्यता के अनुरूप निश्चित रूप से परिवर्तन किया जाना चाहिए।

इस तथ्य को भी दृष्टिगत रखना चाहिए कि संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान में अनुच्छेद 368 को भी शामिल किया है। यह अनुच्छेद संविधान संशोधन की प्रक्रिया से संबंधित है। अनुच्छेद 368 के कारण ही भारतीय संविधान को न तो बहुत कठोर और न बहुत लचीला कहा जाता है, बल्कि आंशिक रूप से कठोर और आंशिक रूप से लचीला कहा जा सकता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद निम्नलिखित तरीकों से संशोधित हो सकते हैं:

- संसद में साधारण बहुमत से,
- विशेष बहुमत से जिसका अर्थ है, प्रत्येक सदन के सभी सदस्यों के बहुमत के द्वारा और प्रत्येक सदन के उपस्थित और मत देने वाले दो तिहाई सदस्यों के बहुमत के द्वारा।
- कम से कम आधे राज्यों की विधानसभा के अनुसमर्थन के द्वारा, जिसमें विशेष बहुमत भी शामिल हो।
- कुछ बड़े संशोधनों के उदाहरण जो नागरिक और समाज की आवश्यकताओं के संदर्भ में किए गए हैं:
    - संविधान के 52 वें संशोधन के द्वारा दसवीं अनुसूची को जोड़ा गया है, जिसमें सांसदों और विधायकों को दल-बदल के आधार पर अयोग्य घोषित किया जा सकता है। इस कानून का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक दल-बदल की समस्या का समाधान करना था जिसकी उत्पत्ति गठबंधन की राजनीति से हुई है।
    - 73वां संविधान संशोधन जो पंचायती राज्य प्रणाली को संस्थापित करता है। यह मूल और लाभ-रहित वर्ग को प्रतिनिधित्व प्रदान कर जनसाधरण की शक्ति को मंच प्रदान करता है। इस प्रकार यह भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सबसे बड़ी शुरूआत है।

कुछ संशोधनों ने निश्चित रूप से संविधान के दस्तावेज़ों की अन्तर्वस्तु और स्वभाव के परिवर्तन के संदर्भ में और सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुसार बेहतर कार्य किया है, जो नीति-निर्णयों के क्रियान्वयन के लिए या तो अनिवार्य या परिणाम थे। फिर भी, उनमें से कुछ उपेक्षा करने योग्य, गैर-आवश्यक और केवल राजनीतिक एवं दलगत (बहुमत प्राप्त सत्ता दल) भावनाओं से किए गए हैं, उदाहरणार्थ- 42वां संविधान संशोधन। सैद्धांतिक रूप से किसी भी राजनीतिक दल द्वारा संविधान का सरलता से संशोधन नहीं किया जाना चाहिए।

यह समझना आवश्यक है कि सरकारी काम-काज के प्रति लोगों का मोहभंग होना संवैधानिक उपचारों की मांग करता है न कि संशोधनों की। चुनावी कानून एवं उसकी प्रक्रिया तथा राजनीतिक दलों की कार्यप्रणाली में सबसे अधिक सुधार की आवश्यकता है और इसके लिए संविधान संशोधन की आवश्यकता नहीं है। यदि राजनीतिक इच्छाशक्ति है तो संबंधित समस्या या मुद्दे का समाधान करते हुए विधेयक को तब भी प्रस्तुत किया जा सकता है जब इसकी आवश्यकता महसूस हो।

2. **यद्यपि संविधान-निर्माताओं ने संविधान संशोधन का अधिकार संसद में निहित कर दिया था, किंतु, केशवानंद भारती वाद के बाद से, सर्वोच्च न्यायालय इस अधिकार में निर्णायक भागीदार बन चुका है। टिप्पणी कीजिए।**

दृष्टिकोण:

उत्तर में केशवानंद भारती वाद के पूर्व की स्थिति को रेखांकित करना चाहिए और इस तथ्य को भी प्रकट करना चाहिए कि किस प्रकार इस निर्णय ने संविधान में संशोधन की अवधारणा को बदल दिया। संविधान के मूल ढाँचे का संक्षिप्त विवरण भी प्रस्तुत करना चाहिए।

उत्तरः

हालांकि, संविधान ने संविधान या इसके किसी भी भाग में संशोधन (अनुच्छेद 368) का अधिकार जनता के प्रतिनिधियों से निर्मित संसद को प्रदान किया है। उच्चतम न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय के तहत यह निर्णित किया कि कोई भी संशोधन, जो संविधान के मूल ढाँचे का उल्लंघन करता है, वह प्रभाव-शून्य होगा। इस प्रकार इसने संसद के संविधान में संशोधन के अधिकार में काफी हद तक कटौती कर दी।

यदि अनुच्छेद 368 का पठन सामान्य रूप से किया जाता है तो इसमें संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने के संसद के अधिकार पर कोई प्रतिबंध या सीमा लागू होती प्रतीत नहीं होती है। गोलकनाथ वाद में, सर्वोच्च न्यायालय की यह राय थी कि इसे संविधान के अनुच्छेद 13 के साथ जोड़कर पढ़ा जाना चाहिए, लेकिन, वर्ष 1973 में केशवानंद भारती वाद में इसने अपने निर्णय को बदल दिया।

केशावानंद भारती वाद में, न्यायपालिका ने इस प्रश्न पर विचार करने की चेष्टा की कि "क्या संविधान को संशोधित करने का संसद का अधिकार असीमित था?" इस प्रश्न पर विचार करते हुए इसके द्वारा मूल ढांचे के सिद्धांत को प्रस्तुत किया गया जिसके तहत यह माना गया कि संसद संविधान के किसी भी हिस्से में तब तक संशोधन कर सकती है, जब तक उससे संविधान के मूल ढाँचे में बदलाव या संशोधन न हो।

उच्चतम न्यायालय ने 'मूल ढाँचे' के अंतर्गत शामिल तत्वों का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया है। यह आगे इस बात की आशंका उत्पन्न करता है कि यदि किसी कानून को चुनौती दी जाती है तो क्या उसका न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकेगा या नहीं।

किंतु बाद के निर्णयों से यह समझा जा सकता है कि उद्देश्यिका, संघवाद, मूल अधिकार, पंथ-निरपेक्षता इत्यादि इसके आधारभूत घटकों में शामिल हैं।

एक समीक्षक के अनुसार, संविधान की वास्तविकता यह रही है कि जब संविधान की व्याख्या की बात आती है, तो यह संभव है कि विधायिका और न्यायपालिका दोनों के विपरीत विचार हो। इसका निश्चित रूप से निर्धारण नहीं किया गया है कि किसका निर्णय अंतिम होगा। संसद कोई भी कानून पास कर सकती है और न्यायालय को इसकी संवैधानिकता पर निर्णय लेने का अधिकार होगा। संसद संविधान में संशोधन कर न्यायालय के अधिकार में गतिरोध उत्पन्न करने की चेष्टा कर सकती है और न्यायालय इसकी घोषणा कर सकता है कि संसद के अधिकार सीमित हैं। ऐसे अधिनियमन के उदाहरण हैं जो मूल ढाँचे का उल्लंघन करने के कारण प्रभाव-शून्य हो गए, जबकि 44वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा संपत्ति के अधिकार का उन्मूलन संबंधी संशोधन न्यायालय की समीक्षा में सही सिद्ध हुआ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अन्य सरकारी संस्थाओं के विपरीत संवैधानिक शक्ति के केन्द्र के रूप में संसद की शक्ति में कमी करना, न्यायपालिका के समक्ष सर्वाधिक प्रबल प्रतीत होता है।

9. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions)

1. Describe the emergence of Basic Structure concept in the Indian Constitution. (150 words) (94/II/4b/20)

   भारतीय संविधान में मूल ढाँचे की अवधारणा के उद्भव का वर्णन कीजिए।

2. What is a Constitution? What are the main sources of the Indian Constitution? (250 words) (07/I/6a/30)

   संविधान क्या है? भारतीय संविधान के मुख्य स्रोत क्या हैं?

3. 'Separation of Powers is essential to ensure individual liberty' Discuss this with regard to the provisions in the Constitution and practices adopted so far.

   'व्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए शक्तियों का पृथक्करण आवश्यक है' संविधान में किए गए प्रावधानों और अब तक अपनाई गई परिपाटियों के संबंध में इसकी विवेचना कीजिए।

4. Is the Indian Parliament a "Sovereign" or a "non-Sovereign" legislature or both? (84/II/8b(B)/3)

   क्या भारतीय संसद "संप्रभु" या "गैर- संप्रभु" विधायिका या दोनों है?

5. Write on Significance of 26th November in the country's polity in about 20 words. (09/I/10a/2)

   लगभग 20 शब्दों में देश की राजनीति में 26 नवंबर के महत्व पर लिखिए।

6. Highlight the significance of the Twenty Fourth Amendment to the Constitution of India. (in about 150 words) (99/II/4c/20)

   भारत के संविधान के चौबीसवें संशोधन के महत्व पर प्रकाश डालिए।

7. What are the main difference between the passage of a Constitution Amendment Bill and other Legislative Bills? (in about 250 words) (01/I/7b/30)

   संविधान संशोधन विधेयक और अन्य विधायी विधेयक पारित किए जाने के मध्य मुख्य अंतर क्या हैं?

8. How is the Constitution of Indian amended? Do you think that the procedure for amendment makes the Constitution a play-thing in the hands of the Centre? (in about 250 words) (02/I/7b/30)

   भारत का संविधान कैसे संशोधित किया जाता है? क्या आप मानते हैं कि संशोधन की प्रक्रिया संविधान को केंद्र के हाथों का खिलौना बना देती है?

9. How would you differentiate between the passage of a Constitution Amendment Bill and of an Ordinary Legislative Bill? (06/I/8a/15)
आप संविधान संशोधन विधेयक और साधारण विधायी विधेयक पारित किए जाने के मध्य किस प्रकार विभेदन करेंगे?

10. What is meant by 'Sovereignty of Parliament'? Consider whether the Indian Parliament is a sovereign body. (in about 150 words) (82/II/5d/20)
'संसद की संप्रभुता' से क्या अभिप्राय है? विचार कीजिए कि क्या भारतीय संसद संप्रभु निकाय है।

11. How will you define 'judicial review'? (82/II/8c(A)/3)
आप 'न्यायिक पुनर्विलोकन' को कैसे परिभाषित करेंगे?

12. What constitutes the doctrine of 'basic features' as introduced into the Constitution of India by the Judiciary? (in about 150 words) (00/I/7b/30)
न्यायपालिका द्वारा दिया गया भारतीय संविधान के 'आधारभूत अभिलक्षण' का सिद्धांत क्या है?

13. Why is the Indian Constitution called quasi-federal? (87/II/8c(B)/3)
भारतीय संविधान को अर्द्ध-संघीय क्यों कहा जाता है?

संविधान की उद्देशिका

विषय सूची

1. संविधान की उद्देशिका: एक परिचय ____ 109
1.1. उद्देशिका की विषय-वस्तु ____ 110
2. उद्देशिका की स्थिति ____ 110
2.1. पारंपरिक दृष्टिकोण ____ 110
2.2. आधुनिक दृष्टिकोण ____ 110
1.2. संविधान की उद्देशिका में निहित मूल तत्व ____ 110
1.3. क्या उद्देशिका संविधान का अंग है? ____ 111
1.4. उद्देशिका के निर्वचन एवं संशोधन से संबंधित विभिन्न वाद (Cases) ____ 111
1.4.1. बेरूबारी संघ वाद (1960) ____ 111
1.4.2. गोलकनाथ वाद (1967) ____ 112
1.4.3. केशवानंद भारती वाद (1973) ____ 112
1.4.4. रघुनाथ राव बनाम भारत संघ वाद (1993) ____ 112
1.4.5. एस. आर. बोम्मई वाद (1994) ____ 112
1.4.6. एल. आई. सी. ऑफ़ इंडिया वाद (1995) ____ 112
1.5. उद्देशिका में उल्लिखित प्रमुख शब्दों की व्याख्या ____ 112
1.5.1. संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न (Sovereign) ____ 112
1.5.1.1. संप्रभुता और वैश्वीकरण ____ 113
1.5.2. समाजवादी (Socialist) ____ 113
1.5.3. पंथ-निरपेक्ष (Secular) ____ 114
1.5.4. लोकतंत्रात्मक (Democratic) ____ 115
1.5.5. गणराज्य (Republic) ____ 116
1.5.6. न्याय (Justice) ____ 116
1.5.7. स्वतंत्रता (Liberty) ____ 117
1.5.8. समता (Equality) ____ 117
1.5.9. बंधुता (Fraternity) ____ 118
2. उद्देशिका, मूल अधिकार तथा राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों के मध्य पारस्परिक संबंध ____ 118
3. उद्देशिका से संबंधित हालिया विवाद ____ 118
4. उपसंहार ____ 120
5. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions) ____ 120
6. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions) ____ 121

1. संविधान की उद्देशिका: एक परिचय

'उद्देशिका' शब्द संविधान के परिचय या भूमिका को संदर्भित करता है। यह संविधान का दर्शन या सार होता है। लिखित संविधान की 'उद्देशिका' उन लक्ष्यों को दर्शाती है, जिन्हें संविधान स्थापित करना चाहता है। यह संविधान की कानूनी व्याख्या को भी व्यापक आधार प्रदान करती है और विशेषतः जहां व्याख्या अस्पष्ट हो वहां समझने में सहायता करती है। इसलिए, हमारे संविधान में निहित उद्देश्यों या लक्ष्यों और आकांक्षाओं के समुचित प्रोत्साहन अथवा इन्हें बढ़ावा देने हेतु, हमें उद्देशिका में निहित विभिन्न अभिव्यक्तियों को अपनाने की आवश्यकता है।

भारत का संविधान

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय;

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता;

प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए

तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए;

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्‌द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

THE CONSTITUTION OF INDIA

WE, THE PEOPLE OF INDIA, HAVING SOLEMNLY RESOLVED TO CONSTITUTE INDIA INTO A SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR DEMOCRATIC REPUBLIC AND TO SECURE TO ALL ITS CITIZENS;

JUSTICE, SOCIAL, ECONOMIC AND POLITICAL;

LIBERTY OF THOUGHT, EXPRESSION, BELIEF, FAITH AND WORSHIP;

EQUALITY OF STATUS AND OF OPPORTUNITY; AND TO PROMOTE AMONG THEM ALL

FRATERNITY ASSURING THE DIGNITY OF THE INDIVIDUAL AND THE UNITY AND INTEGRITY OF THE NATION;

IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY THIS TWENTY-SIXTH DAY OF NOVEMBER, 1949, DO HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.

- उद्देशिका का शाब्दिक अर्थ होता है, भूमिका अथवा प्राक्कथन।
    - सर्वप्रथम, संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा अपने संविधान में उद्देशिका को सम्मिलित किया गया।
- भारतीय संविधान की उद्देशिका का संबंध इसके उद्देश्यों, लक्ष्यों, आदर्शों तथा मूलभूत सिद्धान्तों से है।
- संविधान की उद्देशिका, संविधान सभा द्वारा 22 जनवरी 1947 को पारित **उद्देश्य प्रस्ताव** पर आधारित है।
- ध्यातव्य है कि जब अन्य सभी उपबंध अधिनियमित किए जा चुके थे, उसके पश्चात् उद्देशिका को पृथक रूप से पारित किया गया था।
- संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार बी. एन. राव ने उपर्युक्त प्रस्ताव के आधार पर उद्देशिका का प्रारूप तैयार किया। संविधान की प्रारूप समिति द्वारा इस प्रारूप पर विचार किया गया तथा इसमें आवश्यक संशोधन करके संविधान सभा के कार्यों के अंतिम चरण में इसे पारित किया ताकि यह संविधान के विभिन्न प्रावधानों के अनुरूप हो।
- भारतीय संविधान की उद्देशिका की विशिष्ट भाषा आस्ट्रेलिया के संविधान से ग्रहण की गई है। प्रख्यात न्यायविद व संविधान विशेषज्ञ एन. ए. पालकीवाला ने उद्देशिका को **'संविधान का परिचय पत्र'** कहा है।

1.1. उद्देशिका की विषय-वस्तु

'**हम भारत के लोग**, भारत को **एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय**,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता**,

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और

राष्ट्र की एकता और अखंडता

सुनिश्चित करने वाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा** में आज तारीख **26 नवंबर, 1949 ई.** (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**'

हमारे संविधान की उद्देशिका निम्नलिखित दो उद्देश्यों को पूर्ण करती है:

- यह उन स्रोतों को इंगित करती है जिनसे संविधान शक्ति प्राप्त करता है; एवं
- यह उन उद्देश्यों का भी वर्णन करती है, जिन्हें संविधान स्थापित करना तथा प्रोत्साहन प्रदान करना चाहता है।

कुछ अति महत्त्वपूर्ण तथ्य

- उद्देशिका की प्रकृति अप्रवर्तनीय है अर्थात् इसकी व्यवस्थाओं को न्यायालय द्वारा प्रवृत्त नहीं कराया जा सकता है।
- उद्देशिका में कोई भी संशोधन केवल अनुच्छेद 368 के तहत उपबंधित प्रक्रिया के अनुसार ही हो सकता है।
- अब तक उद्देशिका को **केवल एक बार** 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा **03-01-1977** को संशोधित कर, इसके पहले पैरा में दो शब्द **समाजवादी** और **पंथनिरपेक्ष** एवं छठे परिच्छेद खंड में **अखंडता** शब्द जोड़ा गया।

2. उद्देशिका की स्थिति

2.1. पारंपरिक दृष्टिकोण

पारंपरिक दृष्टिकोण यह है कि यह संविधान का अभिन्न अंग नहीं है, बल्कि इसे अलग से जोड़ा गया है। इसका आशय यह है कि यदि हम इसे संविधान से हटा देते हैं, तो यह कानून या अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावित नहीं करेगा।

2.2. आधुनिक दृष्टिकोण

आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि उद्देशिका संविधान का एक अभिन्न अंग है और इसमें संसद द्वारा संशोधन किया जा सकता है।

1.2. संविधान की उद्देशिका में निहित मूल तत्व

संविधान की उद्देशिका में निहित **चार मूल तत्व** निम्नलिखित हैं :

- **संविधान की शक्ति का स्रोत:** उद्देशिका में उल्लेख है कि संविधान भारत के लोगों से शक्ति अधिग्रहित करता है।

- **भारत की प्रकृति:** उद्देशिका में उल्लेख है कि भारत एक संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक एवं गणतांत्रिक व्यवस्था वाला देश है।
- **संविधान के उद्देश्य:** न्याय, स्वतंत्रता, समता एवं बंधुता।
- **संविधान लागू होने की तिथि:** 26 नवंबर, 1949

1.3. क्या उद्देशिका संविधान का अंग है?

उद्देशिका संविधान का अंग है या नहीं, यह विवाद का विषय रहा है। **बेरुबारी वाद (1960)** में उच्चतम न्यायालय ने उद्देशिका को संविधान का अंग नहीं माना था। हालाँकि, **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)** वाद में उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व के संवैधानिक निर्णयों में संशोधन करते हुए कहा कि उद्देशिका संविधान का अभिन्न अंग है।

1.4. उद्देशिका के निर्वचन एवं संशोधन से संबंधित विभिन्न वाद (Cases)

बेरूबारी संघ, गोलकनाथ, केशवानंद भारती, रघुनाथ राव वाद आदि।

1.4.1. बेरूबारी संघ वाद (1960)

- उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उद्देशिका, संविधान में निहित सामान्य प्रयोजनों को दर्शाती है। अत: "यह संविधान निर्माताओं के विचारों को समझने की कुंजी है।" इसके अतिरिक्त संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में की गयी व्यवस्थाओं के अनेक अर्थ निकलते हैं। इस व्यवस्था के उद्देश्य को संविधान में शामिल किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि उद्देशिका संविधान का भाग **नहीं** है।
- प्रस्तावना के महत्व को मान्यता प्रदान करने के बावजूद, उच्चतम न्यायालय ने यह माना कि प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है। पुनः यह संविधान द्वारा स्पष्ट तौर पर प्रदत्त शक्तियों को प्रतिबंधित करने का स्रोत भी नहीं है। इसके अतिरिक्त, प्रस्तावना न्यायालय में प्रवर्तनीय नहीं है।
- संविधान की व्याख्या में उद्देशिका का सीमित महत्व है।
- संविधान के प्रावधान के स्पष्ट होने की स्थिति में उद्देशिका को लागू नहीं किया जा सकता है **(ए. के. गोपालन वाद, 1950)**। गोपालन वाद में, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि उद्देशिका का उपयोग स्पष्ट प्रावधानों की व्याख्या या वर्णन करने के लिए नहीं किया जाएगा। इस मामले में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 21 (जीवन और स्वतंत्रता) में 'विधि' शब्द का उपयोग किया गया है जो 'प्राकृतिक विधि' को इंगित नहीं करता बल्कि राज्य द्वारा बनायी गई 'विधि' को संदर्भित करता है।
- हालांकि, यह स्वीकार किया कि संविधान के प्रावधानों में अस्पष्टता होने पर उद्देशिका का उपयोग किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय के अनुसार, उद्देशिका संविधान सभा के लोगों के अंतरमन को समझने की कुंजी है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रदत्त स्पष्टीकरण:

- यद्यपि संविधान की उद्देशिका साधारण विधान का अभिन्न अंग नहीं है, तथापि यह संवैधानिक विधान का एक अनिवार्य अंग है।
- उच्चतम न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि बेरुबारी वाद में उद्देशिका से संबद्ध कुछ तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया गया। ये तथ्य उद्देशिका को संविधान के एक अंग के रूप में स्थापित करते हैं।
    - संविधान सभा ने संविधान के अन्य भागों के अनुरूप ही उद्देशिका को भी अंगीकृत किया था।
    - शेष संविधान के अधिनियमन के उपरांत उद्देशिका को अधिनियमित किया गया था। यह सुनिश्चित करने हेतु कि उद्देशिका और संविधान के अन्य प्रावधानों के मध्य कोई असंगति नहीं

है, उद्देशिका को सबसे अंत में सम्मिलित किया गया। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका में संविधान की उद्देशिका को सबसे पहले अधिनियमित किया गया था।

1.4.2. गोलकनाथ वाद (1967)

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जहाँ संविधान की भाषा अस्पष्ट या संदिग्ध हो, वहां उसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उद्देशिका का संदर्भ लिया जा सकता है।

1.4.3. केशवानंद भारती वाद (1973)

उच्चतम न्यायालय ने बेरूबारी संघ वाद में दिए गए स्वयं के निर्णय को अस्वीकार कर दिया और यह व्यवस्था दी कि उद्देशिका संविधान का **एक अंग है**। न्यायालय ने यह भी कहा कि संसद अनुच्छेद 368 के तहत इसमें संशोधन भी कर सकती है, लेकिन उद्देशिका में निहित मूल ढांचे को संशोधित नहीं किया जा सकता है।

- उद्देशिका का अत्यधिक महत्व है और संविधान को उद्देशिका में निहित व्यापक और विशिष्ट संकल्पों के सन्दर्भ में पठित और विवेचित किया जाना चाहिए।
- उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि उद्देशिका का उपयोग मूल अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों के मध्य संबंधों की व्याख्या करने में किया जा सकता है।
- उच्चतम न्यायालय द्वारा 25वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 (जिसके तहत अनुच्छेद 31C को जोड़ा गया) की वैधता की जांच में उपरोक्त दृष्टिकोण का उपयोग किया गया।

1.4.4. रघुनाथ राव बनाम भारत संघ वाद (1993)

उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

- उद्देशिका शक्ति का स्रोत नहीं है, विधि की शक्ति का स्रोत विनिर्दिष्ट अनुच्छेद ही हो सकता है।
- उद्देशिका विधानमंडल की शक्तियों पर प्रतिबंध आरोपित करने का स्रोत नहीं है।
- संविधान के संदिग्ध तथा द्विअर्थी उपबंधों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए उद्देशिका उपयोगी है।

1.4.5. एस. आर. बोम्मई वाद (1994)

"उद्देशिका संविधान का अभिन्न अंग है। सरकार का प्रजातांत्रिक स्वरुप, संघीय संरचना, राष्ट्रीय एकता और अखंडता, पंथनिरपेक्षता, समाजवादी स्वरूप, सामाजिक न्याय एवं न्यायिक पुनर्विलोकन भी इसके मूल ढांचे में सम्मिलित हैं।"

1.4.6. एल. आई. सी. ऑफ़ इंडिया वाद (1995)

उच्चतम न्यायालय ने पुनः व्यवस्था दी कि उद्देशिका संविधान का एक अभिन्न अंग है।

1.5. उद्देशिका में उल्लिखित प्रमुख शब्दों की व्याख्या

उद्देशिका में कुछ प्रमुख शब्दों का उल्लेख किया गया है, जो इसमें निहित मूल्यों एवं दर्शन के द्योतक हैं। ये हैं: **संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य, न्याय, स्वतंत्रता, समता व बंधुता।** इनकी संक्षेप में निम्नलिखित व्याख्या की गई है:

1.5.1. संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न (Sovereign)

- संप्रभु शब्द का आशय है कि भारत अपने आंतरिक तथा बाह्य मामलों का निर्धारण करने के लिए स्वतंत्र है। यद्यपि वर्ष 1949 में भारत ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता स्वीकार करते हुए ब्रिटेन को

इसका प्रमुख माना, तथापि राष्ट्रमंडल एवं संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता किसी भी तरह भारतीय संप्रभुता को प्रभावित नहीं करती।

- एक संप्रभु राष्ट्र होने के कारण भारत किसी विदेशी सीमा का अधिग्रहण कर सकता है अथवा किसी अन्य देश के पक्ष में अपनी सीमा के किसी हिस्से से दावा छोड़ सकता है।
- वस्तुतः यह पद बिना किसी बाह्य दबाव या प्रभाव के आत्मनिर्णय की शक्ति का द्योतक है।

संप्रभुता शब्द किसी राष्ट्र के स्वतंत्र स्वरूप को संदर्भित करता है। इसका आशय है कि राष्ट्र को किसी भी विषय पर विधि निर्माण की शक्ति प्राप्त है; और यह किसी भी अन्य राष्ट्र या बाहरी शक्ति के नियंत्रण के अधीन नहीं है।

परिणामतः भारत की उद्देशिका में उल्लिखित संप्रभु शब्द का अर्थ है कि भारत न तो किसी अन्य राष्ट्र पर निर्भर और न ही अधिराज्य (डोमिनियन) है, बल्कि यह एक स्वतंत्र राष्ट्र है। राष्ट्र से सर्वोच्च कोई नहीं है और यह अपने आंतरिक एवं बाह्य दोनों मामलों को स्वयं निस्तारण करने हेतु स्वतंत्र है।

वर्ष 1949 में राष्ट्रमंडल राष्ट्र की अपनी पूर्ण सदस्यता जारी रखने हेतु भारत की घोषणा किसी भी तरीके से भारत की संप्रभुता को प्रभावित नहीं करती है। यह घोषणा विधियेत्तर है एवं संविधान में इसका कोई उल्लेख नहीं है। यह एक स्वैच्छिक घोषणा है। यह संगठन स्वतंत्र राज्यों के मध्य एक प्रतिष्ठित संघ था।

यह ब्रिटिश ताज को केवल राष्ट्रमंडल के प्रतीकात्मक प्रमुख के रूप में स्वीकार करता है और भारत के नागरिकों की निष्ठा पर कोई प्रश्न नहीं करता। जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था: "यह स्वतंत्र इच्छा से किया हुआ एक समझौता है, जिसे स्वतंत्र इच्छा द्वारा समाप्त किया जा सकता है।"

1.5.1.1. संप्रभुता और वैश्वीकरण

- भारत हमेशा से ही अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों का समर्थक रहा है। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का संस्थापक सदस्य भी है। इसने अंतर्राष्ट्रीय विधियों के विकास में भी सक्रिय भूमिका निभाई है। हालाँकि यह प्रश्नगत है कि क्या यह हमारे देश की संप्रभुता को सीमित करता है? यद्यपि यह महसूस किया जाना चाहिए कि संप्रभुता एक विधिक अवधारणा है। किन्तु व्यवहार में, प्रायः इसके साथ समझौता होता रहा है।
- हालाँकि, यह दृष्टिकोण कि वैश्वीकरण संप्रभुता को सीमित करता है, इस पर पुनः चर्चा करने की आवश्यकता है। वैश्वीकरण से आशय संप्रभुता का ह्रास होना नहीं है, बल्कि यह उस तरीके में एक संशोधन है जिस रीति से संप्रभुता का प्रयोग किया जाता है। वैश्वीकरण की दौर में संप्रभुता को अत्यधिक उत्तरदायी पूर्ण उपयोग करने की आवश्यकता है।
- भारत सरकार अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी रणनीतिक स्वायत्तता सुनिश्चित करने और भारत के लोगों के हितों की रक्षा के प्रति सतर्क है। खाद्य सब्सिडी के संबंध में विश्व व्यापार संगठन में हालिया विवाद इसका उदाहरण है।

1.5.2. समाजवादी (Socialist)

- मूल उद्देशिका में, समाजवादी शब्द का उल्लेख नहीं था, क्योंकि संविधान हमारे देश को किसी विशिष्ट आर्थिक संरचना के रूप में निरुपित नहीं करता है। लेकिन वर्ष **1976** में **42वें संविधान संशोधन अधिनियम** के द्वारा संविधान में समाजवादी शब्द जोड़ा गया।
- दृष्टव्य है कि भारतीय समाजवाद **'लोकतांत्रिक समाजवाद'** है न कि **'राज्य समाजवाद'** ('साम्यवादी समाजवाद') जिसमें उत्पादन और वितरण के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण तथा निजी संपत्ति का उन्मूलन सम्मिलित है।

- वस्तुतः लोकतांत्रिक समाजवाद, मिश्रित अर्थव्यवस्था का समर्थक होता है, जहां सार्वजनिक व निजी क्षेत्र साथ-साथ मौजूद रहते हैं। भारतीय समाजवाद, मार्क्सवाद और गांधीवाद का एक मिश्रित रूप है, जिसमें **'गांधीवादी समाजवाद'** की ओर अधिक झुकाव है।

यद्यपि "समाजवाद" शब्द का आशय अस्पष्ट प्रतीत होता है, तथापि उच्चतम न्यायालय के दृष्टिकोण में इसका मुख्य उद्देश्य आय, सामाजिक स्थिति एवं जीवन-स्तर में व्याप्त विषमता को समाप्त करना है, साथ ही, कामकाजी लोगों को एक उत्कृष्ट जीवन स्तर प्रदान करना है। इसलिए, भारतीय संविधान निजी संपत्ति को पूरी तरह से समाप्त करने के पक्ष में नहीं है, बल्कि इसे संतुलित करना चाहता है ताकि इसका उपयोग राष्ट्र के हित में किया जा सके, जिसमें ग़रीबों का उत्थान भी शामिल है। संपत्ति तथा उद्योगों के पूर्ण राष्ट्रीयकरण के बजाय, यह एक 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' की परिकल्पना करता है, साथ ही, इसका उद्देश्य सभी को 'समान अवसर' प्रदान करना एवं 'निहित स्वार्थों' को समाप्त करना है।

हालाँकि, कुछ लोगों द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि भारत अपने समाजवाद के मार्ग से विचलित हो रहा है। इस तर्क के पक्ष में निम्नलिखित कारणों को उद्धृत किया जाता है:

- नव-उदारवादी आर्थिक नीति का अपनाया जाना: उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नई आर्थिक नीति (1991) ने भारत के समाजवादी साख को कमज़ोर किया है।
- वर्ष 1991 के उपरांत, समाजवाद से दूर जाने और निजीकरण की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति रही है। कई सार्वजनिक उद्यमों में निजी व्यक्तियों एवं उद्योगों के पक्ष में विनिवेश किया गया है, साथ ही, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित कई क्षेत्रकों को निजी उद्यमियों के लिए खोल दिया गया है।
- 1990 के दशक के सुधारों के उपरांत हुई संवृद्धि के परिणामस्वरूप अंत:राज्यीय और अंतर-राज्यीय विषमताओं में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, इस संवृद्धि से किसी प्रकार का सार्थक रोजगार सृजन नहीं हुआ है (रोजगारविहीन संवृद्धि)।
- भारत व्यापक रूप से निर्धनता उन्मूलन में विफल रहा है।

हालांकि, इस तथ्य पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि सोवियत संघ एवं पूर्वी यूरोपीय राष्ट्रों में समाजवाद के पतन के पश्चात् ये विकास-क्रम विश्व के कई राष्ट्रों में दृष्टिगत हुए हैं। साथ ही, राज्य द्वारा भूमि अधिग्रहण किए जाने की स्थिति में निजी भूस्वामियों को क्षतिपूर्ति का भुगतान करने की संवैधानिक बाध्यता को 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा अनुच्छेद 31 को निरसित करके समाप्त कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, नव-उदारवादी आर्थिक मॉडल की सीमाओं को महसूस किया जा रहा है तथा समावेशी विकास के आदर्श को नीति-निर्माण की प्राथमिकता में पुनः जगह दी जा रही है।

1.5.3. पंथ-निरपेक्ष (Secular)

- भारत के संदर्भ में पंथ-निरपेक्ष का अभिप्राय है कि भारत किसी एक धर्म या धार्मिक विचारधारा से निर्देशित नहीं होता है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य (देश) किसी धर्म विशेष के विरुद्ध है। यह अपने सभी नागरिकों को किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। साथ ही, संविधान धार्मिक आधार पर किसी भी प्रकार के भेद-भाव पर भी रोक लगाता है। इस प्रकार, पंथनिरपेक्षता से आशय धर्म के आधार पर भेद-भाव का निषेध और सभी धर्मों के प्रति समान भाव से भी है।
- पंथनिरपेक्षता की पश्चिमी अवधारणा के अनुसार धर्म और राज्य (राष्ट्र) दोनों पृथक-पृथक हैं। इसके अनुसार धार्मिक संस्थानों एवं पदाधिकारियों का राज्य के प्राधिकारियों से पृथक्करण होना चाहिए।

- वर्ष 1974 में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यद्यपि 'पंथनिरपेक्ष राज्य' शब्द का स्पष्ट रूप से संविधान में उल्लेख नहीं किया गया है तथापि इसमें कोई संदेह नहीं है कि संविधान निर्माता इसी प्रकार के राज्य की स्थापना करना चाहते थे। इसलिए, संविधान में अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित अधिकारों को जोड़ा गया।
- कालांतर में पंथ-निरपेक्ष शब्द को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा उद्देशिका में जोड़ा गया।

पंथनिरपेक्षता के संबंध में संवैधानिक प्रावधान

- राष्ट्र का अपना कोई धर्म नहीं है।
- विधि के समक्ष सभी नागरिक समान हैं। अनुच्छेद 14, 15 और 27 राज्य की धर्मनिरपेक्ष प्रकृति को स्थापित करते हैं। अनुच्छेद 15 के तहत विशिष्ट निर्देश है कि राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के बीच भेदभाव नहीं करेगा। हालांकि सकारात्मक कार्रवाई की अनुमति है, लेकिन केवल धर्म के आधार पर नहीं।
- मूल अधिकार में वर्णित अनुच्छेद 25-28, सभी व्यक्तियों को अपने धर्म को मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता तथा सभी धर्मों के प्रति राज्य एवं उसके संस्थानों की ओर से किसी प्रकार के भेदभाव न करने का आश्वासन देते हैं।
- राज्य धर्म के अधीन होने के बजाय धर्म राज्य के अधीन है। इसका तात्पर्य यह भी है कि सामाजिक सुधारों के उद्देश्य से राज्य धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है।
- ऐतिहासिक रूप से विकसित भारतीय पंथनिरपेक्षता की एक अद्वितीय विशेषता यह है कि अल्पसंख्यकों को उनकी संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण के संबंध में विशेष सुरक्षा प्रदान की गई है।

1.5.4. लोकतंत्रात्मक (Democratic)

- संविधान की उद्देशिका में एक लोकतांत्रिक राजव्यवस्था की परिकल्पना की गई है, जहाँ सर्वोच्च शक्ति जनता में निहित है। लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक को अपने देश के शासन में भाग लेने का अधिकार है। लोकतंत्र जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन है।
- लोकतंत्र के दो प्रमुख प्रकार हैं- **प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष**। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में लोग अपनी राजनीतिक एवं प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से करते हैं, जैसे - स्विटज़रलैंड में। प्रत्यक्ष लोकतंत्र को **जनमत संग्रह (Referendum), इनिशिएटिव (Initiative), प्रत्यावर्तन या प्रत्याशी को वापस बुलाना (Recall)** तथा **प्लेबीसाइट (Plebiscite)** के माध्यम से सुनिश्चित किया जा सकता है। दूसरी ओर अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधि जनता की ओर से सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग करते हैं और सरकार चलाते हुए विधि निर्माण करते हैं। इस प्रकार के लोकतंत्र को प्रतिनिधि/प्रतिनिधित्वकारी लोकतंत्र भी कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है: **संसदीय और अध्यक्षीय।**
- भारतीय संविधान में **प्रतिनिधित्वकारी संसदीय लोकतंत्र** (Representative Parliamentary Democracy) की व्यवस्था है, जिसमें कार्यपालिका अपनी सभी नीतियों और कार्यों के लिए विधायिका के प्रति जवाबदेह होती है। वयस्क मताधिकार, सामयिक चुनाव, विधि की सर्वोच्चता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता व भेदभाव का अभाव भारतीय राजव्यवस्था में निहित लोकतांत्रिक लक्षणों को निर्दिष्ट करते हैं।
- संविधान की उद्देशिका में लोकतांत्रिक शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है, जिसमें न केवल राजनीतिक लोकतंत्र बल्कि सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र को भी शामिल किया गया है। लोकतंत्र के तहत केवल लोकतांत्रिक सरकार की ही कल्पना नहीं गई है बल्कि ऐसे समाज की भी परिकल्पना की गई है जिसमें विचारों का मुक्त आदान-प्रदान हो और प्रत्येक व्यक्ति की समाज में समान प्रतिष्ठा हो।

1.5.5. गणराज्य (Republic)

- गणराज्य से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जहाँ राजनीतिक संप्रभुता किसी एक व्यक्ति (जैसे- राजा) में केन्द्रित होने के स्थान पर जनता में निहित होती है और कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग विद्यमान नहीं होता है।
- प्रत्येक सार्वजनिक कार्यालय बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक नागरिक के लिए खुला होता है।
- गणतंत्र में राज्य प्रमुख को सदैव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एक निश्चित समय के लिए चुना जाता है (जैसे- अमेरिका अथवा भारत में)। भारत में राज्य के प्रमुख (राष्ट्रपति) को निर्वाचन द्वारा पद प्राप्त होता है, आनुवांशिकता के आधार पर नहीं। उसका चुनाव पांच वर्ष के लिए अप्रत्यक्ष रीति से किया जाता है।

1.5.6. न्याय (Justice)

- न्याय का सामान्य अर्थ एक ऐसी स्थिति से है जहाँ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं हो और सबको उनके उचित अधिकार प्राप्त हों। उद्देशिका में तीन प्रकार के न्याय की संकल्पना की गयी है: **सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक**। सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय के तत्वों को वर्ष **1917 की रूसी क्रांति** से ग्रहण किया गया है। इनकी सुरक्षा मूल अधिकार व नीति निदेशक तत्त्वों के विभिन्न उपबंधों द्वारा की जाती है।
- **सामाजिक न्याय** से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जहाँ जाति, मूलवंश, लिंग, जन्म स्थान, धर्म या भाषा आदि में से किसी भी आधार पर किसी के साथ भेद-भाव न किया जाए तथा समाज में सबको समान अवसर/स्थान प्राप्त हो। इसका अर्थ है समाज में किसी वर्ग विशेष के लिए विशेषाधिकारों की अनुपस्थिति और अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार किया जाना।
- **आर्थिक न्याय** का अर्थ है कि आर्थिक कारणों के आधार पर किसी भी व्यक्ति से भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसमें संपदा, आय व संपत्ति की असमानता को समाप्त करना भी शामिल है।
- **राजनीतिक न्याय** का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त होंगे। सभी नागरिकों को समान रूप से मतदान का, चुनाव लड़ने का तथा लोक पद धारण करने का अधिकार प्राप्त हो।

उद्देशिका में निहित **न्याय** शब्द के भाव से संबंधित **कुछ मूल अधिकार / नीति निदेशक तत्त्व / अन्य अनुच्छेद**

सामाजिक न्याय

अनुच्छेद 17: अस्पृश्यता/छुआछूत का अंत; भारतीय संसद ने अस्पृश्यता निषेध अधिनियम, 1955 अधिनियमित कर इसे दंडनीय अपराध घोषित किया है।

अनुच्छेद 18: उपाधियों का अंत किया गया है। राज्य, सैन्य और शैक्षिक क्षेत्र के अतिरिक्त कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा (भारत रत्न एवं पद्म अलंकरण, पाने वाले के नाम के आगे या पीछे प्रयोग नहीं किए जा सकते, इसलिए वे उपाधि नहीं हैं)।

अनुच्छेद 46: अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि।

राजनीतिक न्याय

अनुच्छेद 14-18 में दिए गए समता के अधिकार राजनीतिक न्याय के आधार हैं। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित अनुच्छेद राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करते हैं:

अनुच्छेद 38: राज्य, लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद 39: राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति निदेशक तत्त्व।

अनुच्छेद 39A: समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता।

अनुच्छेद 41: कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार।

1.5.7. स्वतंत्रता (Liberty)

- उद्देशिका में विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म व उपासना की **स्वतंत्रता** उल्लिखित है। इसका अभिप्राय यह है कि सभी नागरिकों को समान रूप से इच्छानुसार अपने धर्म का पालन करने और अपने विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता है और राज्य इन विषयों में तब तक हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि दूसरों की स्वतंत्रता अथवा अधिकार बाधित न हों।
- हालांकि स्वतंत्रता का अभिप्राय यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ भी करने का अधिकार मिल गया है। स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग संविधान में उल्लिखित सीमाओं के अंतर्गत ही किया जा सकता है। संक्षेप में कहा जाए तो उद्देशिका में प्रदत्त स्वतंत्रताएँ (एवं मूल अधिकार) निरपेक्ष नहीं हैं। उद्देशिका में उल्लिखित **स्वतंत्रता, समता** और **बंधुता** के आदर्शों को **फ्रांसीसी क्रांति (1789-1799 ई.)** से ग्रहण किया गया है।

उद्देशिका में निहित **स्वतंत्रता** शब्द के भाव से संबंधित **कुछ मूल अधिकार / नीति निदेशक तत्त्व/ अन्य अनुच्छेद**

अनुच्छेद 19: वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन की स्वतंत्रता, संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता, भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण की स्वतंत्रता, भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने की स्वतंत्रता तथा कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 25: अंत:करण एवं धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 26: धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 27: किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 28: कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता।

1.5.8. समता (Equality)

- समता का अभिप्राय है कि न्याय, कराधान, सार्वजनिक पद और नियोजन के संबंध में सभी के साथ एक समान व्यवहार किया जाना। इसके अंतर्गत, समाज के किसी भी वर्ग के लिए विशेषाधिकार का न होना भी शामिल है। हमारे संविधान में मूल अधिकारों से संबंधित **अनुच्छेद 14 - 18** के अंतर्गत इस सिद्धांत को प्रभावी बनाया गया है।
- भारतीय संविधान की उद्देशिका प्रत्येक नागरिक को प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्रदान करती है। इस उपबंध में समता के तीन आयाम शामिल हैं: **नागरिक, राजनीतिक** व **आर्थिक।**

मूल अधिकारों के तहत निम्नलिखित प्रावधान नागरिक समता को सुनिश्चित करते हैं:

अनुच्छेद 14 - 18

- विधि के समक्ष समता (अनुच्छेद-14)
- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद-15)
- लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद-16)
- अस्पृश्यता का अंत (अनुच्छेद-17)
- उपाधियों का अंत (अनुच्छेद-18)

संविधान में दो अन्य उपबंध हैं जो राजनीतिक समता को सुनिश्चित करते प्रतीत होते हैं:

- प्रथम; धर्म, जाति, लिंग अथवा वर्ग के आधार पर किसी व्यक्ति को मतदाता सूची में शामिल होने से अयोग्य न ठहराना **(अनुच्छेद-325);** तथा
- दूसरा; लोकसभा और विधानसभाओं के लिए वयस्क मतदान का प्रावधान **(अनुच्छेद-326)**।

आर्थिक समता के तहत राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व, महिला तथा पुरुष को जीवन यापन के लिए पर्याप्त साधन और समान काम के लिए समान वेतन के अधिकार को सुरक्षित करते हैं **(अनुच्छेद-39)।**

1.5.9. बंधुता (Fraternity)

- बंधुता का अर्थ है: भाईचारे की भावना। मूल कर्त्तव्य **(अनुच्छेद-51क)** में भी यह उल्लेख है कि "प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीय अथवा वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे होकर सौहार्द्र और आपसी भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित करेगा"।
- उद्देशिका में बंधुता के संबंध में निम्नलिखित दो बातों का उल्लेख है: (a) व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करना एवं (b) देश की एकता और अखंडता सुनिश्चित करना। इन्हीं कारणों से संविधान में अस्पृश्यता का निषेध **(अनुच्छेद 17)** किया गया है और ऐसे व्यवहार को अपराध घोषित किया गया है।

2. उद्देशिका, मूल अधिकार तथा राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों के मध्य पारस्परिक संबंध

उद्देशिका, मूल अधिकार तथा राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व, भारत के संविधान के अभिन्न अंग हैं।

- **उद्देशिका** संविधान का भाग है और इसलिए संशोधनीय भी है, किंतु इसमें उल्लिखित संविधान के मूल ढांचे में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता (केशवानंद भारती वाद, 1973)।
- संविधान के भाग-3 (अनुच्छेद 12-35) में प्रदत्त **मूल अधिकार** 'स्वतंत्रता तथा समानता' के संकल्प की व्यावहारिक प्राप्ति को सुनिश्चित करने वाले साधन हैं। ये न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय अधिकार हैं। ये प्रतिषेधकारी हैं तथा राज्य पर नकारात्मक दायित्व आरोपित करते हैं।
- संविधान के भाग-4 में दिए गए **राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व**, 'सामाजिक तथा आर्थिक न्याय' के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु राज्य के सकारात्मक कर्त्तव्य हैं। इनमें अन्तर्निहित सिद्धांत, राष्ट्र के शासन के मूलभूत सिद्धांत हैं। ये न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं। ये शासन, प्रशासन व विधायिका द्वारा सुनिश्चित किए जाने योग्य संवैधानिक अपेक्षाएं हैं।
- अतः उद्देशिका, मूल अधिकार तथा राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व एक ही संवैधानिक ढांचे के अभिन्न अंग हैं और समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

3. उद्देशिका से संबंधित हालिया विवाद

पृष्ठभूमि

- 26 नवंबर 2015 एवं 26 जनवरी 2016 (क्रमशः संविधान के **अंगीकृत** एवं **लागू** होने की 66वीं वर्षगाठ) को दो अलग-अलग सरकारी विज्ञापनों में **मूल उद्देशिका** का विज्ञापन प्रकाशित किया गया था।
- इस प्रकार उक्त विज्ञापन में 42वें संविधान संशोधन द्वारा उद्देशिका में जोड़े गए तीन शब्दों - समाजवादी, पंथनिरपेक्ष एवं अखंडता - को स्थान नहीं दिया गया।
- इसके बाद विभिन्न विपक्षी दलों एवं नागरिक समाज के कुछ कार्यकर्ताओं द्वारा सरकार के इस कदम की आलोचना की गयी।
- इसी दौरान केंद्र सरकार के एक मंत्री के इस बयान पर कि, "इस बात पर अब बहस होनी चाहिए कि, क्या 'समाजवादी' एवं 'पंथनिरपेक्ष' जैसे शब्दों का उद्देशिका में स्थान दिया जाना चाहिए अथवा नहीं।" यह विवाद सुर्ख़ियों में रहा था।

समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्दों को हटाने के पक्ष में तर्क

- **समाजवाद** शब्द का आशय है: "पूँजी, सम्पत्ति, भूमि आदि उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व एवं इनके वितरण में समानता"। यही कारण है कि संविधान निर्माताओं ने जान-बूझकर समाजवादी शब्द का प्रयोग उद्देशिका में नहीं किया था, क्योंकि वे देश को किसी विशिष्ट आर्थिक संरचना से संबद्ध नहीं करना चाहते थे।
- **पंथनिरपेक्ष** का आशय है: "धार्मिक अथवा आध्यात्मिक मामलों से राज्य का संबद्ध न होना एवं राज्य का संचालन किसी धार्मिक नियम से न होकर संविधान द्वारा होना। उद्देशिका के हिंदी रुपांतरण में अंग्रेजी के **सेक्युलर** शब्द के लिए अत्यधिक विचार-विमर्श के पश्चात् **धर्मनिरपेक्ष** के स्थान पर **पंथनिरपेक्ष** शब्द का प्रयोग किया गया है, क्योंकि हमारा संविधान एवं देश के विभिन्न कानून, राज्य से धर्म से निरपेक्ष न होकर पंथ से निरपेक्ष होने की अपेक्षा करते हैं।
- मूल उद्देशिका में 'भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक **न्याय** सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा गया है। इस प्रकार, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय वस्तुतः एक समाजवादी राज्य को ही निरुपित करते हैं। राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों (DPSPs) के अंतर्गत इन्हें (सामाजिक एवं आर्थिक न्याय) विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है, अतः ऐसे में उद्देशिका में निर्दिष्ट समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्द राजनीतिक उद्देश्यों को इंगित करते हैं।
- मूल उद्देशिका में "विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता**" का भी उल्लेख किया गया है। हम जानते हैं कि एक सेक्युलर राज्य में ही इन स्वतंत्रताओं की प्राप्ति संभव है। मूल अधिकार (FR) एवं DPSP के विभिन्न उपबंध इसकी रक्षा करते हैं।
- इन शब्दों को हटाये जाने के पीछे यह तर्क भी दिया जाता है कि, "03-01-1977 को 42वें संविधान संशोधन द्वारा समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्दों को उद्देशिका में समाविष्ट करने से पूर्व क्या भारत एक समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष राज्य नहीं था।"
- वर्ष 1991 के आर्थिक सुधारों एवं वैश्वीकरण के पश्चात्, सैद्धांतिक रूप में वर्तमान में समाजवाद शब्द लगभग अप्रासंगिक हो गया है और वर्ष 1991 के पश्चात् यह व्यवहार में कम ही परिलक्षित हुआ है।

समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्दों को न हटाने के पक्ष में तर्क

- समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष जैसे शब्द हमारे संविधान के आदर्श हैं और ये संपूर्ण संविधान में अंतर्निहित हैं। इन्हें हटाने से राष्ट्रीय एकता एवं बंधुता नकारात्मक रूप से प्रभावित होगी।
- पंथनिरपेक्ष शब्द को हटाने से देश में सांप्रदायिक विभाजन को बढ़ावा मिल सकता है।
- FR, DPSP, आरक्षण, विशेष वर्गों के लिए विशेष प्रावधान, पांचवीं एवं छठवीं अनुसूचियां आदि एक लोकतांत्रिक समाजवादी राज्य की परिकल्पना करते हैं। अतः उद्देशिका में समाजवादी शब्द इन्हें स्पष्टता प्रदान करता है। उच्चतम न्यायालय ने भी कहा है कि उद्देशिका संविधान की व्याख्या में सहायक है।
- 42वें संविधान संशोधन द्वारा समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष के अतिरिक्त **"अखंडता"** शब्द को भी समाविष्ट किया गया था। अत: क्या **अखंडता** शब्द को भी हटा दिया जाना चाहिए? इसका उत्तर है, नहीं, अपितु हमें इन्हें बनाए रखने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, न कि इनका राजनीतिकरण करना चाहिए।

आगे की राह

- उद्देशिका में उल्लिखित समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्दों पर बहस करने की बजाए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन, आवास, गरिमापूर्ण जीवन, रोजगार आदि पर बहस होनी चाहिए।

- समाजवादी शब्द को हटाने के बजाए इस पर बहस होनी चाहिए कि "सभी को वास्तविक समता की स्थिति" प्राप्त हो एवं समाज के शोषित वर्ग को गरिमापूर्ण जीवन एवं अधिकारविहीन वर्ग को अधिकार प्राप्त हों।
- उद्देशिका में उल्लिखित न्याय (सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक) शब्द पर बहस होनी चाहिए।
- अंततः यह कहा जा सकता है कि उद्देशिका में उल्लिखित ये शब्द संकीर्ण न होकर व्यापक अर्थ की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। अतः हमें इनका सम्मान करना चाहिए एवं इन आदर्शों को प्राप्त करने की ओर अग्रसर होना चाहिए।

4. उपसंहार

- उद्देशिका का लक्ष्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है जहां जनता संप्रभु हो; सरकार निर्वाचित हो और जनता के प्रति उत्तरदायी हो; शासन की सत्ता, जनता के मूल अधिकारों से सीमित हो तथा जनता को अपने विकास का समुचित अवसर प्राप्त हो।
- यद्यपि वैधानिक रूप से उद्देशिका न्यायालयों द्वारा लागू नहीं की जा सकती है तथापि यह संविधान के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या करने में उपयोगी सिद्ध हो सकती है तथा किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में यह पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करती है।

5. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions)

1. **उद्देशिका पर विवाद के आलोक में, इसकी प्रस्थिति और संशोधनीयता पर उभरे दृष्टिकोणों की विवेचना कीजिए। इस संदर्भ में, उस उद्देश्य पर चर्चा कीजिए जो सविंधान की उद्देशिका हमारी राजव्यवस्था को प्रदान करती है।**

दृष्टिकोण:

- संविधान की उद्देशिका के बारे में संक्षेप में चर्चा कीजिए।
- उच्चतम न्यायालय द्वारा विभिन्न मामलों में व्यक्त की गयी राय के आधार पर उद्देशिका की प्रस्थिति एवं उसकी संशोधनीयता के संबंध में चर्चा कीजिए।
- हाल ही के विवाद के संबंध में इस पर संक्षेप में चर्चा कीजिए।
- भारतीय राजव्यवस्था में संविधान की उद्देशिका में उल्लिखित उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

उत्तर:

उद्देशिका, संविधान के मूल दर्शन एवं आधारभूत मूल्यों को मूर्त रूप प्रदान करती है, जिन पर संविधान आधारित है। स्वतंत्रता पश्चात् उद्देशिका के संबंध में उत्पन्न विवादों में से एक विवाद यह था कि क्या यह संविधान का भाग है अथवा नहीं। न्यायपालिका ने विभिन्न मामलों में अलग-अलग व्याख्याएं की हैं। उदाहरणार्थ:

- बेरुबारी संघ मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि उद्देशिका, संविधान के विभिन्न प्रावधानों में निहित सामान्य उद्देश्यों को प्रदर्शित करती है, परन्तु उच्चतम न्यायालय ने इसे संविधान का भाग नहीं माना।
- केशवानन्द भारती मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व की राय को निरस्त कर दिया और यह माना कि उद्देशिका संविधान का भाग है।

उद्देशिका की संशोधनीयता

- केशवानन्द भारती मामले में, उच्चतम न्यायालय ने माना कि उद्देशिका को संशोधित किया जा सकता है किंतु शर्त यह है कि उस संशोधन द्वारा संविधान के मूल ढांचे में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

उद्देशिका को अभी तक **केवल एक बार** वर्ष 1976 में 42वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया है। इस संशोधन से उद्देशिका में तीन नए शब्दों - समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखंडता - को सम्मिलित किया गया।

हाल ही में, सरकार द्वारा पंथनिरपेक्ष एवं समाजवादी शब्दों को सम्मिलित न करने वाली मूल उद्देशिका का उल्लेख करने वाला विज्ञापन जारी किया गया। जिस कारण, उद्देशिका की प्रस्थिति के संबंध में विवाद उत्पन्न हो गया। इस विवाद को मुख्य रूप से वोट बैंक के साधन के रूप में पार्टियों के लिए राजनीतिक प्रचार का हथकण्डा माना जा सकता है। इसे निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है:

- उच्चतम न्यायालय की राय के अनुसार पंथनिरपेक्षता, भारतीय संविधान की मूल विशेषता है। अनुच्छेद 25 के तहत भारत को एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में स्थापित किया गया है। पंथनिरपेक्षता का तत्व मूल अधिकारों में निहित है न कि उद्देशिका में।
- चूँकि वर्तमान में अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र का प्रभुत्व है, अतः समाजवादी शब्द का महत्व अत्यंत कम हो गया है।

भारतीय राजव्यवस्था में उद्देशिका का महत्व:

- यह संविधान के मूल स्रोत अर्थात भारतीय जनता का प्रतीक है।
- उद्देशिका में उल्लिखित संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, गणराज्य आदि जैसे शब्द राज्य की प्रकृति को प्रदर्शित करते हैं।
- न्याय, स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व के आदर्श संविधान के उद्देश्य को प्रकट करते हैं।
- यह संविधान सभा के महान और उत्कृष्ट दर्शन को समाविष्ट करती है तथा संविधान निर्माताओं के स्वप्न और आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करती है। इस प्रकार यह न्यायाधीशों के लिए संविधान निर्माताओं के मनोभावों को समझने हेतु मार्गदर्शन का भी स्रोत है।

6. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions)

1. भारतीय संविधान की प्रमुख प्रतिबद्धताएँ क्या हैं जो इसकी उद्देशिका के रूप में सम्मिलित की गयी हैं?
2. भारत को गणतंत्र क्यों कहा जाता है?
3. संविधान की उद्देशिका का उद्देश्य उन मूलभूत मूल्यों और दर्शन को समाविष्ट करना है, जिन पर संविधान आधारित है। स्पष्ट कीजिए।
4. किसी संविधान में उद्देशिका का क्या महत्व है? भारतीय संविधान की उद्देशिका में प्रतिष्ठापित भारतीय राज्य-व्यवस्था के दर्शन को सुस्पष्ट कीजिए।

संघ और उसका राज्य क्षेत्र

विषय सूची

1. परिचय 123

1.1. परिसंघ बनाम संघ (Federation Vs Union) 123

1.2. भारत का राज्य क्षेत्र (Territory of India) 123

1.3. अनुच्छेद 2 : नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना 124

1.4. अनुच्छेद 3 : नए राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन 124

1.4.1. अनुच्छेद 4 125

1.5. भारतीय क्षेत्र के अध्यर्पण से संबंधित प्रावधान 125

1.6. राज्यों एवं संघशासित प्रदेशों का विकास 126

1.7. राज्यों के पुनर्गठन की मांग का इतिहास 127

1.7.1. राज्य पुनर्गठन हेतु गठित विभिन्न आयोग 127

1.7.2. भारत में नए राज्यों का उद्भव: कालानुक्रम 129

1.7.3. भारतीय संघ में सम्मिलित संघ शासित प्रदेश 130

1.8. राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित मुद्दे 131

1.9. राज्यों के नाम परिवर्तन से जुड़े मुद्दे 134

2. समकालीन मुद्दे 135

2.1. तेलंगाना मुद्दा 135

2.2. गोरखालैंड मुद्दा 136

2.3. अनुच्छेद 370 और 35A का निरसन (Removal of Article 370 And 35A) 138

3. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions) 141

4. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions) 143

1. परिचय

भारतीय संविधान के **भाग 1** के अंतर्गत **अनुच्छेद 1 से 4** तक संघ एवं उसके राज्य क्षेत्रों से संबंधित प्रावधानों की चर्चा की गयी है।

अनुच्छेद - 1 : संघ का नाम और राज्यक्षेत्र

- अनुच्छेद 1(1) - भारत, अर्थात् इंडिया, राज्यों का संघ होगा।
- अनुच्छेद 1(2) - राज्य और उनके राज्य क्षेत्र वे होंगे जो पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं।
- अनुच्छेद 1(3) - भारत के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट होंगे:
  (क) राज्यों के राज्यक्षेत्र;
  (ख) पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट संघ राज्य क्षेत्र; और
  (ग) ऐसे अन्य राज्य क्षेत्र जो अर्जित किए जाएँ।

1.1. परिसंघ बनाम संघ (Federation Vs Union)

- प्रारूप समिति द्वारा 'परिसंघ' शब्द के स्थान पर 'संघ' (यूनियन) शब्द को वरीयता देने के पीछे एक विशेष उद्देश्य निहित था। समिति का मानना था कि 'संघ' शब्द इस तथ्य को बेहतर तरीके से अभिव्यक्त कर सकता है कि (a) भारतीय संघ, प्रांतों के मध्य समझौते का परिणाम नहीं है और (b) कोई भी राज्य या राज्यों का समूह संघ से अलग होने के लिए स्वतंत्र नहीं है। इसके साथ ही कोई भी राज्य स्वेच्छा से, अपने राज्य की सीमा में परिवर्तन भी नहीं कर सकता है।
- इस प्रकार भारत एक संघ है तथा यह विभक्त नहीं हो सकता। हालांकि प्रशासनिक सुविधा के लिए देश को विभिन्न राज्यों में बाँटा जा सकता है, किन्तु देश एक अखंड इकाई है, जहाँ लोग एक ही स्रोत से व्युत्पन्न, एकल सत्ता के तहत रह रहे हैं।

1.2. भारत का राज्य क्षेत्र (Territory of India)

- राज्यों एवं संघ शासित प्रदेशों के नाम एवं उनके क्षेत्र विस्तार को संविधान की पहली अनुसूची में दर्शाया गया है। वर्तमान में, भारत में 28 राज्य एवं 9 केन्द्रशासित प्रदेश हैं।
- उल्लेखनीय है कि भारत का राज्य क्षेत्र (Territory of India), यूनियन ऑफ़ इंडिया से अधिक व्यापक अर्थ समेटे हुआ है। जहाँ 'यूनियन ऑफ़ इंडिया' में केवल राज्य सम्मिलित हैं, वहीं 'भारत के राज्य क्षेत्र' में न केवल राज्य अपितु संघ शासित प्रदेश एवं वे क्षेत्र, जिन्हें केंद्र सरकार द्वारा भविष्य में कभी भी अधिगृहीत किया जा सकता है, भी सम्मिलित हैं।
- संघीय व्यवस्था में राज्य इसके सदस्य हैं और केंद्र के साथ शक्तियों के विभाजन में हिस्सेदार हैं। दूसरी तरफ, संघ शासित प्रदेश एवं केंद्र द्वारा अधिगृहीत क्षेत्र सीधे केंद्र सरकार द्वारा प्रशासित होते हैं।

अधिगृहीत क्षेत्र (Acquired Territory)

- किसी क्षेत्र को तब **अधिगृहीत क्षेत्र** कहा जाता है जब भारतीय संघ अंतर्राष्ट्रीय कानूनों द्वारा मान्यता प्राप्त पद्धति के तहत उस क्षेत्र पर संप्रभुता अर्जित कर ले। अर्जन द्वारा, युद्ध में जीत कर, किसी संधि के अनुसरण में, अध्यर्पण (Cession) द्वारा या स्वामीविहीन क्षेत्र पर कब्ज़ा करके ऐसा किया जा सकता है।
- यदि किसी सार्वजनिक अधिसूचना, दावे या घोषणा के द्वारा भारत सरकार किसी क्षेत्र को भारत का अभिन्न अंग घोषित करती या मानती है, तब न्यायालय के लिए ऐसे **'अधिग्रहण'** को मान्यता प्रदान करना अनिवार्य हो जाएगा, जिसके परिणामस्वरूप यह क्षेत्र अनुच्छेद 1(3)(C) के तहत संघ के राज्य क्षेत्र का हिस्सा होगा।

1.3. अनुच्छेद 2 : नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना

संसद, विधि द्वारा, ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो वह ठीक समझे, संघ में नए राज्यों का प्रवेश या उनकी स्थापना कर सकेगी (अनुच्छेद 2)।

इस प्रकार अनुच्छेद 2 संसद को निम्नलिखित दो शक्तियां प्रदान करता है:

(i) नए राज्यों को संघ में सम्मिलित करने की शक्ति; और

(ii) नए राज्यों की स्थापना करने की शक्ति।

- पहली शक्ति उन राज्यों के प्रवेश से संबंधित है जो पहले से अस्तित्व में हैं, जबकि दूसरी शक्ति नए राज्यों, जो अस्तित्व में नहीं हैं, की स्थापना से संबंधित है, अर्थात् अनुच्छेद 2 उन राज्यों, जो **भारतीय संघ का हिस्सा नहीं** हैं, के प्रवेश और स्थापना से संबंधित है।
- इसके अतिरिक्त, यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनुच्छेद 2 संसद को पूर्ण शक्ति देता है कि ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो **"वह ठीक समझे" (it thinks fit),** संघ में नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना करे। परन्तु, ये निबंधन और शर्तें, अनिवार्यत: संविधान के आधारभूत सिद्धांत या मूल ढाँचे के अनुरूप होने चाहिए। संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो 'एक नए राज्य' को संघ में प्रवेश या स्थापना के पश्चात्, पहले से विद्यमान राज्य के समान दर्जे का अधिकार प्रदान करे।

1.4. अनुच्छेद 3 : नए राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन

संसद, विधि, द्वारा -

(i) किसी राज्य में से उसका राज्य क्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्य क्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकेगी;

(ii) किसी राज्य के क्षेत्र को बढ़ा सकेगी;

(iii) किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी;

(iv) किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी; और

(v) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी।

अनुच्छेद 3 के अंतर्गत पुरःस्थापित किसी विधेयक को निम्नलिखित दो शर्तों का पालन करना अनिवार्य है:

(i) ऐसे विधेयक को राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना, दोनों में से किसी भी सदन में, पुरःस्थापित नहीं किया जा सकता है।

(ii) यदि किसी विधेयक में अंतर्विष्ट प्रस्थापना का प्रभाव राज्यों में से किसी के क्षेत्र, सीमाओं या नाम पर पड़ता है तो राष्ट्रपति द्वारा उक्त विधेयक को, प्रभावित राज्य के विधान-मंडल के विचार जानने के लिए विनिर्दिष्ट किया जाएगा।

- राष्ट्रपति वह अवधि तय कर सकता है जिसके भीतर राज्य विधान-मंडल को अपना विचार व्यक्त करना होता है। इस विनिर्दिष्ट अवधि या अन्य किसी अवधि (जिसकी राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदान की गई हो) के भीतर राज्य विधान-मंडल के विचार प्राप्त न होने की स्थिति में भी विधेयक को पुरःस्थापित किया जा सकता है।
- संसद (या राष्ट्रपति), राज्य विधान-मंडल के विचार को स्वीकार करने या उनके अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य नहीं है और संसद इसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है, भले ही यह विचार तय समय-सीमा के भीतर प्राप्त हो गया हो। यदि पूर्व में पुरःस्थापित विधेयक में संसद

द्वारा संशोधन किया जाता है तो प्रत्येक बार राज्य विधान-मंडल के लिए नया सन्दर्भ बनाना (अर्थात् राज्य विधान-मंडल को इसे पुन: वापस भेजना) आवश्यक नहीं है।

- अनुच्छेद 3, संसद को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह नए राज्यों के निर्माण, वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नाम में परिवर्तन के संबंध में बिना राज्यों की अनुमति से कदम उठा सकती है। यह भारतीय संघीय प्रणाली को अन्य परंपरागत संघात्मक प्रणाली से पृथक करती है। दूसरे शब्दों में, संसद अपने अनुसार भारत के राजनीतिक मानचित्र का पुनर्निर्धारण कर सकती है। इस प्रकार संविधान द्वारा क्षेत्रीय अखंडता या राज्य के अविभाज्य अस्तित्व की गारंटी नहीं दी गयी है। अतः भारत को **'विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ' (an indestructible Union of destructible states)** कहना सही है।

- उल्लेखनीय है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की परिसंघीय प्रणाली (फ़ेडरल सिस्टम) स्वतंत्र राज्यों के मध्य समझौते का परिणाम है। अमेरिका में परिसंघीय सरकार नए राज्यों का निर्माण या उनकी सीमाओं में परिवर्तन, संबंधित राज्यों की अनुमति के बिना नहीं कर सकती है। इसलिए अमेरिका को **'अविनाशी राज्यों का अविनाशी संघ' (an indestructible Union of indestructible States)** कहा जाता है।
- भारतीय संदर्भ में डी. डी. बसु के अनुसार भारतीय संसद को इस तरह की उदार शक्तियां दिए जाने के पीछे प्रमुख तर्क यह है कि भारत सरकार अधिनियम के अधीन प्रांतों का समूहीकरण ऐतिहासिक और राजनीतिक कारकों के आधार पर था, न कि स्वयं लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी विभाजन के आधार पर। संविधान के निर्माण के समय प्रांतों के प्राकृतिक संरेखण के अनुसार उनके पुनर्गठन का प्रश्न उत्पन्न हुआ था लेकिन उस समय समस्या की जटिलता को देखते हुए इस विशाल कार्य का उत्तरदायित्व नहीं लिया जा सका।
- ऐसे कई उदाहरण हैं जहां राज्य विधान-मंडलों ने नए राज्यों के गठन के लिए प्रस्ताव पारित किए हैं। लेकिन संवैधानिक रूप से कोई राज्य, नए राज्य के निर्माण इत्यादि की प्रक्रिया की शुरुआत नहीं कर सकता है। इसकी शुरूआत केंद्रीय मंत्रिपरिषद की सलाह से राष्ट्रपति की पूर्वानुमति द्वारा ऐसे विधेयक को संसद में पुरःस्थापित करने से होती है। नवंबर, 2011 में उत्तर प्रदेश विधानसभा द्वारा राज्य को चार भागों - पूर्वांचल, पश्चिम प्रदेश, अवध प्रदेश और बुंदेलखंड - में विभाजित करने का प्रस्ताव पारित किया गया, जिसका केवल सांकेतिक मूल्य था जबकि संवैधानिक रूप से इसका कोई महत्व नहीं था।

1.4.1. अनुच्छेद 4

- पहली और चौथी अनुसूची के संशोधन तथा इस संदर्भ में अनुपूरक, आनुषंगिक और पारिणामिक विषयों का उपबंध करने के लिए अनुच्छेद 2 और अनुच्छेद 3 के अधीन बनायी गयी विधियों को अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन नहीं माना जाएगा। इसका अर्थ यह है कि ऐसी विधियाँ साधारण बहुमत एवं साधारण विधायी प्रक्रिया के माध्यम से पारित की जा सकती हैं।

1.5. भारतीय क्षेत्र के अध्यर्पण से संबंधित प्रावधान

- क्या किसी भारतीय क्षेत्र के अध्यर्पण (किसी भारतीय क्षेत्र को किसी अन्य देश को देना) के लिए संविधान संशोधन की आवश्यकता है? यह प्रश्न वर्ष 1960 में, राष्ट्रपति द्वारा एक परामर्श के रूप में उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। केंद्र सरकार द्वारा वर्ष 1958 के नेहरु-नून समझौते के क्रियान्वयन हेतु **बेरुबारी संघ** (पश्चिम बंगाल) पाकिस्तान को हस्तांतरित कर दिया गया जिसने राजनीतिक हलचल और वाद-विवाद को जन्म दिया। इसी आलोक में राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय से यह परामर्श लेना पड़ा।

- उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि किसी राज्य के राज्यक्षेत्र को घटाने की शक्ति के संदर्भ में अनुच्छेद 3 संसद को किसी भारतीय क्षेत्र को किसी अन्य देश को अध्यर्पित करने (सौंपने) की शक्ति **नहीं** देता है। चूँकि, समझौते के कार्यान्वयन से देश के क्षेत्रफल में कमी होगी, अतः संविधान के अनुच्छेद 1 तथा साथ ही साथ पहली अनुसूची के कुछ आवश्यक प्रावधानों में संशोधन करना अनिवार्य होगा। इस प्रकार, केवल अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन के माध्यम से ही किसी भारतीय क्षेत्र को किसी अन्य देश को अध्यार्पित किया जा सकता है। परिणामस्वरूप, उक्त क्षेत्र को पाकिस्तान को हस्तांतरित करने के लिए **9वाँ संविधान संशोधन अधिनियम** पारित किया गया।
- वर्ष 2011 में भारत एवं बांग्लादेश ने दोनों राष्ट्रों के मध्य वर्ष 1974 में संपन्न भूमि सीमा समझौते (Land Boundary Agreement: LBA) के तहत विदेशी अंतः क्षेत्रों (enclaves) के परस्पर आदान-प्रदान के लिए एक प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते के तहत 111 भारतीय एन्क्लेव बांग्लादेश को तथा 51 बांग्लादेशी एन्क्लेवों को भारत को हस्तांतरित करने की परिकल्पना की गई। हालांकि, इस हेतु संसद के अनुसमर्थन की आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए 119वां संविधान संशोधन विधेयक, 2013 पुरःस्थापित किया गया था तथा जिसे वर्ष 2015 में पारित किया गया। इस विधेयक को दोनों सदनों एवं राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति मिलने के पश्चात् **100वां संविधान संशोधन** के रूप में उल्लिखित किया गया है। LBA को प्रभावी बनाने के लिए इस विधेयक के माध्यम से संविधान की प्रथम अनुसूची को संशोधित किया गया। यह विधेयक प्रथम अनुसूची में असम, पश्चिम बंगाल, मेघालय और त्रिपुरा के क्षेत्रों से संबंधित परिच्छेदों में संशोधन करती है।
- दूसरी ओर, वर्ष 1969 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि भारत और किसी अन्य देश के मध्य **सीमा-विवाद के निपटारे के लिए** संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता नहीं है। यह कार्यपालिका कार्यवाही (executive action) के माध्यम से किया जा सकता है, यदि इसके द्वारा किसी दूसरे राष्ट्र को भारतीय क्षेत्र का अध्यर्पण नहीं किया जाता है।
- **कच्चातिवु द्वीप:** भारत और श्रीलंका के मध्य वर्ष 1974 और वर्ष 1976 में हुई संधियों के माध्यम से भारत ने कच्चातिवु द्वीप श्रीलंका को अध्यर्पित कर दिया। बेरुबारी मामले में दिए गए निर्देश के अनुसार किसी भारतीय भू-भाग का किसी अन्य देश को हस्तान्तरण केवल संवैधानिक संशोधन के माध्यम से किया जा सकता है। श्रीलंका को कच्चातिवु द्वीप के हस्तांतरण को उच्चतम न्यायालय द्वारा स्थापित प्रक्रिया और निर्देश का उल्लंघन मानते हुए वर्ष 2012 में उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गयी थी। यह मामला न्यायालय के समक्ष अभी भी लंबित है।

1.6. राज्यों एवं संघशासित प्रदेशों का विकास

- स्वतंत्रता के पश्चात्, भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन राष्ट्रीय समेकन और एकीकरण का एक मुख्य पक्ष बन गया। देसी रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया के साथ उन प्रांतों, जिनकी सीमाओं का निर्धारण अंग्रेजों द्वारा अतार्किक रूप से किया गया था, को एकीकृत करने का कार्य अत्यंत श्रमसाध्य था। हालांकि इस प्रक्रिया ने अंततः स्वातंत्रोत्तर भारत की विविधता को बढ़ाया। ब्रिटिश भारत में प्रांत दो प्रकार के थे:
    - गवर्नर-जनरल के प्रति उत्तरदायी ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा प्रत्यक्षतः शासित प्रांत, एवं
    - स्थानीय वंशानुगत शासकों के अधीन देसी रियासतें, जिनके सन्दर्भ में ब्रिटिश सरकार संप्रभु तो थी किन्तु संधि के आधार पर उन्हें स्वायत्तता प्रदान की गयी थी।

- 15 अगस्त 1947 को जब भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की तो ब्रिटिश सरकार ने उन 600 से अधिक रियासतों के साथ अपने संधि आधारित संबंधों को समाप्त कर दिया जिनके पास भारत या पाकिस्तान में से किसी एक में विलय का विकल्प था। अधिकांश रियासतें या तो स्वेच्छा से या सशस्त्र हस्तक्षेप के माध्यम से भारत में सम्मिलित हुईं।
- 1947-1950 की अवधि के दौरान, इन प्रांतों को राजनीतिक रूप से भारतीय संघ में या तो संलग्न प्रांतों के साथ विलय द्वारा या नए प्रांतों के रूप में इनके गठन द्वारा एकीकृत किया गया। 26 जनवरी 1950 को जब भारतीय संविधान अस्तित्व में आया तो उस समय भारतीय संघ की घटक इकाइयों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया गया था:
  - **श्रेणी-A** के राज्यों में तत्कालीन गवर्नर के अधीन शासित प्रांत सम्मिलित थे। इस श्रेणी में असम, बिहार, बॉम्बे, मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल सम्मिलित थे।
  - **श्रेणी-B** के राज्यों में पूर्व की रियासतें या रियासतों के समूह सम्मिलित थे, जो राजप्रमुख द्वारा शासित थे। यह राजप्रमुख प्रायः कोई पूर्व राजकुमार होता था तथा यहाँ निर्वाचित विधायिकाएँ थीं। राजप्रमुख को भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता था। इस श्रेणी में शामिल राज्य थे - हैदराबाद, जम्मू एवं कश्मीर, मध्य भारत, मैसूर, पटियाला एंड ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन (PEPSU), राजस्थान, सौराष्ट्र, त्रावणकोर-कोचीन और विंध्य प्रदेश।
  - **श्रेणी-C** के 10 राज्यों में पूर्व मुख्य आयुक्त के शासनाधीन प्रांत थे और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह को छोड़कर कुछ रियासतें शामिल थीं। इसमें सम्मिलित राज्यों में अजमेर, भोपाल, बिलासपुर, कूच-बिहार, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, कच्छ, मणिपुर और त्रिपुरा थे।
  - **श्रेणी-D** में केवल अंडमान और निकोबार द्वीप समूह शामिल था जिसे लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा प्रशासित किया जाता था।

1.7. राज्यों के पुनर्गठन की मांग का इतिहास

- भारत में अंग्रेजों का विजय अभियान लगभग 100 वर्षों से अधिक समय तक चला जिसके परिणामस्वरूप राज्यों की आतंरिक सीमाएँ अव्यवस्थित एवं अतार्किक ढंग से निर्मित हुईं। इन राज्यों के गठन में भाषाई और सांस्कृतिक एकजुटता का ध्यान नहीं रखा गया जिसके चलते ये बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक चरित्र वाले राज्य बन गए।
- भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग निरंतर बनी हुई है। यह स्वतंत्रता प्राप्ति से बहुत पहले से उठती रही है। लगभग एक सदी के प्रयासों के बाद ब्रिटिश शासन में ही सर्वप्रथम भाषाई आधार पर वर्ष 1936 में उड़ीसा प्रांत का गठन हुआ। इसमें मधुसूदन दास की प्रमुख भूमिका थी।
- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी स्वतंत्रता के पूर्व इस आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग को उचित माना। वर्ष 1917 में ही कांग्रेस की राज्य इकाइयों को भाषायी आधार पर संरचित करने का निर्णय लिया गया। वर्ष 1946 के चुनाव में कांग्रेस के चुनावी घोषणापत्र में भी इसे स्थान दिया गया।
- किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत विभाजन के कटु अनुभव के कारण, भाषाई जैसे किसी भी आधार पर राज्यों के गठन को विभाजनकारी तत्वों के इरादों को बढ़ावा देने वाला माना गया और इसे संशयात्मक दृष्टि से देखा जाने लगा।

1.7.1. राज्य पुनर्गठन हेतु गठित विभिन्न आयोग

- नए राज्यों के गठन हेतु सभी वर्गों की ओर से निरंतर उठने वाली मांगों के चलते, वर्ष 1948 में भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष द्वारा भारत में राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न पर विचार करने के

लिए **एस. के. धर** की अध्यक्षता में एक **भाषाई प्रांत आयोग (धर आयोग)** का गठन किया गया। अपनी रिपोर्ट में आयोग ने सिफारिश की कि राज्यों का पुनर्गठन भाषाई आधार के स्थान पर प्रशासनिक सुविधा के आधार पर ही होना चाहिए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने वर्ष 1949 के अपने जयपुर अधिवेशन में धर आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए एक उच्चस्तरीय भाषाई राज्य समिति का गठन किया, जिसमें **जवाहर लाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल** तथा **पट्टाभि सीतारमैया** शामिल थे। इसे **JVP समिति** कहा गया। इस समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में राज्यों के भाषायी पुनर्गठन के प्रस्ताव के साथ आगे बढ़ने में अत्यंत सावधानी बरतने की सलाह दी।

- हालाँकि, वर्ष 1952 तक भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग काफ़ी मज़बूत हो चुकी थी। अक्टूबर 1953 में भारत सरकार को भाषा के आधार पर प्रथम राज्य का गठन करने के लिए मजबूर होना पड़ा और मद्रास से 16 तेलगू भाषी जिलों को पृथक कर (जिसमें तटीय आंध्र एवं रायलसीमा क्षेत्र सम्मिलित थे) एक नया राज्य आंध्र प्रदेश निर्मित किया गया। इस दौरान 56 दिनों की भूख हड़ताल के बाद कांग्रेस कार्यकर्ता पोट्टी श्रीरामुलू की मृत्यु हो गयी थी। (श्रीरामुलू गाँधीवादी स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने दलित उत्थान के लिए उल्लेखनीय कार्य किया था और नमक सत्याग्रह में भी भाग लिया था)।
- इसके पश्चात, जवाहर लाल नेहरू ने पूरे मामले की जांच करने के लिए, **फजल अली** की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय **राज्य पुनर्गठन आयोग (1953)** की नियुक्ति की। आयोग के अन्य दो सदस्य **के. एम. पणिक्कर** और **एच. एन. कुंजरू** थे। वर्ष **1955** में आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। आयोग ने राज्यों के पुनर्गठन हेतु प्रशासनिक तथा आर्थिक कारकों को ध्यान में रखा, साथ ही भाषाई सिद्धांत को भी स्वीकार करते हुए भाषा को एक प्रमुख आधार के रूप में माना।
- राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा किसी राज्य के गठन के लिए किसी क्षेत्र की मांग स्वीकार करने के लिए निम्नलिखित चार मापदंड निर्धारित किए गए:
    - भाषाई और सांस्कृतिक एकता के आधार पर राज्यों को निर्मित किया जाना चाहिए;
    - राज्यों का गठन इस प्रकार हो जिससे राष्ट्रीय एकता की रक्षा तथा उसे मजबूत बनाया जा सके;
    - नए राज्यों का गठन वित्तीय, प्रशासनिक और आर्थिक व्यवहार्यता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए; तथा
    - राज्यों का गठन इस प्रकार हो जिससे पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन की प्रक्रिया में सहायता मिले।
- नवंबर 1956 में संसद द्वारा राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा चौदह राज्यों और छह केन्द्र प्रशासित प्रदेशों का निर्माण किया गया। साथ ही, **सातवें संविधान संशोधन अधिनियम** द्वारा पूर्व में राज्यों की चार श्रेणियों (A, B, C और D) में हुए वर्गीकरण को राज्यों के एकल वर्ग से प्रतिस्थापित कर दिया गया।
- वर्ष 1950 में भारतीय संघ के समेकन के बाद से मौजूदा राज्य की सीमाओं के पुनर्गठन को मोटे तौर पर पुनर्गठन के निम्नलिखित चार व्यापक चरणों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है:
    - पहला प्रमुख पुनर्गठन, सुगठित भाषायी प्रांतों के निर्माण के लिए एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन के बाद वर्ष 1956 में हुआ। कश्मीर को पहले से ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के द्वारा, इसे दी गई विशेष स्थिति के आधार पर, संघ में शामिल कर लिया गया था।
    - दूसरी बड़ी पहल 1970 के दशक में हुई, जब पूर्वोत्तर भारत में नए राज्यों का गठन किया गया। वर्ष 1963 में नागालैंड की स्थापना के बाद कुछ नए राज्यों का गठन हुआ।

- तीसरे चरण में भारत के उत्तरी प्रांतों में झारखंड, उत्तरांखंड और छत्तीसगढ़ की स्थापना की गयी। वर्ष 2014 में तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश राज्य से अलग होकर बना भारत का नवीनतम राज्य है।
- हाल ही में, संसद द्वारा **जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019** (Jammu and Kashmir Reorganization Act, 2019) को पारित कर जम्मू और कश्मीर को दो संघ शासित प्रदेशों में विभाजित कर दिया गया है, यथा- जम्मू और कश्मीर डिवीज़न (विधानसभा युक्त) तथा लद्दाख (विधानसभा रहित)।

1950 के दशक के दौरान हुए भाषाई पुनर्गठन ने राजनीतिक और प्रशासनिक इकाइयों में सांस्कृतिक पहचान को सम्मिलित करने में प्रमुख योगदान दिया। भारतीय लोकतंत्र द्वारा प्रारंभ से ही जनता के एक बड़े वर्ग की आकांक्षाओं का सम्मान किया गया और भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन करके, राष्ट्रीय नेतृत्व ने एक ऐसी प्रमुख शिकायतों का समाधान किया जो विभाजनकारी प्रवृत्तियों को उकसाने में समर्थ थीं।

पुनर्गठन का प्रत्येक चरण केंद्र तथा संघीय इकाइयों के मध्य राजनीतिक शक्ति के संतुलन पर आधारित था। राज्यों के पुनर्गठन ने गंभीरता से राष्ट्र की एकता को कमजोर किए बिना भारत के राजनीतिक मानचित्र को युक्तिसंगत बनाया है। इसलिए राज्यों के पुनर्गठन को **'सर्वश्रेष्ठ तरीके से प्राप्य राष्ट्रीय एकता'** के लिए आधार तैयार करने वाला कारक माना जाता है।

1.7.2. भारत में नए राज्यों का उद्भव: कालानुक्रम

आंध्र प्रदेश	मद्रास राज्य से कुछ क्षेत्रों को पृथक कर, आंध्र राज्य अधिनियम (1953) द्वारा इस राज्य का गठन किया गया। आरंभ में इसकी राजधानी कुर्नूल थी और उच्च न्यायालय गुंटूर में स्थापित किया गया था।
केरल	राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा केरल राज्य का गठन किया गया। इसमें त्रावणकोर और कोचीन क्षेत्र सम्मिलित किए गए।
कर्नाटक	राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा मैसूर रियासत से इसका सृजन किया गया। वर्ष 1973 में मैसूर का नया नाम कर्नाटक रखा गया।
गुजरात और महाराष्ट्र	बॉम्बे (पुनर्गठन) अधिनियम, 1960 द्वारा बॉम्बे राज्य को दो राज्यों अर्थात् महाराष्ट्र और गुजरात में विभक्त किया गया।
नागालैंड	इसका गठन नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962 द्वारा असम राज्य से इसे पृथक कर किया गया था।
हरियाणा	पंजाब (पुनर्गठन) अधिनियम, 1966 द्वारा पंजाब राज्य से इसे पृथक कर गठन किया गया था।
हिमाचल प्रदेश	संघ शासित प्रदेश हिमाचल प्रदेश को हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970 द्वारा पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।

मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा	इसे सर्वप्रथम 22वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1969 द्वारा असम राज्य के भीतर एक 'उप-राज्य' या 'स्वायत्त राज्य' के रूप में पृथक किया गया। तत्पश्चात् वर्ष 1971 में, उत्तर पूर्वी क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971 द्वारा मेघालय को एक पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971 द्वारा दोनों केंद्र शासित प्रदेशों मणिपुर एवं त्रिपुरा को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। मिज़ोरम और अरुणाचल प्रदेश (मूलत: इसे नार्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी - NEFA के नाम से जाना जाता था) नामक दो केंद्र शासित प्रदेश भी अस्तित्व में आए।
सिक्किम	पहले सिक्किम को 35वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1974 द्वारा सम्बद्ध राज्य (Associate State) का दर्जा दिया गया था, जब यह 'चोग्याल' शासन के अधीन था। वर्ष 1975 में 36वें संशोधन अधिनियम, 1975 द्वारा इसे एक पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ।
मिज़ोरम	मिज़ोरम राज्य अधिनियम, 1986 द्वारा इसे एक पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।
अरुणाचल प्रदेश	इसे अरुणाचल प्रदेश अधिनियम, 1986 द्वारा एक पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ।
गोवा	गोवा, दमन और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 द्वारा केंद्र शासित प्रदेश गोवा, दमन और दीव से पृथक कर गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया था, परन्तु दमन और दीव को केंद्र शासित प्रदेश ही रखा गया।
छत्तीसगढ़	1 नवंबर 2000 को मध्य प्रदेश को विभक्त कर इसका गठन किया गया।
उत्तराखंड	9 नवंबर 2000 को उत्तर प्रदेश को विभक्त कर इसका गठन किया गया।
झारखंड	15 नवंबर 2000 को बिहार को विभक्त कर इसका गठन किया गया।
तेलंगाना	2 जून 2014 को आंध्र प्रदेश को विभक्त कर इसका गठन किया गया।

1.7.3. भारतीय संघ में सम्मिलित संघ शासित प्रदेश

- वर्ष 1987 के बाद से संघ शासित प्रदेशों की कुल संख्या सात थी। ये हैं- दिल्ली, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दादरा और नगर हवेली, लक्षद्वीप, दमन और दीव, पांडिचेरी तथा चंडीगढ़।

- वर्तमान में संघ शासित प्रदेशों की कुल संख्या 9 है (जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख दो नवीन संघ शासित प्रदेश हैं)।

- संसद ने पांडिचेरी संघ शासित प्रदेश के लिए अनुच्छेद 239A के तहत एक कानून बनाकर अर्थात् पांडिचेरी (प्रशासन) अधिनियम, 1962 द्वारा विधायिका आदि के लिए प्रावधान किया।
- दिल्ली में विधायिका और मंत्रालय की स्थापना के लिए वर्ष 1992 में संविधान संशोधन द्वारा दो नए अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 239AA एवं 239AB जोड़े गए। अनुच्छेद 239AA द्वारा इसे दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCR) के रूप में नामित किया गया।
- शेष संघ शासित प्रदेश, केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र हैं तथा राष्ट्रपति, अपने द्वारा नियुक्त 'प्रशासक' के माध्यम से और इन प्रदेशों में सुशासन के लिए विनियम के आदेश जारी कर प्रशासन करते हैं। **(अनुच्छेद 239-240)।**

पुदुचेरी (पांडिचेरी) का अधिग्रहण एवं भारत संघ में प्रवेश

- यह क्षेत्र पूर्व फ्रांसीसी उपनिवेश था। वर्ष 1956 में भारत और फ्रांस के मध्य एक अध्यर्पण संधि पर हस्ताक्षर हुआ। वर्ष 1962 तक, जब फ्रांसीसी संसद ने समझौते की पुष्टि की, तब तक इसे 'अधिगृहीत क्षेत्र' का दर्जा दिया गया था। अंततः वर्ष 1962 में भारत और फ्रांस के द्वारा अनुसमर्थन प्रपत्रों का आदान-प्रदान किया गया। इसके तहत फ्रांस ने उसके द्वारा अधिकृत क्षेत्रों की पूर्ण संप्रभुता भारत को सौंप दी। तत्पश्चात् इसे संघ शासित प्रदेश का दर्जा प्रदान किया गया।
- इसके अतिरिक्त वर्ष 2006 में, संसद ने इस संघ शासित प्रदेश के लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप पांडिचेरी केंद्र शासित प्रदेश का नाम परिवर्तित कर पुदुचेरी करने के लिए एक विधेयक पारित किया। पुदुचेरी में चार क्षेत्र अर्थात् पुदुचेरी, कराईकल, माहे और यनम सम्मिलित हैं।

सिक्किम का भारत संघ के साथ एकीकरण

- सिक्किम मूलतः भारत का एक संरक्षित राज्य था। वर्ष 1974 में इसे संविधान में संशोधन (35वां संशोधन अधिनियम) द्वारा भारतीय संघ के एक 'सम्बद्ध राज्य' (Associate state) का दर्जा दिया गया था। वर्ष 1975 में सिक्किम विधानसभा में चोग्याल (शाही) शासन को समाप्त करने और सिक्किम को भारत के एक संघटक क्षेत्र के रूप में घोषित करने के प्रस्ताव को स्वीकृत किया गया।
- एक सामान्य जनमत संग्रह द्वारा इस राज्य के भारतीय संघ के साथ एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया गया। परिणामस्वरूप संसद द्वारा वर्ष 1975 में 36वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया और सिक्किम, भारतीय संघ का 22वां राज्य बन गया।

संरक्षित राज्य (Protectorate)

अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत एक संरक्षित राज्य वह राजनीतिक इकाई है जो औपचारिक रूप से संधि द्वारा किसी अन्य सुदृढ़ राज्य जिसे संरक्षक (protector) राज्य कहा जाता है, से संबंध स्थापित करती है। यह सुदृढ़ संरक्षक राज्य किसी तीसरे पक्ष से उक्त संरक्षित राज्य की रक्षा (कूटनीतिक या सैन्य) करने के लिए सहमत होता है। इसके बदले में संरक्षित राज्य सामान्यतः निर्दिष्ट दायित्वों को स्वीकार करता है।

1.8. राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित मुद्दे

क्या नए राज्यों की मांग राष्ट्रीय एकता के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करती है?

- रामचंद्र गुहा का तर्क है कि भाषाई राज्यों के गठन ने भारत की एकता की रक्षा की है। पाकिस्तान विभाजित हो गया और श्रीलंका में दीर्घकालीन गृह-युद्ध हुआ क्योंकि पाकिस्तान के

मामले में बंगाली भाषियों और श्रीलंका के मामले में तमिल भाषियों को उस स्वायत्तता और गरिमा से वंचित रखा गया जिसके वे हक़दार थे।

- दूसरी ओर, भारत में नागरिकों को उनकी ही भाषा में शिक्षित होने और स्वयं को प्रशासित करने की स्वंत्रतता ने उनमें आश्वासन, उत्तरदायित्व और सुरक्षा की भावना पैदा की है तथा **'पहचान के संकट'** (Identity Crisis) को उत्पन्न होने से रोका।
- प्रख्यात विद्वानों एवं कई अन्य का मानना है कि भाषाई राज्य, भारतीय स्वतंत्रता के प्रारंभिक दौर में आवश्यक थे, लेकिन अब राज्यों के 'एक और पुनर्गठन' का समय आ गया है। हाल ही में तेलंगाना का निर्माण इसका एक उदाहरण है। विदर्भ और गोरखालैंड आदि के समर्थकों के पास भी मजबूत तर्क हैं। ये क्षेत्र पर्यावरणीय और सांस्कृतिक अर्थ में बेहतर रूप से परिभाषित हैं तथा ऐतिहासिक रूप से राज्यों के अधिक शक्तिशाली या समृद्ध हिस्से द्वारा उपेक्षित रहे हैं।
- आजादी के 70 वर्षों बाद, भारत की एकता के बारे में किसी भय की आवश्यकता नहीं रह गई है। भारत वर्ष अखंड रहेगा। आज भारत की वास्तविक समस्या शासन की गुणवत्ता है तथा अपेक्षाकृत छोटे राज्य, इस समस्या का एक समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं।

क्या द्वितीय राज्य पुनर्गठन आयोग की आवश्यकता है?

- नए राज्यों की बढ़ती मांग ने भारत की संघीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के संबंध में कुछ प्रश्न उत्पन्न किए हैं। संघीय पुनर्गठन के मुद्दे का समाधान करने के लिए किसी भी ढांचे को तैयार करते समय निम्नलिखित चार उपायों पर विचार किया जाना चाहिए:
    - एक स्थायी राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन;
    - यह सुनिश्चित करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाना चाहिए, कि नए राज्यों के गठन की मांग राज्य विधायिका द्वारा उत्पन्न हो न कि केंद्र की ओर से;
    - राजनीतिक विचार के स्थान पर आर्थिक और सामाजिक व्यवहार्यता का परीक्षण किया जाना चाहिए; तथा
    - धर्म, जाति और भाषा को नए राज्यों के गठन का वैध आधार बनाने के बजाय विकास एवं सुशासन जैसे लोकतांत्रिक मुद्दों को प्रोत्साहित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए।
- भारत के राज्यों के आकार और ढांचे का एक अधिक व्यापक अवलोकन करने के लिए लंबे समय से द्वितीय राज्य पुनर्गठन आयोग (SRC) की स्थापना की मांग की जा रही है। यदि एक नए SRC का गठन किया जाता है तो उसे निम्नलिखित प्रश्नों का समाधान करना होगा:

(i) क्या भारत को और राज्यों की आवश्यकता है?

- भारत प्रति राज्य जनसंख्या के अनुसार राज्यों की संख्या के मामले में संघीय देशों की तालिका में सबसे नीचे आता है। इसके प्रति राज्य जनसंख्या का औसत 35 मिलियन है। जोकि तुलनात्मक रूप से ब्राज़ील में 7 मिलियन, अमेरिका में 6 मिलियन, नाइजीरिया में 4 मिलियन है।
- इसके अतिरिक्त, भौगोलिक दृष्टि से इसके राज्यों का आकार अधिक बड़ा नहीं है। अमेरिका के लगभग 2,00,000 वर्ग किलोमीटर और ब्राजील के 3,00,000 वर्ग किलोमीटर की तुलना में भारत के राज्यों का आकार औसतन 1,10,000 वर्ग किलोमीटर है। जर्मन राज्यों (Lander) का औसत क्षेत्रफल लगभग 22,000 वर्ग किलोमीटर, जबकि स्विस कैंटन का औसत आकार केवल 1,588 वर्ग किलोमीटर है।
- अतः प्रति राज्य जनसंख्या के अनुसार राज्यों की संख्या की दृष्टि से, यह अन्य संघीय देशों से पीछे है, परंतु भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से यह उनके लगभग बराबर या कम ही है।

(ii) क्या छोटे राज्य का अर्थ बेहतर शासन प्रदान करना है?

- नए राज्य पुनर्गठन आयोग को इस पर आवश्यक रूप से विचार करना होगा कि क्या छोटे राज्यों के निर्माण से प्रशासन में सुधार की संभावना है। नए राज्यों के गठन से राज्यों की संख्या में वृद्धि

होगी तथा नए राज्यों को नई राजधानियों, प्रशासनिक संरचना, अदालतों और कर्मियों की आवश्यकता होती है।

- G-20 देशों के मध्य भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत रोजगार की दर सबसे कम है। सरकारी कर्मचारियों की संख्या में कमी के कारण करारोपण, न्याय प्रदायगी, सुरक्षा और शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता के संदर्भ में भारतीय राज्यों की क्षमता प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है। यद्यपि, रिक्त पदों को भरना कौशल सुधार और उच्च शिक्षा पर निर्भर करता है, तथापि नए राज्य इस संबंध में कोई गारंटी प्रदान नहीं करते हैं।
- राज्यों के आकार को कम करने और सुशासन के मध्य कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। राज्यों के आकार को सुशासन से संबद्ध करने वाले प्रायः इस पूर्वाग्रह से ग्रसित होते हैं कि छोटे राज्य भौगोलिक दृष्टि से अधिक सुसंगठित और सामाजिक रूप से अधिक एकजुट होगें तथा इससे सार्वजनिक खर्च की दक्षता में सुधार करने में मदद मिलेगी।
- यह भी माना जाता है कि छोटे राज्य निर्वाचित प्रतिनिधियों और मतदाताओं के मध्य की दूरी को कम करके जवाबदेही में वृद्धि कर सकते हैं। फिर भी यदि, गरीबी में कमी या आर्थिक संवृद्धि के संदर्भ में राज्यों के प्रदर्शन की तुलना की जाए, तो हमें राज्यों के आकार और उनके प्रदर्शन के मध्य कोई स्पष्ट सह-संबंध दृष्टीगोचर नहीं होता है। भारत में नवनिर्मित नए राज्यों, यथा- तेलंगाना, छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तराखंड का मिश्रित अनुभव यह दर्शाता है कि नए राज्यों के निर्माण में विकास को बढ़ावा देने की संभावना का अंतर्निहित होना आवश्यक नहीं है।

(iii) नए राज्यों के निर्माण के अतिरिक्त अन्य उपलब्ध विकल्प क्या हैं?

- नए SRC के समक्ष तीसरा प्रश्न यह है कि यदि नए राज्यों के निर्माण का आधार प्रशासनिक दक्षता है तो क्या नए राज्यों के निर्माण का कोई अन्य विकल्प भी है जोकि संबंधित मुद्दों का निवारण कर सके?
- कुछ मामलों में केंद्रीय संसाधनों का बेहतर वितरण या राज्य स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं को सत्ता का बेहतर हस्तांतरण, नए राज्यों के निर्माण से अधिक वांछित परिणाम दे सकता है। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि नगर निगमों, स्वायत्त क्षेत्रीय परिषदों या पंचायती राज संस्थाओं के रूप में उप-राज्य संस्थाओं को अधिकार देने में राज्यों का बहुत हद तक मिश्रित प्रदर्शन रहा है।

(iv) नए राज्यों के गठन का निर्धारण कौन करेगा?

- नई SRC को निश्चित रूप से इस प्रश्न का जवाब देना चाहिए कि यदि नए राज्यों का गठन करना है तो इसका निर्धारण कौन करेगा। भारत की संवैधानिक व्यवस्था की एक दिलचस्प विशेषता यह है कि अनुच्छेद 3 (जो प्रभावी रूप से केंद्र सरकार को नए राज्यों के निर्माण की शक्ति देता है) की केंद्रीकृत प्रकृति के बावजूद, राज्य विभाजन पर वास्तविक संघर्ष राज्य स्तर पर देखने को मिलता है। नए SRC को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या विभाजन का समर्थन करने के लिए राज्य विधानसभा के संकल्प को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

(v) पूर्ण राज्य के दर्जे की मौजूदा मांगों पर अधिनिर्णयन

- अंत में, भविष्य में गठित होने वाले SRC को गोरखालैंड, विदर्भ, बोडोलैंड, बुंदेलखंड, हरित प्रदेश और अन्य स्थानों पर राज्य के दर्जे हेतु उठी वर्तमान मांगों पर निर्णय करने की आवश्यकता होगी। भविष्य में किसी भी SRC के लिए एक अनुत्तरित प्रश्न, राज्य के 'उचित' आकार, का उत्तर खोजना आसान नहीं होगा। किस क्षेत्र को राज्य बनाया जाना चाहिए, इसका सार्वभौम या सबके लिए स्वीकार्य उत्तर नहीं है।

1.9. राज्यों के नाम परिवर्तन से जुड़े मुद्दे

अगस्त 2016 में, पश्चिम बंगाल विधानसभा ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें पश्चिम बंगाल राज्य का नाम बदलकर बंगाली (भाषा) में "बंग्ला" और अंग्रेजी में "बंगाल" किए जाने के संबंध में प्रावधान है।

राज्यों के नाम परिवर्तन से संबंधित संवैधानिक प्रावधान:

- अनुच्छेद 3, संसद को किसी भी राज्य के नाम में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 3 के अधीन विधि बनाने की जो प्रक्रिया विहित की गयी है, उसका यहाँ पालन किया जाता है। अर्थात्, संसद विधि बनाकर ही यह कार्य करती है।
- अनुच्छेद 3 के अधीन संविधान संशोधन के बिना ऐसा किया जा सकता है। लेकिन, यदि उक्त राज्य की भाषा में परिवर्तन (जैसे- उड़िया के स्थान पर ओडिया; 96वां संविधान संशोधन) के संबंध में प्रावधान हो तथा जो संविधान की आठवीं अनुसूची में परिवर्तन से संबंधित हो तो इस हेतु संविधान संशोधन विधेयक की आवश्यकता होती है।

राज्यों के नाम परिवर्तन की आवश्यकता क्यों?

- ब्रिटिश शासन के दौरान अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से कई भारतीय प्रांतों, क्षेत्रों एवं शहरों का नाम परिवर्तित किया था।
- इनके नामकरण में ब्रिटिश प्रभाव भी झलकता है, जहां उनके ऐतिहासिक नामकरण को अनदेखा किया गया है।
- ऐसे प्रांतों, शहरों आदि की स्थानीय भाषा एवं अंग्रेजी भाषा में उच्चारण एवं ध्वन्यात्मक (Phonetic) समस्या भी इनके नाम में परिवर्तन के कारण रही हैं। जैसे- यूनाइटेड प्रोविंस, मिडिल प्रोविंस आदि।

अनुच्छेद 3 के अधीन जो अनेक विधान बनाए गए हैं उनमें से कुछ उदाहरणस्वरूप नीचे दिए गए हैं:

(i) नए राज्यों का निर्माण

- आंध्र राज्य अधिनियम, 1953 (आंध्र प्रदेश)।
- राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 (केरल, मध्य प्रदेश आदि)।
- मुंबई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 (महाराष्ट्र और गुजरात)।

(ii) विलय

- हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर (नया राज्य) अधिनियम, 1954 (बिलासपुर का हिमाचल प्रदेश में विलय)।
- अर्जित राज्य क्षेत्र (विलय) अधिनियम, 1960 (कुछ राज्य क्षेत्रों का असम, पंजाब और पश्चिम बंगाल में विलय)।

(iii) विभाजन

- पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 (पंजाब को, पंजाब और हरियाणा में विभाजित किया गया तथा चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश का निर्माण किया गया)।
- पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971 (इसके द्वारा मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश का निर्माण हुआ)।

(iv) अध्यर्पण

- भारत और पाकिस्तान के मध्य हुए करार के अनुसरण में 9वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1960 द्वारा कुछ राज्य क्षेत्र पाकिस्तान को अध्यर्पित किए गए।
- **100वां संविधान संशोधन अधिनियम:** 119वाँ संविधान संशोधन विधेयक, 2013 भारत एवं

बांग्लादेश के मध्य भूमि सीमा समझौते से संबंधित है। यह विधेयक भारतीय संविधान के 100वें संशोधन का आधार बना। यह संविधान संशोधन विधेयक दोनों देशों की सीमा के मध्य मौजूद कुछ विदेशी अंतःक्षेत्रों (एन्क्लेव) के आदान-प्रदान से संबंधित है। इसके तहत बांग्लादेश को भारत से 111 एन्क्लेव (17,160 एकड़), जबकि भारत को बांग्लादेश से 51 एन्क्लेव (7,110 एकड़) प्राप्त हुए।

(v) अर्जन (नए क्षेत्रों का प्रवेश)

- 36वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1975 द्वारा सिक्किम का भारत संघ में प्रवेश।

(vi) नाम परिवर्तन

- मद्रास राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1968 (मद्रास का नाम तमिलनाडु किया गया)।
- मैसूर राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1973; मैसूर राज्य का नाम कर्नाटक कर दिया गया।
- उड़ीसा (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2011; **उड़ीसा** का नाम बदलकर **ओडिशा** किया गया।

2. समकालीन मुद्दे

2.1. तेलंगाना मुद्दा

तेलंगाना राज्य के निर्माण के मामले में, आंध्र प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2013 को आंध्र प्रदेश की विधान सभा और विधान परिषद द्वारा निर्णायक रूप से अस्वीकार कर दिया गया। लेकिन, आंध्र प्रदेश विधान-मंडल का यह कदम भी केंद्र सरकार को संसद में आंध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 पारित करने से नहीं रोक पाया।

अनुच्छेद 3 की विधिक व्याख्या से स्पष्ट है कि आंध्र प्रदेश की विधानसभा के विचारों का कोई विधिक महत्व नहीं था और तेलंगाना का गठन पूर्णतया भारत सरकार का विशेषाधिकार था। लेकिन भारतीय संघवाद के विकासमान अर्थ के प्रकाश में इस स्थिति पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए।

हालाँकि, जैसा कि व्यापक रूप से सुझाव दिया गया है कि राज्य विधान-मंडल के विचारों को केवल औपचारिक महत्व का मानना, राष्ट्रीय महत्व के मामले में परामर्श की संवैधानिक प्रक्रिया को पूर्णतया निरर्थक बना देगा। अनुच्छेद 3 का वर्तमान प्रावधान संविधान (पांचवां संशोधन) अधिनियम, 1955 द्वारा स्थापित किया गया था। इस संशोधन से पहले, राष्ट्रपति संबंधित राज्य विधानसभाओं को उनके विचार के लिए संदर्भित करने के बाद ही संसद में संशोधन विधेयक प्रस्तुत कर सकता था। यह समयसाध्य प्रक्रिया थी, जो राज्यों को प्रत्युत्तर देने में समय लेने की अनुमति देती थी, जिससे केंद्र सरकार के प्रयास विफल हो जाते थे। यह संशोधन राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट को सुचारू रूप से लागू करने के लिए आवश्यक था जिसने राज्यों की सीमाओं को नए सिरे से निर्धारित करने और नए राज्यों के निर्माण की अनुशंसा की थी। इस संबंध में राज्य विधान-मंडल की शक्ति को पर्याप्त रूप से इस प्रकार सीमित किया गया कि कोई भी एक राज्य, पुनर्गठन की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न न कर पाए।

संघीय चरित्र पर प्रभाव डालने वाली संविधान के प्रावधानों की पुनर्व्याख्या की यही भावना **एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ** में भी प्रदर्शित हुई थी, जब राष्ट्रपति शासन आरोपित करने की राष्ट्रपति की शक्ति को न्यायिक पुनर्विलोकन से ऊपर और परे नहीं माना गया था।

भारत की संघीय संरचना में केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति को उस समय अपनाया गया था जब भारत के भिन्न-भिन्न तत्वों को एक साथ एक राष्ट्र में पिरोना आवश्यक था। यह ऐसा कार्य था जिसके लिए भारत सरकार को विशिष्ट रूप से तैयार किया गया था और जिसके लिए एक सहायक संवैधानिक संरचना की आवश्यकता थी।

इस प्रकार, संविधान के संघीय प्रावधान राजनीतिक रणनीति के समान उत्कृष्ट दृष्टि वाले थे। इस प्रकार की रणनीति के लिए अब सावधानीपूर्वक पुन: अंशांकन की आवश्यकता है, क्योंकि राष्ट्र निर्माण के लिए इस प्रकार के उपकरण का उपयोग यदि विवेकपूर्ण तरीके से नहीं किया जाता है, तो इसे विशुद्ध रूप से केंद्रीय आधिपत्य के रूप में देखा जाएगा। ऐसी बलात एकात्मक संरचना के नकारात्मक परिणाम भी हो सकते हैं।

2.2. गोरखालैंड मुद्दा

पृथक गोरखालैंड राज्य के निर्माण की मांग को लेकर अक्सर दार्जिलिंग आदि क्षेत्रों में पूर्ण बंदी की स्थिति देखने को मिलती है और कई बार यह मांग हिंसक प्रदर्शन का स्वरुप भी ग्रहण कर लेता है। हाल ही में, ऐसे प्रदर्शन देखेने को मिले।

आंदोलन क्यों?

- तत्कालिक कारण: राज्य सरकार द्वारा 9वीं कक्षा तक बंगाली भाषा को अनिवार्य बनाया जा रहा है। गोरखा लोग राज्य सरकार के इस कदम को अपनी पहचान एवं अस्मिता के लिए खतरे के रूप में देखते हैं क्योंकि उनकी मातृभाषा नेपाली है।
- दीर्घकालिक कारण: GTA (गोरखालैंड टेरिटोरियल एडमिनिस्ट्रेशन) के कामकाज में समस्याएं। नेताओं ने राज्य सरकार पर हस्तक्षेप और GTA को पर्याप्त वित्तीय संसाधन हस्तांतरित नहीं करने का आरोप लगाया है।

गोरखालैंड की मांग का इतिहास

गोरखालैंड में दार्जिलिंग, कालिम्पोंग, कुर्सिओंग और अन्य पहाड़ी जिलों के नेपाली भाषी क्षेत्र सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों के लोगों का बंगाली समुदाय से कदाचित ही कोई प्रत्यक्ष संबंध रहा है और वे नृजातीयता, संस्कृति और भाषा के मामले में भिन्न हैं।

गोरखालैंड की मांग क्यों?

- भाषा और संस्कृति में भिन्नता।
- भारतीय गोरखा पहचान की आकांक्षा: क्योंकि वर्ष 1988 में दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल के गठन और वर्ष 2012 में गठित GTA ने इस आकांक्षा को पूरा नहीं किया और वे असफल रहे।
- सापेक्षिक रूप से आर्थिक पिछड़ापन।
- बंगाली भाषी लोगों द्वारा कथित दुर्व्यहार और सरकार द्वारा इसकी अनदेखी आदि।

गोरखालैंड के प्रति अनुक्रियाएं

दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल (DGHC): वर्ष 1986 के आंदोलन को देखते हुए, जुलाई 1988 में भारत सरकार, पश्चिम बंगाल सरकार और गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट के मध्य एक त्रिपक्षीय समझौता हुआ। इसके अंतर्गत, "दार्जिलिंग जिले के पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक उन्नति" के लिए राज्य अधिनियम के अंतर्गत स्वायत्त रूप से दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल (DGHC) की स्थापना की गई थी। इस काउंसिल में दार्जिलिंग जिले के तीन पहाड़ी सब-डिविजन (उप-संभाग) और सिलीगुड़ी सब-डिविजन के कुछ क्षेत्र सम्मिलित थे।

समस्याएं:

- काउंसिल को सीमित कार्यकारी शक्तियां प्रदान की गईं थीं। ऐसे में विधायी शक्तियों के अभाव के कारण क्षेत्र के लोगों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं किया जा सका।
- काउंसिल में दुआर क्षेत्र का गैर-समावेशन, असंतोष का एक प्रमुख कारण बन गया था।

गोरखालैंड टेरिटोरियल एडमिनिस्ट्रेशन (GTA): वर्ष 2012 में भारत सरकार, पश्चिम बंगाल सरकार और गोरखा जनमुक्ति मोर्चा (GJM) के मध्य हस्ताक्षरित एक त्रिपक्षीय समझौते के माध्यम से GTA की स्थापना की गयी। इसने दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल का स्थान ग्रहण किया है। यह एक अर्ध-स्वायत्त प्रशासनिक निकाय है। इसके पास प्रशासनिक, कार्यकारी और वित्तीय शक्तियां हैं लेकिन विधायी शक्तियां नहीं हैं। GTA में वर्तमान में इसके प्राधिकार के अंतर्गत तीन पहाड़ी सब-डिविजन दार्जिलिंग, कुर्सिओंग और मिरिक तथा दार्जिलिंग जिले के सिलीगुड़ी सब-डिविजन के कुछ क्षेत्र एवं संपूर्ण कालिम्पोंग जिला सम्मिलित हैं।

समस्याएं:

- GTA के पास विधायी शक्तियों का अभाव है। इसका अर्थ है यह कि क्षेत्र के लोगों का अपने ऊपर नियंत्रण करने वाले विधियों पर कोई नियंत्रण नहीं है।
- दुआर (Dooars) क्षेत्र को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है। हालांकि, दुआर क्षेत्र में "गोरखा बहुसंख्यक" क्षेत्रों की पहचान करने के लिए एक सत्यापन टीम का गठन किया गया था।

समाधान

पृथक गोरखालैंड राज्य की मांग करने वाले आंदोलन को शीघ्र समाप्त करने हेतु एक उपयुक्त समाधान प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यह समाधान ऐसा होना चाहिए जो बंगाली भाषी बहुमत की भावनाओं को आहत किए बिना नेपाली भाषी लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करे। ध्यातव्य है कि बंगाली भाषी बहुमत राज्य के विभाजन के विरूद्ध है। ऐसे समाधान हेतु संभावित कदमों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

- उपयुक्त शक्ति साझाकरण समझौता: पृथक गोरखालैंड राज्य की मांग अपने आप में आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं है। पर्यटन को छोड़कर इस क्षेत्र के पास अपना कोई अन्य महत्वपूर्ण संसाधन नहीं है। यहाँ का चाय उद्योग भी संकट का सामना कर रहा है। GTA के कामकाज में सुधार करने और उसे जवाबदेह बनाने की आवश्यकता है।
- केंद्र के साथ-साथ राज्य सरकार को भी गोरखाओं की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति अधिक संवेदनशील होने की आवश्यकता है, जैसे- बंगाली भाषा को थोपने के बजाय इसे वैकल्पिक बनाया जा सकता है।
- क्षेत्र का आर्थिक विकास: अस्पताल, विद्यालय एवं अन्य सार्वजनिक संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए तथा विद्यमान व्यवस्था में सुधार लाया जाना चाहिए।
- अविभाजित पश्चिम बंगाल के भीतर एक स्वायत्त गोरखालैंड राज्य के निर्माण पर विचार किया जा सकता है। अनुच्छेद 244A असम में कुछ जनजातीय क्षेत्रों के लिए अपनी स्वयं की विधायिका और मंत्रिपरिषद के साथ स्वायत्त राज्य का प्रावधान करता है। संवैधानिक संशोधन द्वारा, इस अनुच्छेद की प्रयोज्यता को पश्चिम बंगाल हेतु विस्तृत किया जा सकता है। वैकल्पिक रूप से, संविधान संशोधन के माध्यम से, अनुच्छेद 244A के समान एक अनुच्छेद को संविधान के भाग VI में एक नए अध्याय के रूप में अंतर्विष्ट किया जा सकता है। यह पश्चिम बंगाल को विभाजित किए गए बिना वर्तमान राज्य के भीतर विधायिका और मंत्रिपरिषद से युक्त एक स्वायत्तशासी गोरखालैंड की स्थापना को संभव बनाएगा।

साथ ही, आंदोलनकारियों को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि निरंतर संकीर्ण होती जा रही नृजातीय पहचान के आधार पर छोटे-छोटे राज्य निर्मित नहीं किये जा सकते हैं। ऐसा समाधान तैयार करने की आवश्यकता है जो व्यावहारिक होने के साथ-साथ सभी निवासियों के हितों का भी समावेश करे। नहीं तो, नए राज्यों की निरंतर बढ़ती मांग हिंसा, जवाबी हिंसा और विरोध प्रदर्शनों का चक्र अविरत रखते हुए देश की स्थिरता के लिए खतरा पैदा करेगी।

2.3. अनुच्छेद 370 और 35A का निरसन (Removal of Article 370 and 35A)

हाल ही में, केंद्र सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू और कश्मीर को प्रदत्त विशेष दर्जे को समाप्त कर दिया।

संबंधित तथ्य

- राष्ट्रपति ने "जम्मू और कश्मीर राज्य सरकार की सहमति" से **संविधान (जम्मू और कश्मीर में लागू) आदेश, 2019 {The Constitution (Application to Jammu and Kashmir) Order, 2019}** प्रख्यापित किया है। इस आदेश में यह उल्लिखित है कि भारतीय संविधान के सभी प्रावधान राज्य में प्रवर्तनीय होंगे। इसका तात्पर्य यह है कि वे सभी प्रावधान जो जम्मू और कश्मीर हेतु एक पृथक संविधान के आधार का निर्माण करते हैं, उन्हें निरस्त कर दिया गया है। इस प्रकार, **अनुच्छेद 35A** स्वत: निरसित हो गया है।
- इसके साथ ही, राष्ट्रपति के उक्त आदेश के प्रभाव से व्युत्पन्न प्राधिकार का प्रयोग करते हुए संसद द्वारा एक **सांविधिक संकल्प** को भी अनुमोदित किया गया, जिसमें यह अनुशंसा की गई कि राष्ट्रपति अनुच्छेद 370 (के अधिकांश प्रावधान) को निष्प्रभावी (abrogate) करते हैं।
- साथ ही, संसद द्वारा **जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 (Jammu and Kashmir Reorganization Act, 2019)** को भी पारित किया गया है। इसके द्वारा जम्मू और कश्मीर को दो संघ शासित प्रदेशों में विभाजित कर दिया गया है, यथा- जम्मू और कश्मीर डिवीज़न (विधानसभा युक्त) तथा लद्दाख (विधानसभा रहित)।

अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35A : एक संक्षिप्त पृष्ठभूमि

- जम्मू और कश्मीर की विशिष्ट स्थिति उन परिस्थितियों का परिमाण थी, जिसमें राज्य का भारत में विलय हुआ। भारत सरकार ने यह घोषणा की थी कि जम्मू और कश्मीर की जनता अपनी संविधान सभा के माध्यम से कार्य करते हुए अपने संविधान और भारत सरकार के क्षेत्राधिकार का निर्धारण करेगी।
- जम्मू और कश्मीर के संदर्भ में संविधान के प्रावधानों की अनुप्रयोज्यता (applicability) एक अंतरिम व्यवस्था की भांति थी। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 में निहित प्रावधान का सार था।
- अनुच्छेद 370 **जम्मू और कश्मीर राज्य के संबंध में एक अस्थायी उपबंध था,** जो राज्य को इसके पृथक संविधान होने की अनुमति के साथ-साथ विशिष्ट शक्तियाँ (special powers) भी प्रदान करता था।
- अनुच्छेद 370 के अनुसार **रक्षा, विदेश मामले, वित्त और संचार** को छोड़कर अन्य सभी कानूनों के प्रवर्तन हेतु **संसद को राज्य सरकार की सहमति की आवश्यकता** होती थी।
- भारतीय संविधान का अनुच्छेद 35A, जो अनुच्छेद 370 से ही व्युत्पन्न हुआ था, राज्य के स्थायी निवासियों, उनके विशेषाधिकारों तथा विशिष्ट अधिकारों को परिभाषित करने हेतु जम्मू और कश्मीर विधान सभा को शक्तियाँ प्रदान करता था।

अनुच्छेद 370 और 35A का निरसन कैसे संभव हुआ?

- राष्ट्रपति ने संविधान के **अनुच्छेद 370 (1) के अंतर्गत एक राष्ट्रपतीय आदेश (presidential order)** जारी किया था। यह खंड राष्ट्रपति को जम्मू और कश्मीर सरकार की सहमति से राज्य में प्रवर्तनीय मामलों को निर्दिष्ट करने की शक्ति प्रदान करता है।
- **इस आदेश** द्वारा **अनुच्छेद 367** में भी **संशोधन** किया गया। अनुच्छेद 367 में कुछ प्रावधानों के पठन अथवा उनकी व्याख्या संबंधी रीति का समावेश है। संशोधित अनुच्छेद यह घोषणा करता है कि अनुच्छेद 370 (3) में उल्लिखित राज्य की **"संविधान सभा"** अभिव्यक्ति को राज्य की **"विधान सभा"** पढ़ा जाएगा। उल्लेखनीय है कि, अनुच्छेद 370 (3) में यह प्रावधानित था कि अनुच्छेद 370 को राज्य की विधान सभा की सहमति से ही संशोधित किया जाएगा। हालांकि, इस संशोधन के कारण अब इसे राज्य विधान-मंडल की अनुशंसा के आधार पर भी सम्पादित किया जा सकता है।
- दूसरे शब्दों में, सरकार ने संविधान के एक प्रावधान (अनुच्छेद 367) में संशोधन करने हेतु अनुच्छेद 370 (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया तथा तत्पश्चात अनुच्छेद 370 (3) को संशोधित किया गया। परिणामस्वरूप यह सांविधिक संकल्प (भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के निरसन हेतु संकल्प) को प्रस्तुत करने का कारक बना। चूँकि, जम्मू और कश्मीर राष्ट्रपति शासन के अधीन था, इसलिए राज्यपाल की सहमति को ही "जम्मू और कश्मीर सरकार" की सहमति स्वीकार कर लिया गया।

उठाए गए कदम के संभावित निहितार्थ

- जम्मू और कश्मीर पर भारतीय संविधान की पूर्ण प्रवर्तनीयता।
- पृथक ध्वज के विशेषाधिकार का उन्मूलन।
- जम्मू और कश्मीर विधान सभा के पूर्ववर्ती छह वर्षीय कार्यकाल के स्थान पर पांच वर्षीय कार्यकाल का प्रावधान।
- रणबीर दंड संहिता (जम्मू और कश्मीर हेतु पृथक दंड संहिता) का भारतीय दंड संहिता द्वारा प्रतिस्थापन।
- अनुच्छेद 356, जिसके तहत किसी भी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है, पुनर्गठित जम्मू और कश्मीर संघ शासित प्रदेश हेतु भी प्रवर्तनीय होगा।
- विद्यालय-महाविद्यालयों में एडमिशन और राज्य की सरकारी नौकरियों में केन्द्रीय कोटा संबंधी कानून लागू होंगे।
- अन्य राज्यों के लोग सम्पत्ति और निवास अधिकार प्राप्त करने के पात्र होंगे।
- सूचना का अधिकार अधिनियम प्रवर्तनीय होगा।
- जम्मू और कश्मीर के संविधान के कुछ प्रावधान जो किसी अन्य राज्य के व्यक्ति से विवाह करने वाली राज्य की महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकारों से वंचित करते हैं, अवैध घोषित हो सकते हैं।

अनुच्छेद 370 का निरसन: संवैधानिक और विधायी चुनौतियाँ

जम्मू और कश्मीर के संबंध में केंद्र सरकार की हालिया कार्यवाही को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय में कई याचिकाएं दायर की गई हैं। उल्लेखनीय है कि निम्नलिखित वैधानिक मुद्दे न्यायिक विवेचनाओं के दौरान चर्चा का विषय हो सकते हैं:

- **राष्ट्रपतीय आदेश की वैधानिकता (Legality of the Presidential order):** अनुच्छेद 370 को राष्ट्रपतीय आदेश द्वारा संशोधित नहीं किया जा सकता। यद्यपि, यह आदेश अनुच्छेद 367 को

संशोधित करता है, तथापि इन संशोधनों के विषय अनुच्छेद 370 में भी संशोधन करते हैं और जैसा कि विभिन्न अवसरों पर उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि 'जिसे आप प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकते, उसे आप परोक्ष रूप से भी नहीं कर सकते'। इस प्रकार, इस आदेश की वैधानिकता - जहाँ तक यह अनुच्छेद 370 में संशोधन करता है - संदेहास्पद है।

- **राष्ट्रपति शासन का दुरुपयोग और राज्यपाल को निर्वाचित विधान सभा का एक प्रतिनिधि बनाना:** राज्यपाल, राज्य में केंद्र सरकार का प्रतिनिधि होता है। इस प्रकार, वास्तव में इस मामले में केंद्र सरकार ने स्वयं से ही परामर्श किया है।
    - इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति शासन अस्थायी होता है तथा यह माना जाता है कि इसका अस्तित्व केवल निर्वाचित सरकार की पुनर्स्थापना से पहले तक ही है। ऐसे में, निर्वाचित विधान सभा की सहमति के बिना केवल राज्यपाल की सहमति से एक राज्य के सम्पूर्ण दर्जे में परिवर्तन जैसे स्थायी चरित्र के निर्णय अपने आप में संदिग्ध हैं।
- **राज्य विधान सभा की संविधान सभा के साथ साम्यता:** दोनों के मध्य प्रमुख अंतर यह है कि, जहाँ विधान सभा को संविधान के अनुसार अपनी शक्तियों का प्रयोग करना होता है, वहीं संविधान सभा संविधान का निर्माण करती है। यह विभेद, जो कि भारतीय संविधान के मूल ढांचे के सिद्धांत का मर्म है, इस आधार पर कुछ संवैधानिक संशोधनों को निषिद्ध करता है कि संसद जो प्रतिनिधित्व प्राधिकार का प्रयोग करती है, उसकी शक्तियाँ सीमित हैं तथा वह एक नवीन संविधान का निर्माण नहीं कर सकती है और इसलिए संप्रभु प्राधिकार का प्रयोग करने में भी असक्षम है।
- **जम्मू और कश्मीर की संवैधानिक स्थिति के विरुद्ध उठाया गया कदम:** राष्ट्रपतीय आदेश में यह स्वीकृत किया गया है कि विधान सभा को अनुच्छेद 370 को निरसित करने की शक्ति प्राप्त है। जबकि, जम्मू और कश्मीर के संविधान का अनुच्छेद 147 इस तरह के कदम को निषिद्ध करता है। अनुच्छेद 147 यह स्पष्ट करता है कि जम्मू और कश्मीर के संविधान में किसी भी प्रकार के परिवर्तन हेतु विधान सभा के दो-तिहाई सदस्यों के अनुमोदन की आवश्यकता होगी।

निष्कर्ष

- ज्ञातव्य है कि, जब जम्मू और कश्मीर राज्य की संविधान सभा ने कार्य करना बंद किया था, तब अनुच्छेद 370 की प्रकृति के संबंध में दीर्घकालिक वाद-विवाद आरम्भ हुए। विघटन से पूर्व संविधान सभा ने न तो अनुच्छेद 370 के उन्मूलन की अनुशंसा की थी तथा न ही इसके स्थायित्व का समर्थन किया था। अभी भी यह पर्यवेक्षण करना शेष है कि क्या वह रीति जिसके तहत अनुच्छेद 370 का निरसन किया गया है, न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन है।
- उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 370 राज्य के लोगों को शासन के विषयों में अपने विचार प्रस्तुत करने का अधिकार प्रदान करता था जोकि अपनी पहचान के मामलों में अत्यधिक सुभेद्य अनुभव करते हैं और अपने भविष्य के बारे में अनिश्चित हैं। हालांकि, ये चिंताएं भी प्रकट की गई हैं कि न तो यह कदम जम्मू और कश्मीर राज्य के सामान्य-जन के अनुकूल होगा तथा न ही यह शेष भारत के साथ राज्य के एकीकरण को सुविधाजनक बनाएगा। तथापि, यह अपेक्षा की गई है कि यह कदम जम्मू और कश्मीर हेतु विकास एवं समावेशन के एक नव प्रभात का सृजन करेगा, जो राज्य के वंचित व हाशिये पर रह रहे लोगों को मुख्यधारा में सम्मिलित करेगा।

3. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions)

1. 'भारतीय संघ (यूनियन ऑफ़ इंडिया)' और 'भारत का राज्य क्षेत्र' (Territory of India) पदों के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए। प्रस्तावित 119वें संविधान संशोधन विधेयक के विशेष संदर्भ में किसी राज्य के प्रादेशिक गठन को पुनर्गठित करने की संसद की शक्तियों पर चर्चा कीजिए।

दृष्टिकोण:

इस प्रश्न के प्रथम भाग का उत्तर डी. डी. बसु और लक्ष्मीकांत जैसे लेखकों की मानक पुस्तकों के संदर्भ के साथ दिया जा सकता है। उत्तर के दूसरे भाग के लिए हमें संविधान के अनुच्छेद 1 से 4 तक का संदर्भ देने की आवश्यकता है। हमें 119वें संविधान संशोधन विधेयक की गहन छानबीन करनी होगी जो संविधान की पहली अनुसूची को परिवर्तित करने की मांग करता है। इसमें बांग्लादेश के साथ एन्क्लेवों (विदेशी अंतःक्षेत्रों) (असम, पश्चिमी बंगाल, मेघालय और त्रिपुरा) का आदान-प्रदान शामिल है और इसलिए यह अनुच्छेद 3 द्वारा शासित सामान्य संसदीय प्रक्रिया में शामिल नहीं है। बेरुबारी संघ वाद (1960) में प्रदत्त निर्णय के आलोक में, विधेयक संविधान की पहली अनुसूची में असम, पश्चिमी बंगाल, मेघालय और त्रिपुरा के प्रदेशों से संबंधित परिच्छेदों में संशोधन करने की मांग करता है।

उत्तर:

"भारतीय संघ" पद की तुलना में "भारत का राज्य क्षेत्र" पद का अधिक व्यापक संकेतार्थ है। "जहाँ संघ शब्द में राज्य शामिल होते हैं जो संघीय प्रणाली के सदस्य होने की स्थिति का लाभ उठाते हैं और संघ के साथ शक्तियों के वितरण को साझा करते हैं, वही "भारत का राज्य क्षेत्र" पद में वैसे सभी क्षेत्र शामिल हैं जिन तक भारत की संप्रभुता विस्तृत है"।

- इस प्रकार, भारत का राज्य क्षेत्र, राज्यों से अलग प्रदेश के दो अन्य वर्गों को सम्मिलित करता है अर्थात् (i) संघ शासित प्रदेश और (ii) ऐसे अन्य क्षेत्र जो भारत द्वारा अधिग्रहित किए जा सकते हैं {अनुच्छेद 1(3)}।
- संविधान के भाग 1 में अनुच्छेद 1 से 4 संघ और इसके प्रदेशों की चर्चा करते हैं।
- **अनुच्छेद 3 के अनुसार संसद, विधि द्वारा:**

(i) किसी राज्य में से उसका राज्य क्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्य क्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकेगी;

(ii) किसी राज्य के क्षेत्र को बढ़ा सकेगी;

(iii) किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी;

(iv) किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी; और

(v) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी।

- जैसा कि अनुच्छेद 4 में उल्लिखित है, अनुच्छेद 2 और 3 के अधीन निर्मित अधिनियम, अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संवैधानिक संशोधन के समान नहीं होते हैं।

- फिर भी, जैसा बेरुबारी संघ वाद (1960) के संदर्भ में उच्चतम न्यायलय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 3 के अधीन राज्य के क्षेत्र में परिवर्तन करने की संसद की शक्ति, भारतीय भू-भाग का किसी अन्य देश के साथ अर्पण या आदान-प्रदान को सम्मिलित नहीं करता है।
- वर्ष 2011 में भारत एवं बांग्लादेश ने दोनों राष्ट्रों के मध्य वर्ष 1974 में संपन्न भूमि सीमा समझौते (Land Boundary Agreement: LBA) के तहत विदेशी अंतः क्षेत्रों (enclaves) के परस्पर आदान-प्रदान के लिए एक प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते के तहत 111 भारतीय एन्क्लेव बांग्लादेश को तथा 51 बांग्लादेशी एन्क्लेवों को भारत को हस्तांतरित करने की परिकल्पना की गई। हालांकि, इस हेतु संसद के अनुसमर्थन की आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए 119वां संविधान संशोधन विधेयक, 2013 पुरःस्थापित किया गया था तथा जिसे वर्ष 2015 में पारित किया गया।

2. **जहाँ कुछ लोगों का तर्क है कि संविधान का अनुच्छेद 3 राज्यों की कीमत पर केंद्र को अनन्य शक्तियां प्रदान करता है, वहीं दूसरों के अनुसार, यह संविधान में निहित संघवाद को बनाए रखने तथा संरक्षित करने के लिए संसद को सक्षम बनाता है। चर्चा कीजिए। क्या सहकारी-संघवाद की भावना के अनुरूप अनुच्छेद 3 पर पुनः विचार करने का समय आ गया है?**

दृष्टिकोण:

- संक्षेप में अनुच्छेद 3 के प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
- दोनों पक्षों के तर्कों को प्रस्तुत कीजिए।
- व्याख्या करते हुए इस बात पर चर्चा कीजिए कि क्या अनुच्छेद 3 को पुनःपरिभाषित करने तथा ऐसे परिवर्तनों हेतु दिशा-निर्देश जारी करने की आवश्यकता है।

उत्तर:

अनुच्छेद 3 संसद को प्राधिकृत करता है कि वह दो या अधिक राज्यों या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्य की सीमा में वृद्धि, कमी या परिवर्तन कर नए राज्य का निर्माण कर सकती है अथवा किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकती है। ऐसे परिवर्तन से संबंधित विधेयक संसद में आरंभ होंगे, परंतु ऐसे विधेयक को संबंधित राज्य विधान-मंडलों को भेजे जाने की आवश्यकता होती है। हालांकि उनके (राज्यों के) विचार बाध्यकारी नहीं होते हैं। किसी केंद्र शासित प्रदेश के संदर्भ में उनकी विधायिका को इससे संदर्भित किए जाने की भी आवश्यकता नहीं होती है।

इस प्रकार, संसद अपनी इच्छानुसार भारत के राजनीतिक मानचित्र का पुनर्निर्धारण कर सकती है। दूसरे शब्दों में, किसी भी राज्य की क्षेत्रीय अखंडता या अविभाज्यता की संवैधानिक गारंटी प्रदान नहीं की गयी है। इस प्रकार, भारत "विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ" है। संघ सरकार, किसी राज्य को समाप्त कर सकती है जबकि राज्य सरकार, संघ को समाप्त नहीं कर सकती है। स्वतंत्रता के पश्चात् विभाजनकारी प्रवृत्तियों के संदर्भ में भारत की एकता व अखंडता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था। वर्तमान में कई क्षेत्रों द्वारा संकीर्ण नृजातीय व आदिवासी पहचान के आधार पर की जा रही नए राज्यों की मांग (जो कि व्यावहारिक रूप से असंभव है) को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अमुक प्रावधान आवश्यक थे।

इसके अतिरिक्त, संघ सरकार भाषाई, प्रशासनिक और विकास संबंधी आकांक्षाओं के आधार पर नए राज्यों के निर्माण संबंधी मांग को स्वीकार करने में उदारता का परिचय देते आयी है। यह फॉर्मूला भारत की 'विविधता में एकता' बनाए रखने में बहुत सफल रहा है।

लेकिन, यह सहकारी संघवाद की भावना के विपरीत भी है, जो केंद्र और राज्यों के मध्य शक्ति के समान वितरण का सिद्धांत प्रस्तुत करता है, जबकि अनुच्छेद 3 राज्यों को केंद्र का एक उपकरण बना देता है, क्योंकि यहाँ राज्यों के पास उनकी अविभाज्यता के संदर्भ में न के बराबर अधिकार है। यह स्थानीय लोगों की इच्छा को नजरअंदाज करता है, साथ ही यह विविधता और बहुलवाद की अवधारणाओं के विरुद्ध भी है। यह लोगों के बीच असंतोष पैदा कर राजनीतिक नेतृत्व एवं संवैधानिक मशीनरी से उन्हें अलग-थलग कर देता है। तेलंगाना के निर्माण के बाद आंध्र प्रदेश क्षेत्र में असंतोष का भाव और उत्तर-पूर्व में उग्रवाद की समस्या आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।

इसलिए, इस पर पुनर्विचार किया जाना प्रशंसनीय होगा। इस संबंध में निम्नलिखित संभव विकल्प हो सकते हैं:

- विशेष बहुमत के मामले में संसद को राज्य विधान-मण्डल की इच्छा का अवश्य ही पालन करना चाहिए।
- विशेष परिस्थितियों को छोड़कर यदि ऐसे परिवर्तनों की आवश्यकता हो तो उसकी शुरुआत राज्य विधान-मण्डल में होनी चाहिए।

परंतु अनुच्छेद 3 में किए जाने वाले ऐसे किसी भी परिवर्तन का अकल्पित परिणाम हो सकता है। इसलिए, सभी हितधारकों के साथ विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। साथ ही, देश की एकता को बनाए रखने हेतु तथा स्थानीय आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के वृहद समावेश के लिए 5वीं और 6ठी अनुसूची के प्रावधानों के साथ अनुच्छेद 3 का विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग किया जाना चाहिए।

4. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions)

1. अनेक राज्य सरकारें बेहतर प्रशासन के लिए भौगोलिक प्रशासनिक इकाइयों जैसे जनपद और तालुकों में विभाजित कर दी जाती हैं। उक्त के आलोक में, क्या यह भी औचित्यपूर्ण कहा जा सकता है कि अधिक संख्या में छोटे राज्य, राज्य स्तर पर प्रभावी शासन देगें ? चर्चा कीजिए। (2013)

नागरिकता

विषय सूची

1. नागरिक - अर्थ ___ 146
2. परिचय ___ 146
2.1. अनिवासी भारतीय (Non-Resident Indian: NRI) ___ 147
2.2. भारतीय मूल के व्यक्ति (Person of Indian Origin: PIO) ___ 147
2.3. प्रवासी भारतीय नागरिक (Overseas Citizen of India: OCI) ___ 148
2.3.1. PIO तथा OCI का विलय ___ 148
3. संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions) ___ 149
3.1. अनुच्छेद 5 ___ 149
3.2. अनुच्छेद 6 ___ 149
3.3. अनुच्छेद 7 ___ 149
3.4. अनुच्छेद 8 ___ 150
3.5. अनुच्छेद 9 ___ 150
3.6. अनुच्छेद 10 ___ 150
3.7. अनुच्छेद 11 ___ 150
4. नागरिकता का अर्जन और पर्यवसान (समाप्ति) (Acquisition & Termination of Citizenship) ___ 150
4.1. जन्म से नागरिकता (धारा 3) ___ 150
4.2. उद्भव/वंश के आधार पर नागरिकता (धारा 4) ___ 151
4.3. पंजीकरण द्वारा नागरिकता {धारा 5 (1)} ___ 152
4.4. देशीयकरण द्वारा नागरिकता (धारा 6) ___ 152
4.5. राज्यक्षेत्र के सम्मिलित किए जाने पर पर नागरिकता ___ 153
5. नागरिकता का स्वैच्छिक त्यजन (Renunciation of Citizenship) ___ 153
5.1. नागरिकता का पर्यवसान (समाप्ति) (Termination of Citizenship) ___ 153
5.2. दूसरे देश की नागरिकता का अर्जन (Acquisition Of Citizenship Of Another Country) ___ 154
5.3. नागरिकता से वंचित किया जाना (Deprivation of Citizenship) ___ 154
6. दोहरी नागरिकता की अवधारणा (Concept Of Dual Citizenship) ___ 155
7. भारत में शरणार्थियों की स्थिति (Status Of Refugees In India) ___ 156
7.1. तिब्बती शरणार्थी ___ 156

7.1.1. विधिक दर्जा _____ 156

7.2. श्रीलंकाई शरणार्थी _____ 157

7.3. भूटानी शरणार्थी _____ 157

7.3.1 कानूनी दर्जा _____ 158

7.4. हिंदू पाकिस्तानी शरणार्थी _____ 158

7.5. बर्मी शरणार्थी _____ 159

7.5.1. रोहिंग्या _____ 159

7.5.2. चकमा तथा हाजोंग _____ 160

7.6. फिलीस्तीनी शरणार्थी _____ 160

7.7. अफगान शरणार्थी _____ 160

8. प्रवासी भारतीय दिवस _____ 161

8.1. भारतीय प्रवासी दिवस के आयोजन का उद्देश्य _____ 161

8.2. प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय (Ministry of Overseas Indian Affairs: MOIA) _____ 161

9. वर्तमान मुद्दे _____ 162

9.1. नागरिकता का विचार: एक विश्लेषण _____ 162

9.2. राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (National Population Register) _____ 162

9.3. राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (National Register Of Citizens: NRC) _____ 166

10. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions) _____ 169

1. नागरिक - अर्थ

ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी में एक **नागरिक** को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है:

- एक राज्य या राष्ट्रमंडल में विधिक मान्यता प्राप्त व्यक्ति या निवासी।
- किसी कस्बे या शहर का एक निवासी।

नागरिक एक समाज या समुदाय (मूलतः एक कस्बे या शहर, लेकिन वर्तमान में सामान्यतः एक देश) का ऐसा सदस्य होता है जिसे राजनीतिक भागीदारी से संबंधित अधिकार प्राप्त हो। यह अधिकार **नागरिकता** कहलाता है।

2. परिचय

किसी राज्य का नागरिक वह व्यक्ति है जिसे राज्य या राजनीतिक समुदाय की पूर्ण सदस्यता प्राप्त होती है। किसी भी देश में व्यक्तियों के दो वर्ग होते हैं:

- नागरिक (citizens); एवं
- विदेशी (aliens)।

विदेशी व्यक्ति एवं साधारण निवासी, नागरिकों से अलग होते हैं क्योंकि वे उन अधिकारों का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाते जो पूर्ण सदस्यता धारण करने वाले नागरिकों हेतु सुलभ होते हैं।

उदाहरण के लिए, नागरिक मतदान कर सकते हैं और प्रतिनिधि कार्यालयों की पूर्ण सेवाएं प्राप्त कर सकते हैं (जैसे- संसद सदस्यता धारण करना, निर्वाचन प्रक्रिया में भाग लेना इत्यादि), जबकि विदेशी व्यक्तियों को ये अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं।

विदेशी व्यक्ति दो प्रकार के हो सकते हैं:

- मित्र देश के व्यक्ति; तथा
- शत्रु देश के व्यक्ति।

हालाँकि, शत्रु देश के नागरिक कुछ ऐसे अधिकारों से वंचित होते हैं जो मित्र देश के नागरिकों (विदेशी) के लिए सुलभ होते हैं।

इसके अतिरिक्त, **भारत के नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार** प्राप्त हैं, जो **विदेशियों को प्राप्त नहीं हैं**:

- कुछ मूल अधिकार केवल नागरिकों के लिए हैं। उदाहरणार्थ- **अनुच्छेद** 15, 16, 19, 29, तथा 30
- **कुछ पदों पर केवल नागरिक ही नियुक्त** हो सकते हैं, जैसे- राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, महान्यायवादी, किसी राज्य का राज्यपाल, महाधिवक्ता आदि।
- लोकसभा तथा राज्य विधान-सभाओं के सदस्यों के निर्वाचन हेतु **चुनाव में मतदान करने तथा सांसद/विधायक के रूप में निर्वाचित होने का अधिकार** केवल नागरिकों को ही प्राप्त है।

भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO) से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसे किसी अन्य राष्ट्र की नागरिकता प्राप्त है। उसे अनिवासी भारतीय (NRI) के समान नागरिक नहीं माना जाता।

नागरिकता से संबंधित प्रावधान भारत के संविधान के **भाग-2** में **अनुच्छेद 5 से 11** में निहित हैं। **नागरिकता अधिनियम, 1955** भारतीय नागरिकता के अर्जन, निर्धारण तथा पर्यवसान (termination) आदि विषयों से संबंधित है।

- यह **जन्म, वंश, पंजीकरण (रजिस्ट्रीकरण)** तथा **देशीयकरण** के आधार पर भारतीय नागरिकता के अर्जन के लिए प्रावधान करता है।

- **अधिनियम की धारा 2(b)** के अनुसार- "किसी देश के संदर्भ में प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट नागरिक से तात्पर्य तत्समय उस देश में नागरिकता या राष्ट्रीयता से संबंधित किसी विधि (जो प्रवर्तन में है) के अंतर्गत नागरिक होने से है।
    - यहाँ उल्लिखित प्रथम अनुसूची को नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003, द्वारा हटा दिया गया है।
- भारतीय कानून के अनुसार, नागरिकों के अतिरिक्त व्यक्तियों की कुछ अन्य श्रेणियाँ भी हैं, जो निम्नलिखित हैं:

2.1. अनिवासी भारतीय (Non-Resident Indian: NRI)

एक NRI, सामान्यतः **भारत से बाहर निवास करने वाला तथा भारतीय पासपोर्ट धारक** व्यक्ति होता है। भारतीय विधि के अनुसार, निवासी वह व्यक्ति होता है जो देश में कुछ निश्चित दिनों तक (विगत वर्ष में कम से कम 182 दिन) निवास करता है, जबकि NRIs भारतीय नागरिक तो होते हैं परंतु देश में कुछ निश्चित दिनों तक निवास करने संबंधी शर्त को पूरा नहीं करते हैं।

2.2. भारतीय मूल के व्यक्ति (Person of Indian Origin: PIO)

वह व्यक्ति जो स्वयं या उसके पूर्वज भारत के नागरिक रहे हैं किंतु, वर्तमान में वह किसी अन्य देश की नागरिकता/राष्ट्रीयता धारण कर चुका है अर्थात् वह विदेशी पासपोर्ट धारक है अथवा वह व्यक्ति जो कभी भारतीय पासपोर्ट धारण करता था; या वह या उसके माता-पिता या पितामह-पितामही में से किसी का ऐसे क्षेत्र में जन्म हुआ है या वे उस क्षेत्र के स्थायी निवासी रहे हो जो भारत शासन अधिनियम, 1935 द्वारा परिभाषित हो और किसी ऐसे क्षेत्र (बशर्ते कि वे किसी भी समय अफगानिस्तान, भूटान, चीन, नेपाल के नागरिक न रहे हो) का निवासी रहा है जो बाद में भारत का भाग बन गया हो; अथवा भारत के नागरिक या भारतीय मूल के व्यक्ति का जीवनसाथी PIO कार्ड के लिए आवेदन करने हेतु पात्र हैं।

ध्यातव्य है कि जो व्यक्ति **पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान अफ़गानिस्तान व चीन के नागरिक हैं या कभी रहे हैं, वे PIO वर्ग में शामिल नहीं** हो सकते। भारत सरकार चाहे तो इस निषेधात्मक सूची में कुछ और देशों का नाम भी जोड़ सकती है। भारतीय मूल के व्यक्तियों को वर्ष 2002 में एक कार्ड जारी करने की प्रक्रिया शुरु की गई थी जिसे PIO कार्ड या भारतवंशी कार्ड कहा जाता है। PIO कार्ड धारक निम्नलिखित सुविधाएं प्राप्त करने के हकदार हैं:

लाभ

- भारत की यात्रा करने के लिए अलग से वीजा की आवश्यकता नहीं।
- भारत में एकल यात्रा के दौरान 180 दिनों से अनधिक अवधि तक यात्रा के लिए पंजीकरण की आवश्यकता नहीं।
- भारत में निरंतर 180 दिनों की अवधि से अधिक के प्रवास की स्थिति में उन्हें इस अवधि के समाप्त होने के 30 दिनों के भीतर संबंधित विदेशी क्षेत्रीय पंजीकरण अधिकारी या विदेशी पंजीकरण अधिकारी (FRRO/FRO) के पास पंजीकरण कराना आवश्यक होगा।
- **अनिवासी भारतीयों को प्राप्त लगभग सभी आर्थिक, वित्तीय तथा शैक्षिक सुविधाएं इन्हें भी** प्रदान की गई हैं। परंतु **कुछ अपवाद** भी हैं, यथा-
    - वे **कृषि/बागान संपत्तियों** की खरीद नहीं कर सकते; तथा,
    - **राजनीतिक अधिकारों** के क्षेत्र में इन्हें NRIs के समान समानता से वंचित किया गया है।

- कार्ड जारी होने पर PIO कार्ड धारक व्यक्ति पंद्रह वर्षों के लिए बिना वीजा के भारत की यात्रा कर सकता है। उसे अपने प्रवास के दौरान स्थानीय पुलिस अधिकारी के यहाँ पंजीकरण की आवश्यकता तब होगी जब वह पहली बार 180 दिनों से अधिक की अवधि के लिए भारत में निवास करता है।
- नागरिकता अधिनियम की धारा 5(1)(a) एवं 5(1)(c) के अनुसार, एक **PIO कार्ड धारक को भारतीय नागरिकता प्राप्त** करने के लिए आवेदन करने से पूर्व **कम से कम 7 वर्ष के लिए भारत में निवास करना आवश्यक** होगा।

2.3. प्रवासी भारतीय नागरिक (Overseas Citizen of India: OCI)

- नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 7(A) के तहत एक व्यक्ति OCI के रूप में पंजीकृत हो सकता है। OCI योजना 02-12-2005 से लागू है।
- कोई विदेशी नागरिक, जो 26 जनवरी 1950 को भारत का नागरिक बनने हेतु पात्र था या 26 जनवरी 1950 या इसके पश्चात् भारत का नागरिक था या किसी भी समय भारत का नागरिक था या 15 अगस्त 1947 के पश्चात् भारत का हिस्सा बने क्षेत्र में निवासित था; वह तथा उसके बच्चे और पौत्र-पोती (ग्रैंडचिल्ड्रेन) OCI के रूप में पंजीकृत होने के पात्र हैं, बशर्ते संबंधित देश के नागरिकता संबंधी कानूनों के तहत दोहरी नागरिकता की अनुमति प्राप्त हो।

OCI निम्नलिखित लाभ प्राप्त करने के हकदार हैं:

- भारत की यात्रा हेतु बहु-प्रवेश, बहु-उद्देशीय आजीवन वीजा।
- असीमित अवधि हेतु भारत में निवास करने हेतु स्थानीय पुलिस के पास पंजीकृत होने से छूट।
- आर्थिक, वित्तीय व शैक्षिक क्षेत्र में अनिवासी भारतीयों (NRIs) के साथ समता, परंतु कुछ अपवाद भी हैं, यथा-
    - वे कृषि/बागान संपत्तियों की खरीद नहीं कर सकते; एवं
    - राजनीतिक अधिकारों के क्षेत्र में इन्हें NRIs के समान समानता से वंचित किया गया है।।

2.3.1. PIO तथा OCI का विलय

वर्ष 2015 में, PIO और OCI योजनाओं के विलय के लिए नागरिकता अधिनियम, 1955 को संशोधित किया गया था।

विलय के लाभ

- एकल प्रावधान के अंतर्गत नियमों का सरलीकरण।
- PIO कार्डधारक अब उन लाभों के लिए पात्र हैं, जिनका OCI कार्डधारकों द्वारा पहले से ही उपभोग किया जा रहा है।
- भारत में वीजा मुक्त यात्रा, निवास के अधिकार और देश में व्यावसायिक एवं शैक्षिक गतिविधियों में भागीदारी की सुविधा।
- PIOs के लिए स्थानीय पुलिस स्टेशन में पंजीकरण कराने और कठोर वीज़ा मानदंडों की समस्या को हल करेगा, जिन्होंने उन्हें भारत में संपत्ति खरीदने से वंचित किया हुआ था। OCI कार्ड धारकों को यह सुविधा पहले से ही प्राप्त है।
- यह भारतीयों से शादी करने वाले विदेशियों के लिए उस प्रावधान को भी समाप्त करेगा जिसके अंतर्गत भारतीय नागरिकता प्राप्त करने से पहले उनको देश में एक वर्ष तक लगातार रहना अनिवार्य किया गया था।
- यह विदेशियों को एक वर्ष में 30 दिन की राहत देगा जब वे देश के बाहर यात्रा कर सकते हैं।

3. संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions)

3.1. अनुच्छेद 5

संविधान के प्रारंभ पर नागरिकता: इस संविधान के प्रारंभ पर प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत के राज्यक्षेत्र में अधिवास है और -

(क) जो भारत के राज्य-क्षेत्र में जन्मा था, या

(ख) जिसके माता या पिता में से कोई भारत के राज्य-क्षेत्र में जन्मा था, या

(ग) जो संविधान के प्रारंभ होने के कम से कम पांच वर्ष पूर्व से भारत के राज्य-क्षेत्र का निवासी रहा हो, भारत का नागरिक होगा।

3.2. अनुच्छेद 6

पाकिस्तान से भारत को प्रव्रजन करने वाले कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार: अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति जिसने ऐसे राज्यक्षेत्र से जो इस समय पाकिस्तान के अंतर्गत है, भारत के राज्यक्षेत्र में प्रव्रजन किया है, इस संविधान के प्रारंभ पर भारत का नागरिक माना जाएगा -

(क) यदि वह या उसके माता-पिता में से कोई अथवा उसके पितामह या पितामही या मातामह या मातामही में से कोई (मूल रूप में यथा अधिनियमित) भारत शासन अधिनियम, 1935 में परिभाषित भारत में जन्मा था, और

(ख) (i) जबकि वह व्यक्ति ऐसा है जिसने 19 जुलाई 1948 से पूर्व इस प्रकार प्रवजन किया है तब यदि वह अपने प्रवजन की तिथि से भारत के राज्यक्षेत्र में मामूली तौर से निवासी रहा है, या

(ii) यदि उस व्यक्ति ने 19 जुलाई 1948 को या उसके पश्चात् इस प्रकार प्रवजन किया है तब यदि वह नागरिकता प्राप्ति के लिए भारत की डोमिनियन सरकार द्वारा विहित प्रारूप में और रीति से उसके द्वारा इस संविधान के प्रारंभ से पहले ऐसे अधिकारी को, जिसे उस सरकार ने इस प्रयोजन के लिए नियुक्त किया है, आवेदन किए जाने पर उस अधिकारी द्वारा भारत का नागरिक पंजीकृत कर लिया गया है:

परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपने आवेदन की तिथि से ठीक पूर्व कम से कम छः माह भारत के राज्यक्षेत्र में निवासी नहीं रहा है तो वह इस प्रकार पंजीकृत नहीं किया जाएगा।

3.3. अनुच्छेद 7

पाकिस्तान को प्रव्रजन करने वाले कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार: अनुच्छेद 5 और अनुच्छेद 6 में किसी प्रावधान के होते हुए भी, कोई व्यक्ति जिसने 1 मार्च 1947 के पश्चात् भारत के राज्यक्षेत्र से ऐसे राज्यक्षेत्र को प्रव्रजन किया है, जो इस समय पाकिस्तान के अंतर्गत है, भारत का नागरिक नहीं समझा जाएगा।

परन्तु इस अनुच्छेद की कोई बात ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होंगे जो ऐसे राज्यक्षेत्र को, जो इस समय पाकिस्तान के अंतर्गत है, प्रवजन करने के पश्चात् भारत के राज्यक्षेत्र में ऐसी अनुज्ञा के अधीन लौट आया है जो पुनर्वास के लिए या स्थायी रूप से लौटने के लिए किसी विधि के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन दी गई है। साथ ही, प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के बारे में अनुच्छेद 6 के खंड (ख) के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि उसने भारत के राज्यक्षेत्र में 19 जुलाई 1948 के पश्चात् प्रव्रजन किया है।

3.4. अनुच्छेद 8

भारत के बाहर रहने वाले भारतीय मूल के कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार: अनुच्छेद 5 में किसी प्रावधान के होते हुए भी, कोई व्यक्ति या जिसके माता या पिता में से कोई अथवा पितामह या पितामही या मातामह या मातामही में से कोई (मूल रूप से यथा अधिनियमित) भारत शासन अधिनियम, 1935 में परिभाषित भारत का जन्मा था और जो इस प्रकार परिभाषित भारत के बाहर किसी देश में मामूली तौर से निवास कर रहा है, भारत का नागरिक समझा जाएगा, यदि वह नागरिकता प्राप्ति के लिए भारत डोमिनियन की सरकार द्वारा या भारत सरकार द्वारा विहित प्ररूप में और रीति से अपने द्वारा उस देश में, जहाँ वह तत्समय निवास कर रहा है, भारत के राजनयिक या कांसुलर प्रतिनिधि को इस संविधान के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् आवेदन किए जाने पर ऐसे राजनयिक या कांसुलर प्रतिनिधि द्वारा भारत का नागरिक पंजीकृत कर लिया गया हो।

3.5. अनुच्छेद 9

विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित करने वाले व्यक्तियों का नागरिक न होना: यदि किसी व्यक्ति ने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है तो वह अनुच्छेद 5 के आधार पर भारत का नागरिक नहीं होगा अथवा अनुच्छेद 6 या अनुच्छेद 8 के आधार पर भारत का नागरिक नहीं समझा जाएगा।

3.6. अनुच्छेद 10

नागरिकता के अधिकारों का बना रहना: प्रत्येक व्यक्ति, जो इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में से किसी के अधीन भारत का नागरिक है या समझा जाता है, संसद द्वारा निर्मित ऐसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, भारत का नागरिक बना रहेगा।

3.7. अनुच्छेद 11

संसद द्वारा नागरिकता के अधिकार का विधि द्वारा विनियमन किया जाना: इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों की कोई बात नागरिकता के अर्जन एवं समाप्ति तथा नागरिकता से संबंधित अन्य सभी विषयों के संबंध में उपबंध करने की संसद की शक्ति का अल्पीकरण नहीं करेगी।

4. नागरिकता का अर्जन और पर्यवसान (समाप्ति) (Acquisition & Termination of Citizenship)

भारत में नागरिकता के अर्जन और समाप्ति के विधिक प्रावधान **नागरिकता अधिनियम, 1955** में निहित हैं। यह भारतीय कानून निम्नलिखित तरीकों से नागरिकता प्राप्ति का वर्णन करता है:

- जन्म द्वारा (By Birth);
- उद्भव द्वारा (वंश के आधार पर) (By Descent);
- पंजीकरण द्वारा (By Registration);
- देशीयकरण द्वारा (By Naturalization); तथा
- राज्यक्षेत्र के सम्मिलित किए जाने पर (By acquisition of territory)।

4.1. जन्म से नागरिकता (धारा 3)

{Citizenship by Birth (Section 3)}

- भारत में 26 जनवरी 1950 को या उसके पश्चात् परन्तु 1 जुलाई 1987 से पूर्व जन्मा व्यक्ति जन्म से भारत का नागरिक होगा, भले ही उसके माता-पिता की राष्ट्रीयता कुछ भी हो।
- भारत में 1 जुलाई 1987 को या उसके पश्चात् परन्तु 3 दिसम्बर 2004 {नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के लागू होने की तिथि} से पूर्व जन्मा व्यक्ति केवल तभी भारत का नागरिक माना जाएगा, यदि उसके जन्म के समय उसके माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक हो।

- यदि किसी व्यक्ति का जन्म 3 दिसंबर 2004 को या उसके पश्चात् भारत में हुआ है, तो वह उसी दशा में जन्म से भारत का नागरिक माना जाएगा, यदि उसके माता-पिता दोनों उसके जन्म के समय भारत के नागरिक हों अथवा माता या पिता में से कोई एक उस समय भारत का नागरिक हो तथा दूसरा अवैध प्रवासी न हो।
- इस खंड के आधार पर एक व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं माना जाएगा, यदि उसके जन्म के समय-
  - उसके पिता या माता को, वादों या वैध आदेशिका में ऐसी उन्मुक्ति प्राप्त हो जैसी भारत के राष्ट्रपति को प्रत्यायोजित अन्य संप्रभु देश के राजनयिकों को प्राप्त होती है और वह, यथास्थिति, भारत का नागरिक नहीं है; या
  - उसके पिता या माता कोई अन्य देशीय शत्रु हैं और उसका जन्म किसी ऐसे स्थान पर हुआ हो जो उस समय शत्रु के कब्जे के अंतर्गत हो।

- एक **"अवैध प्रवासी" (illegal migrant),** जैसा कि अधिनियम की धारा 2(1)(b) में परिभाषित किया गया है, एक विदेशी है, जो भारत में प्रवेश करता है:
  - एक वैध पासपोर्ट या अन्य निर्धारित यात्रा दस्तावेजों के बिना; या
  - एक वैध पासपोर्ट या अन्य निर्धारित यात्रा दस्तावेजों के साथ, लेकिन भारत में उस समयावधि से अतिरिक्त समय तक रहता है जितनी अवधि के लिए अनुमति दी गई थी।

4.2. उद्भव/वंश के आधार पर नागरिकता (धारा 4)

{Citizenship by Descent (Section 4)}

- कोई व्यक्ति जिसका जन्म 26 जनवरी 1950 को या उसके पश्चात् परन्तु 10 दिसम्बर 1992 से पूर्व भारत के बाहर हुआ हो, वह वंश (उद्भव) के आधार पर भारत का नागरिक माना जाएगा, यदि उसके जन्म के समय उसका पिता जन्म से भारत का नागरिक हो।
  - उसका पिता केवल वंश (उद्भव) के आधार पर भारत का नागरिक हो, तो वह व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं माना जाएगा, जब तक कि उसके जन्म होने के एक वर्ष के अंदर या इस अधिनियम के प्रारंभ में जो कोई भी बाद का हो, या कथित कालावधि की समाप्ति के पश्चात् केंद्र सरकार की अनुज्ञा से एक भारतीय वाणिज्यिक दूतावास में रजिस्ट्रीकृत कराया जाता है।
- कोई व्यक्ति जिसका जन्म 10 दिसंबर 1992 को या उसके पश्चात् परन्तु 3 दिसंबर 2004 के पूर्व भारत के बाहर हुआ हो, उसे भारत के नागरिक के रूप में माना जाएगा, यदि उसके जन्म के समय उसके माता या पिता में से कोई जन्म से, भारत का नागरिक हो।
  - यदि उसका माता या पिता केवल वंश (उद्भव) के आधार पर भारत के नागरिक हों, तो वह व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं माना जाएगा, जब तक कि उसके जन्म होने के एक वर्ष के अंदर या इस अधिनियम के प्रारंभ में जो कोई भी बाद का हो, या कथित कालावधि की समाप्ति के पश्चात् केंद्र सरकार की अनुज्ञा से एक भारतीय वाणिज्यिक दूतावास में रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया जाता है।
- 3 दिसंबर 2004 को या उसके पश्चात् भारत से बाहर जन्मा कोई व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं होगा, जब तक बच्चे के माता-पिता आवेदन पत्र में घोषित न करें कि बच्चे के पास किसी अन्य देश का पासपोर्ट नहीं है और जन्म होने के एक वर्ष के अंदर या इस अधिनियम के प्रारंभ में जो कोई भी बाद का हो, या कथित कालावधि की समाप्ति के पश्चात् केंद्र सरकार की अनुज्ञा से एक भारतीय वाणिज्यिक दूतावास में रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया जाता है।

4.3. पंजीकरण द्वारा नागरिकता {धारा 5 (1)}

[Citizenship by Registration {Section 5(1)}]

पंजीकरण (रजिस्ट्रीकरण) द्वारा किसी व्यक्ति (अवैध प्रवासी न हो) को भारत की नागरिकता निम्नलिखित तरीकों से प्राप्त हो सकती है:

- भारतीय मूल का व्यक्ति, जो नागरिकता प्राप्ति करने के लिए आवेदन करने से ठीक पूर्व **7 वर्षों** से भारत में रह रहा हो। (आवेदन करने से ठीक पूर्व 12 माह की अवधि तक लगातार और इस 12 माह की अवधि से पूर्व के 8 वर्षों में से 6 वर्ष भारत में निवास किया हो।)
- भारतीय मूल का वह व्यक्ति जो इस धारा के तहत वर्णित अविभाजित भारत के बाहर या किसी अन्य देश में अन्यत्र निवास कर रहा हो।
- वह व्यक्ति जिसने भारतीय नागरिक से विवाह किया हो और इस धारा के तहत पंजीकरण के लिए आवेदन करने से पूर्व **सात वर्षों** से भारत वर्ष में साधारण तौर पर निवास कर रहा हो।
- नाबालिग बच्चे, जिनके माता-पिता दोनों इस धारा के तहत भारत के नागरिक हों।
- पूर्ण आयु एवं सामर्थ्य का एक व्यक्ति जिसके माता-पिता दोनों भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत हों, भारत की नागरिकता प्राप्त कर सकता है।
- पूर्ण आयु एवं सामर्थ्य का एक व्यक्ति जो, या जिसके माता-पिता स्वतंत्र भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत थे या पंजीकरण के लिए आवेदन करने से ठीक पूर्व **एक वर्ष** से भारत में साधारण तौर पर निवास कर रहा हो।
- पूर्ण आयु एवं सामर्थ्य का एक व्यक्ति जो OCI के रूप में **पांच वर्ष** से पंजीकृत हो तथा पंजीकरण हेतु इस प्रकार का आवेदन करने से **एक वर्ष** पूर्व से भारत में निवास कर रहा हो।

एक व्यक्ति को भारतीय मूल का व्यक्ति (PIO) माना जाएगा, यदि उसका या उसके माता-पिता में से किसी एक का जन्म अविभाजित भारत में या 15 अगस्त 1947 के पश्चात् भारत का अंग बनने वाले किसी भू-क्षेत्र में हुआ हो।

4.4. देशीयकरण द्वारा नागरिकता (धारा 6)

{Citizenship by Naturalization (Section 6)}

देशीयकरण द्वारा भारत की नागरिकता एक विदेशी व्यक्ति (अवैध प्रवासी न हो) के द्वारा प्राप्त की जा सकती है, जो सामान्यत: 12 वर्षों (आवेदन की तिथि के ठीक पूर्व 12 महीने की अवधि से और इस 12 महीने की अवधि के पूर्व 14 वर्षों में से 11 वर्षों तक) से भारत का निवासी है और अधिनियम की तीसरी अनुसूची में निर्दिष्ट अन्य योग्यताओं को पूरा करता हो।

- जहाँ किसी वयस्क और पूर्ण सामर्थ्य वाले व्यक्ति, जो प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट किसी देश का नागरिक नहीं है, द्वारा निर्धारित रीति से देशीयकरण द्वारा नागरिकता के लिए आवेदन किया जाता है, वहाँ यदि केंद्र सरकार संतुष्ट हो जाती है कि आवेदक तीसरी अनुसूची के प्रावधानों के तहत देशीयकरण द्वारा नागरिकता के लिए अर्हित है, तो उसे देशीयकरण द्वारा नागरिकता का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जा सकता है।
- हालांकि, यदि केंद्र सरकार की राय में आवेदक एक ऐसा व्यक्ति हो, जिसके द्वारा विज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य, विश्व शांति या मानव प्रगति के लिए प्रतिष्ठित सेवाएं प्रदान की गई हैं, तो सरकार द्वारा नागरिकता अधिनियम, 1955 की तीसरी अनुसूची में निर्दिष्ट सभी या किसी भी शर्त को हटाया जा सकता है।

- जिस व्यक्ति को देशीयकरण द्वारा नागरिकता का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाता है, उसे नागरिकता अधिनियम की दूसरी अनुसूची में निर्दिष्ट फॉर्म में भारत के संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी होगी और प्रमाण-पत्र की स्वीकृति की तिथि से देशीयकरण द्वारा भारत का नागरिक माना जाएगा।

4.5. राज्यक्षेत्र के सम्मिलित किए जाने पर पर नागरिकता

(Citizenship by Incorporation of Territory)

यदि कोई भी क्षेत्र भारत का हिस्सा बन जाता है, तो केंद्र सरकार, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचित आदेश द्वारा उन व्यक्तियों को अधिसूचित कर सकती है जिन्हें उस क्षेत्र से संबंधित होने के कारण भारत का नागरिक माना जाएगा; और इस प्रकार आदेश में निर्दिष्ट तिथि से ही उन लोगों को भारत का नागरिक माना जाएगा।

5. नागरिकता का स्वैच्छिक त्यजन (Renunciation of Citizenship)

नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 8 में नागरिकता के स्वैच्छिक त्यजन से संबंधित प्रावधान अन्तर्निहित हैं:

- यदि भारत का कोई भी वयस्क और पूर्ण सामर्थ्य वाला नागरिक, जो किसी अन्य देश का भी नागरिक या राष्ट्रिक है; और जो अपनी भारतीय नागरिकता के त्यजन की घोषणा विहित रीति से करता है, तो वह घोषणा विहित प्राधिकारी द्वारा पंजीकृत की जाएगी; और ऐसे पंजीकरण पर वह व्यक्ति भारतीय नागरिक नहीं रह जाएगा।
  - परंतु यदि ऐसी कोई घोषणा किसी ऐसे युद्ध के दौरान की जाती है जिसमें भारत भी युद्ध में संलग्न है, तो ऐसे पंजीकरण पर रोक लगा दी जाएगी, जब तक कि केंद्र सरकार अन्यथा कोई निर्देश न दे।
- यदि किसी व्यक्ति की भारत की नागरिकता समाप्त हो जाती है तो उस व्यक्ति के प्रत्येक नाबालिग बच्चे की नागरिकता भी समाप्त हो जाएगी। हालांकि, ऐसा कोई बच्चा वयस्क (18 वर्ष की आयु) होने के पश्चात् एक वर्ष के भीतर यह घोषणा करे कि वह भारत की नागरिकता पुनःग्रहण करना चाहता है, तो ऐसी घोषणा के पश्चात् वह फिर से भारत का नागरिक बन जाएगा।
- इस खंड के प्रयोजन के लिए, कोई महिला जो शादीशुदा है, या रही है, उसे पूर्ण आयु (वयस्क) का माना जाएगा।

5.1. नागरिकता का पर्यवसान (समाप्ति) (Termination of Citizenship)

नागरिकता वस्तुतः त्यजन (renunciation) या अन्य देश की नागरिकता ग्रहण करने से समाप्त हो सकती है। नागरिकता के पर्यवसान (समाप्ति) संबंधी प्रावधान, नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 9 में अन्तर्निहित हैं।

- अधिनियम की धारा 9(1) में प्रावधान है कि भारत का कोई भी नागरिक जो देशीयकरण या पंजीकरण द्वारा स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता अर्जित कर ले, वह भारत का नागरिक नहीं रह जाएगा।

5.2. दूसरे देश की नागरिकता का अर्जन (Acquisition Of Citizenship Of Another Country)

- भारत का कोई भी नागरिक जिसने देशीयकरण, पंजीकरण द्वारा या अन्यथा स्वेच्छा से, या 26 जनवरी 1950 से इस अधिनियम के लागू होने के बीच किसी भी समय स्वैच्छिक रूप से किसी दूसरे देश की नागरिकता अर्जित की है, वह भारत का नागरिक नहीं रहेगा।
- हालांकि, यह प्रावधान किसी ऐसे युद्ध, जिसमें भारत भी संलग्न है, के दौरान स्वैच्छिक रूप से किसी दूसरे देश की नागरिकता अर्जित करने वाले भारतीय नागरिक पर लागू नहीं होता है, जब तक कि केंद्र सरकार अन्यथा कोई निर्देश न दे।
- यदि यह प्रश्न उठता है कि क्या, कब या कैसे किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे देश की नागरिकता अर्जित की गयी है, तो इसका निर्धारण उल्लिखित नियमों को ध्यान में रखते हुए, इसके लिए निर्दिष्ट प्राधिकरण द्वारा निर्धारित रीति से और समुचित प्रमाणन के उपरांत किया जाएगा।
- किसी दूसरे देश का पासपोर्ट ग्रहण करना भी नागरिकता नियम, 1956 के तहत किसी दूसरे देश की राष्ट्रीयता का स्वैच्छिक ग्रहण माना जाता है।
- नागरिकता नियम, 1956 की अनुसूची III के नियम 3 में निर्दिष्ट है कि **"यह तथ्य कि भारत के किसी नागरिक द्वारा किसी भी अन्य देश की सरकार की ओर से किसी भी तिथि को पासपोर्ट प्राप्त किया गया है, उसके पास उस तिथि से पूर्व उस देश की नागरिकता ग्रहण करने का निर्णायक प्रमाण होगा"।**

5.3. नागरिकता से वंचित किया जाना (Deprivation of Citizenship)

भारतीय नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 10 के तहत केंद्र सरकार किसी भी नागरिक को भारतीय नागरिकता से वंचित कर सकती है, यदि वह संतुष्ट है कि:

- पंजीकरण या देशीयकरण द्वारा नागरिकता का प्रमाण-पत्र धोखाधड़ी, फर्जी निरूपण या किसी तथ्य को छिपाकर प्राप्त किया गया हो; या
- किसी नागरिक ने अपने कृत्य या वक्तव्य द्वारा या विधि द्वारा यथा स्थापित भारत के संविधान के प्रति अनादर या असंतुष्टि प्रदर्शित की है; या
- यदि किसी नागरिक ने युद्ध के दौरान, जिसमें भारत संलग्न है, शत्रु देश के साथ गैर-क़ानूनी रूप से संबंध स्थापित किया है या संचार किया है या वह किसी ऐसे कृत में संलग्न रहा है जिसके बारे में उसे यह ज्ञान था कि उससे शत्रु देश को सहायता मिल सकती है; या
- वह नागरिक पंजीकरण या देशीयकरण के पश्चात् 5 वर्ष के भीतर किसी अन्य देश में 2 वर्ष से अधिक अवधि के लिए कारावास की सजा प्राप्त करता है; या
- वह नागरिक सामान्य रूप से 7 वर्ष की निरंतर अवधि से भारत के बाहर निवास कर रहा हो और इस अवधि के दौरान भारत के बाहर वह कभी भी किसी शैक्षणिक संस्थान का छात्र नहीं रहा हो या भारत सरकार की सेवा में नहीं रहा हो या भारत की सदस्यता वाले किसी अंतर्राष्ट्रीय संगठन में सेवारत नहीं रहा हो और न ही भारत की नागरिकता बनाए रखने के अपने मंतव्य के संदर्भ में निर्धारित तरीके से भारतीय कौन्सलेट में प्रतिवर्ष विहित रीति से पंजीकरण कराया हो; या
    - केंद्र सरकार द्वारा किसी नागरिक को नागरिकता से तब तक वंचित नहीं किया जा सकता है जब तक कि यह समाधान नहीं हो जाता कि अमुक व्यक्ति की भारतीय नागरिकता जारी रखना सार्वजनिक हित के प्रतिकूल है।

6. दोहरी नागरिकता की अवधारणा (Concept Of Dual Citizenship)

सामान्यतः नागरिकता को कुछ सामान्य कारकों के आधार पर परिभाषित किया जाता है। कोई व्यक्ति किसी देश का नागरिक निम्नलिखित एक या एक से अधिक तरीकों से बन सकता है:

- **"जन्म के आधार पर (Right of the Soil)"** - यदि उसका जन्म उस देश के राज्य-क्षेत्र (सीमाओं के भीतर) में हुआ हो।
- **"वंश के आधार पर (Right of Blood)"**- यदि उसके माता-पिता में से कोई एक या दोनों देश के नागरिक हों।
- **विवाह के आधार पर (By Marriage)** - यदि उसने ऐसे व्यक्ति से विवाह किया है जो कि उस देश का नागरिक है। (यह एक स्वतः प्रक्रिया नहीं है अर्थात् व्यक्ति को नागरिकता के लिए आवेदन करने की आवश्यकता होती है।)
- **देशीयकरण के आधार पर (Naturalization)** - यदि वह देशीयकरण की विधिक प्रक्रिया के माध्यम से देश की नागरिकता प्राप्त करता है।

किसी देश की नागरिकता प्राप्त करने के विभिन्न तरीके हैं। किसी भी व्यक्ति के लिए यह संभव है कि उसे एक ही समय में दो या दो से अधिक देशों के कानूनों के तहत एक नागरिक माना जा सकता है। यह दोहरी नागरिकता है।

दोहरी नागरिकता का अर्थ है - एक ही समय में दो देशों का नागरिक होना। दोहरी नागरिकता वाले व्यक्ति के दो पासपोर्ट हो सकते हैं तथा वे अपने मूल (native) और देशीयकृत राष्ट्रों में स्वतंत्र रूप से निवास कर सकते है, कार्य एवं यात्रा कर सकते हैं। कुछ देशों में दोहरी नागरिकता की अनुमति नहीं है। पुनः दक्षिण कोरिया और अमेरिका की नागरिकता एक साथ धारण नहीं की जा सकती।

दिसंबर 2003 में भारतीय संसद ने भारतीय मूल के लोगों को प्रवासी भारतीय नागरिकता (OCI) प्रदान करने के लिए एक विधेयक पारित किया। OCI योजना 2 दिसंबर 2005 से लागू हुई थी। भारतीय संविधान में एक साथ भारतीय नागरिकता एवं किसी अन्य देश की नागरिकता धारण करने (अर्थात् दोहरी नागरिकता) की अनुमति प्राप्त नहीं है।

भारतीय डायसपोरा पर उच्च-स्तरीय समिति की रिपोर्ट की सिफारिश के आधार पर भारत सरकार ने प्रवासी भारतीय नागरिकता (OCI) प्रदान करने का निर्णय लिया, जिसे सामान्यतया **'दोहरी नागरिकता'** के रूप में जाना जाता है।

जिस विधि के तहत भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO) {जो भारत से प्रवास कर विदेश में बस गए हैं और किसी अन्य देश (पाकिस्तान और बांग्लादेश को छोड़कर) की नागरिकता प्राप्त कर ली है} कुछ लाभों के लिए पात्र हैं, उसी विधि के तहत भारत सरकार, प्रवासी भारतीय नागरिक (OCI) का दर्जा प्रदान करती है अर्थात् "यदि उनके देश में किसी भी अन्य रूप में या उनके स्थानीय कानूनों के तहत दोहरी नागरिकता की अनुमति प्राप्त हैं"।

यह दर्जा/पात्रता भारत के नागरिक होने के समान नहीं है - भारत सरकार द्वारा जारी किए गए निर्देशों के अनुसार, ऐसे व्यक्ति को:

- भारतीय पासपोर्ट प्राप्त नहीं होता है;
- कोई मताधिकार प्राप्त नहीं होते हैं;
- चुनाव लड़ने या लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा या विधान-परिषद के लिए नामनिर्दिष्ट किए जाने का अधिकार नहीं होता है;
- राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जैसे संवैधानिक पद ग्रहण करने का अधिकार नहीं होता है।

7. भारत में शरणार्थियों की स्थिति (Status Of Refugees In India)

- भारत, न तो वर्ष 1951 के शरणार्थी अभिसमय और न ही वर्ष 1967 के इसके प्रोटोकॉल का पक्षकार देश है। भारत में शरणार्थियों से संबंधित विशिष्ट कानून के अभाव में सरकार को विविध प्रकार से शरणार्थियों के होने वाले प्रवेश के संदर्भ में तदर्थ दृष्टिकोण अपनाने पर बाध्य होना पड़ा है।
- भारत में शरणार्थियों की स्थिति को संहिताबद्ध मॉडल आचरण सहिंता के स्थान पर मुख्य रूप से राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णयों द्वारा नियंत्रित किया जाता है।
- सरकार के दृष्टिकोण की इस तदर्थ प्रकृति ने विभिन्न शरणार्थी समूहों के संदर्भ में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण अपनाने की प्रवृत्ति को प्रेरित किया है।
- कुछ समूहों को वैध निवास और वैध रूप से नियोजित होने की योग्यता सहित अन्य कई लाभ प्रदान किए गए हैं जबकि अन्य समूहों को गैर-कानूनी घोषित किया गया है और उन्हें मूलभूत सामाजिक संसाधनों का उपयोग करने से वंचित किया गया है।
- भारत में शरणार्थियों की वैधानिक स्थिति मुख्य रूप से **विदेशी विषयक अधिनियम, 1946** (Foreigners Act, 1946) और **नागरिकता अधिनियम, 1955** द्वारा विनियमित एवं नियंत्रित होती है। ये अधिनियम शरणार्थियों में भेद नहीं करते हैं और सभी गैर-नागरिकों के लिए समान रूप से लागू होते हैं।
- इन अधिनियमों के तहत बिना वैध यात्रा या निवास दस्तावेज़ों के भारत में उपस्थिति एक दंडनीय अपराध है। ये प्रावधान, शरणार्थियों को निर्वासन और निरोध के लिए उत्तरदायी बनाते हैं।
- द UNHCR चीफ ऑफ़ मिशन इन इंडिया का कार्यालय नई दिल्ली में अवस्थित है। एक बार मान्यता प्राप्त करने के पश्चात्, अफगानी, बर्मी, फिलिस्तीनी और सोमाली शरणार्थी UNHCR से सुरक्षा प्राप्त करते हैं।
- कई शरणार्थी, सामान्य मासिक गुजारा भत्ता प्राप्त करते हैं और सभी शरणार्थियों को दिल्ली में UNHCR के कार्यान्वयन भागीदारों, यथा- YMCA, डॉन बोस्कोव एवं सोशल-लीगल सेंटर (SLIC) द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं तक पहुँच प्राप्त होती है।
- भारत की अधिकांश शरणार्थी जनसंख्या UNHCR के अधिदेश के तहत शामिल नहीं है, परन्तु फिर भी सरकार द्वारा इन्हें शरणार्थी माना जाता है। ज्ञातव्य है कि 1,50,000 से अधिक तिब्बती और 90,000 से अधिक श्रीलंकाई लोगों ने हिंसा और उत्पीड़न से व्यथित होकर पलायन किया और भारत में शरण की मांग की है।
- इन समूहों को विविध प्रकार से शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और निवास जैसी सुविधाओं तक पहुँच प्राप्त करने में सहायता एवं सुविधा प्रदान की जाती है।

7.1. तिब्बती शरणार्थी

वर्ष 1951 में तिब्बत पर चीन के अचानक आक्रमण के पश्चात्, वर्ष 1959 और आगामी कई वर्षों में अनेक तिब्बतियों का भारत में निरंतर आगमन हुआ तथा उन्होंने भारत में शरण लिया। ज्ञातव्य है कि भारत में लगभग 1,50,000 तिब्बती शरणार्थी हैं।

7.1.1. विधिक दर्जा

शरणार्थियों की स्थिति से संबंधित संयुक्त राष्ट्र अभिसमय (1951) और 1967 के इसके प्रोटोकॉल का पक्षकार देश न होने के बावजूद भारत सरकार द्वारा तिब्बतियों को शरणार्थी का दर्जा प्रदान किया गया है, जो 1950 के दशक के अंत और 1960 के दशक के आरम्भ में भारत में आए थे।

- इन तिब्बती शरणार्थियों के लिए पंजीकरण प्रमाण-पत्र जारी किए गए हैं, जिसे वर्ष में एक या दो बार नवीनीकृत करवाना अनिवार्य है। भारत में जन्म लेने वाले तिब्बती भी 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् पंजीकरण प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के पात्र हैं।

- यद्यपि, वर्तमान में भी भारत सरकार द्वारा तिब्बतियों को देश में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान की जा रही है, तथापि सरकार ने नवीन तिब्बती शरणार्थियों को सर्वप्रथम (first wave) आए तिब्बतियों के समान विधिक दर्जा प्रदान नहीं किया है।
- तिब्बतियों को भारत में अन्य शरणार्थी समूहों की तुलना में अधिक अधिकार प्रदान किए गए हैं:
    - इन्हें निवास परमिट (residence permits) जारी किए गए हैं, जो उन्हें औपचारिक रोजगार की मांग करने का अधिकार प्रदान करता है।
    - ये एकमात्र शरणार्थी समूह हैं जिन्हें भारत सरकार द्वारा यात्रा परमिट प्रदान किया गया है।

7.2. श्रीलंकाई शरणार्थी

- भारत में श्रीलंकाई शरणार्थियों की विधिक स्थिति, आधिकारिक तौर पर विदेशी विषयक अधिनियम, 1946 और नागरिकता अधिनियम, 1955 द्वारा नियंत्रित होती है।
- उपर्युक्त अधिनियमों के तहत बगैर वीजा के भारत में प्रवेश करने वाले अवैध प्रवासी, शरणार्थी या शरण चाहने वाले सभी गैर-नागरिकों को परिभाषित किया गया है।
- वैसे श्रीलंकाई जिन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा माना जाता है, उन्हें उग्रवादी (militants) घोषित किया जाता है और इन्हें चेंगलापेट या वेल्लोर में अवस्थित 'विशेष शिविरों' में बंदी बनाया जाता है।
- सामान्यतया भारत सरकार द्वारा हिंसा के कारण अपना देश छोड़कर आए श्रीलंकाई लोगों को शरणार्थी के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है और तदनुसार उन्हें सुरक्षा प्रदान भी प्रदान की गयी है।

7.3. भूटानी शरणार्थी

- 20वीं सदी के आरम्भ में बड़ी संख्या में नेपाली लोगों ने भूटान में प्रवास करना आरंभ कर दिया था। 1980 के दशक तक इसकी संख्या भूटान की कुल जनसंख्या का लगभग एक चौथाई हो गई थी। 1980 के दशक के उत्तरार्ध में, भूटानी अधिकारियों ने भूटान में हिंदू नेपाली लोगों की बढ़ती संख्या को भूटान की नृजातीय पहचान के समक्ष एक स्पष्ट खतरा माना। इसके पश्चात्, नेपालियों को सरकारी सेवा से सबंधित नौकरियों, पदोन्नति प्राप्त करने और पासपोर्ट प्राप्त करने से रोकने के लिए कई भेदभावपूर्ण उपाय किए गए।
- इन उपायों के साथ-साथ, सरकार ने पारंपरिक संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए एक राष्ट्रीय अभियान की शुरुआत की। विद्यालयों में अन्य भाषा के रूप में नेपाली के शिक्षण पर प्रतिबंध लगा दिया गया तथा विद्यालयों एवं सरकारी अवसरों पर भूटानी राष्ट्रीय पोशाक पहनना अनिवार्य बना दिया गया। भूटान में नेपाली लोगों की संख्या निर्धारित करने के लिए 1980 के दशक में जनगणना की गयी।
- जनगणना के परिणामस्वरूप, नागरिकता अधिनियम, 1985 अधिनियमित किया गया, जिसके तहत भूटान की नागरिकता के लिए नई शर्तें लागू की गयी। इसके परिणामस्वरूप रातोंरात हिंदू नेपाली, बड़ी संख्या में अवैध निवासी बन गए। इनके लिए नागरिकता को पुनः प्राप्त करने का एकमात्र तरीका यह था कि इनके द्वारा भूटान में विगत वर्षों में अपने निवास स्थान को सिद्ध करना था।
- परिणामतः, कई देशीयकृत नागरिकों का दर्जा समाप्त हो गया। अधिनियम के तहत किसी भी देशीयकृत नागरिकों की नागरिकता समाप्त करने की अनुमति भी प्रदान की गई है, यदि उनके द्वारा राजा, देश या भूटान के लोगों के प्रति 'विश्वासघात (disloyal)' किया जाता है। उल्लेखनीय है कि हिंदू नेपाली लोगों की नागरिकता को समाप्त करने हेतु विश्वासघात शब्द का बार-बार उपयोग किया गया।

- विभिन्न प्रकार के प्रताड़नाओं के उपरांत अनेक नृजातीय नेपाली भूटान से निर्वासित होने पर विवश हुए और उनमें से कई लोगों ने असम तथा पश्चिम बंगाल में शरण लिया। उल्लेखनीय है कि भारत सरकार इन निर्वासित नेपाली लोगों को शरण देने हेतु इच्छुक नहीं थी जिसके कारण उनमें से कई लोगों ने पुनः नेपाल में प्रवेश किया तथा वहाँ से भारत आए, जबकि अनके लोग आज भी नेपाल के UNHCR के शिविर में रह रहे हैं।
- भारत में लगभग 30,000 नेपाली लोग निवास कर रहे हैं। इन लोगों के लिए, शरणार्थियों के रूप में मान्यता प्राप्त करना एक असंभव कार्य है।

7.3.1 कानूनी दर्जा

- वर्ष 1949 से भूटानी नागरिकों को बिना प्रतिबंध भारतीय सीमा में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान की गई है। एक संधि के माध्यम से भारत और नेपाल तथा भारत और भूटान के मध्य एक खुली सीमा का प्रावधान किया गया है। वर्ष 1949 में भारत एवं भूटान के मध्य हस्ताक्षरित ट्रीटी ऑफ़ फ्रेंडशिप एंड को-ऑपरेशन नामक संधि को अंतिम बार फरवरी 2007 में अद्यतित किया गया। भारत एवं भूटान के मध्य एक पारस्परिक व्यवस्था के अंतर्गत भूटान के नागरिकों के साथ समान व्यवहार किया जाता है और उन्हें कुछ विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं।
- पहचान पत्रों की आवश्यकता के बगैर निवास, अध्ययन और आजीविका के अधिकारों की गारंटी प्रदान की गई है। इस कारण से, भारत सरकार ने उन नेपाली-भूटानी शरणार्थियों को जो पलायन करने एवं शरणार्थी बनने के लिए बाध्य हैं, उन्हें मान्यता प्रदान नहीं की है तथा न ही किसी भी प्रकार की सहायता प्रदान की गई है। ज्ञातव्य है कि UNHCR द्वारा भूटानियों की स्थिति का निर्धारण नहीं किया जाता है। संभवतः इसका कारण दोनों देशों के मध्य **मैत्री संधि** का होना है।

7.4. हिंदू पाकिस्तानी शरणार्थी

- वर्ष 1965 के पश्चात् पाकिस्तान से बड़ी संख्या में विस्थापित लोग भारत में आए हैं। भारत सरकार द्वारा इस समूह को शरणार्थी समूह के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की गई है। इसके परिणामस्वरूप, वे निवास परमिट प्राप्त करने में असमर्थ हैं तथा उनके लिए रोजगार प्राप्त करना कठिन होता है।
- हालांकि, भारतीय संविधान एवं नागरिकता अधिनियम, 1955 उन व्यक्तियों को भारतीय नागरिकता के अर्जन हेतु आवेदन करने के लिए विशेष प्रावधान करते हैं, जिनका या जिनके माता-पिता का जन्म अविभाजित भारत में हुआ था।
- नागरिकता (संशोधन) नियम, 2004 विशेष रूप से पाकिस्तानी अल्पसंख्यक नागरिकों को गुजरात और राजस्थान में नागरिकता हेतु आवेदन करने की व्यवस्था प्रदान करता है। इस हेतु शर्त यह है कि ऐसे व्यक्ति को भारत में लगातार 5 वर्ष से निवासी होना चाहिए और उसके स्थायी रूप से भारत में बसने की मंशा होनी चाहिए, जबकि अन्य विदेशियों को नागरिकता के लिए आवेदन करने के मामले में 12 वर्ष की निवास अनिवार्यता संबंधी प्रावधान है।
- इस कानून के परिणामस्वरूप, वर्ष 2005 एवं 2006 के मध्य भारत सरकार द्वारा लगभग 13,000 हिंदू पाकिस्तानियों को भारतीय नागरिकता प्रदान की गई है। पाकिस्तानी शरणार्थियों को भारतीय नागरिकता प्राप्त होने के पश्चात् उन्हें भारतीय नागरिकों के समान अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।
- हालांकि, वर्ष 2005 में नागरिकता अधिनियम में हुए संशोधन के माध्यम से नागरिकता के लिए आवेदन संबंधी शुल्क व्यवस्था में अत्यधिक वृद्धि की गयी है।

7.5. बर्मी शरणार्थी

* अधिकांश बर्मी पूर्वोत्तर क्षेत्र से भारत में प्रवेश करते हैं, लेकिन सिर्फ उन्हें UNHCR द्वारा शरणार्थी के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है जिनके द्वारा दिल्ली पहुँच कर UNHCR में शरणार्थी दर्जे के लिए आवेदन किया जाता है। इस संगठन द्वारा अत्यधिक सुभेद्य लोगों को मासिक भत्ता प्रदान किया जाता है। UNHCR द्वारा मान्यता प्राप्त शरणार्थियों के अतिरिक्त बड़ी संख्या में भारत में शरण चाहने वाले बर्मी लोग देश में निवास कर रहे हैं। कुछ अन्य शरणार्थी समूहों के विपरीत, बर्मी शरणार्थियों को भारत में ठहरने के लिए निवास परमिट प्रदान किए गए हैं।

7.5.1. रोहिंग्या

* रोहिंग्या वस्तुतः म्यांमार के रखाइन प्रांत के निवासी हैं। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2016-17 के संकट से पूर्व म्यांमार में लगभग 1 मिलियन रोहिंग्या निवास करते थे। वर्ष 2013 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा इन्हें विश्व में सर्वाधिक उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों में से एक के रूप में वर्णित किया गया था। उल्लेखनीय है कि इन्हें वर्ष 1982 के म्यांमार राष्ट्रीयता कानून के तहत नागरिकता से वंचित कर दिया गया है। ह्यूमन राइट्स वॉच के अनुसार, वर्ष 1982 का कानून "रोहिंग्याओ को म्यांमार की राष्ट्रीयता प्राप्त करने की संभावनाओ से प्रभावी रूप से वंचित करता हैं"।
* रोहिंग्याओं के 8वीं शताब्दी के इतिहास संबंधी साक्ष्य प्राप्त होने के बावजूद, म्यांमार का कानून इन्हें "राष्ट्रीय स्वदेशी प्रजाति" के आठ मानदंडों में से एक 'नृजातीय अल्पसंख्यक' के रूप में भी मान्यता प्रदान नहीं करता है। इन्हें आवाजाही की स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय शिक्षा एवं सिविल सेवा की नौकरियों से भी प्रतिबंधित कर दिया गया है।
* म्यांमार में रोहिंग्या द्वारा सामना की जा रही कानूनी स्थितियों की तुलना व्यापक रूप से रंगभेद (apartheid) से की गई है और इनके विरुद्ध की जाने वाली कठोर कर्रवाई को नस्लीय पवित्रीकरण के उदाहरण के रूप में पाठ्यपुस्तकों के अंतर्गत शामिल किया गया है।
* वर्ष 2015 के पश्चात से, हजारों रोहिंग्याओं का व्यापक पैमाने पर एशियाई देशों, यथा- बांग्लादेश, भारत, मलेशिया, इंडोनेशिया एवं थाईलैंड में प्रवास के साथ शरणार्थी संकट में ओर अधिक वृद्धि हुई है।
* अगस्त 2017 में, भारत सरकार ने घोषणा की थी कि वह देश में निवास करने वाले सभी 40,000 रोहिंग्या शरणार्थियों को निर्वासित करने की योजना बना रही है। उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत एक याचिका में, यह आरोप लगाया गया है कि भारत में प्रवेश करने का प्रयास करने वाले रोहिंग्याओ को बलपूर्वक म्यांमार वापस निर्वासित किया जा रहा है, जहाँ उनके मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायधीश की अध्यक्षता वाली एक पीठ द्वारा रोहिंग्याओं के निर्वासन (जहाँ उनकी मृत्यु का खतरा बना हुआ है) से संबंधित याचिका की सुनवाई की गई।
* सरकार के अनुसार, भारत में रोहिंग्याओं के अवैध आव्रजन के "राष्ट्रीय सुरक्षा पर गंभीर प्रभाव एवं खतरे" हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यह भी आशंका व्यक्त की गई कि रोहिंग्या लोग अत्यधिक जनसंख्या वाले हमारे देश के संसाधनों पर अत्यधिक संकट उत्पन्न करेंगे। पूर्वोत्तर में पहले से ही रोहिंग्या आप्रवास के कारण नृजातीय जनसांख्यिकी के प्रारूप में परिवर्तन के परिणामस्वरूप असंतोष की स्थिति उत्पन्न हुई है। हालाँकि, चकमा समुदाय को नागरिकता प्रदान करने के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह पुष्टि की कि अनुच्छेद 21 के अंतर्गत 'जीवन का अधिकार' सभी

"व्यक्तियों" को प्राप्त है न कि केवल देश के नागरिकों को। अत: भारत, नागरिकों के समान ही विदेशियों के जीवन की रक्षा के लिए भी समान रूप से बाध्य है। इस प्रकार गैर-निर्वासित या गैर-वापसी के सिद्धांत की व्याख्या अनुच्छेद 21 में निहित है। यह किसी देश को किसी शरणार्थी को किसी भी देश में निर्वासित करने से प्रतिबंधित करता है, जहां उन शरणार्थियों के साथ बलात्कार, हत्या और अत्याचार जैसे उत्पीड़न की संभावना है।

- वर्तमान में इन याचिकाओं पर सुनवाई जारी है तथा भारत में रोहिंग्याओं का भविष्य अभी भी अनिश्चित बना हुआ है।

7.5.2. चकमा तथा हाजोंग

- चकमा एवं हाजोंग, चटगांव पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने वाले नृजातीय लोग थे। उल्लेखनीय है कि इस पहाड़ी क्षेत्र का अधिकांश भाग बांग्लादेश में स्थित है। 1960 के दशक में कपाई बांध परियोजना के कारण उन्होंने भारत एवं म्यांमार सीमा पर स्थित अपनी जन्मभूमि से विस्थापित होना पड़ा था। उन्हें कथित रूप से धार्मिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ा और इसके परिणामस्वरूप इन्होंने असम (वर्तमान में मिज़ोरम) के लुशाई पहाड़ी जिले के माध्यम से भारत में प्रवेश किया। केंद्र सरकार ने इनमें से अधिकांश को नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी (वर्तमान में अरुणाचल प्रदेश) में स्थानांतरित कर दिया था। उच्चतम न्यायालय के वर्ष 2015 के आदेश के अनुसार वर्तमान में केंद्र सरकार द्वारा चकमा (बौद्ध) और हाजोंग (हिंदू) शरणार्थियों को नागरिकता प्रदान करने का निर्णय लिया गया है।
- हालाँकि, अरुणाचल प्रदेश के मूल निवासियों द्वारा इसका विरोध किया जा रहा है। इन विरोधों के आलोक में, केंद्र सरकार ने उन्हें "सीमित नागरिकता" प्रदान करने का निर्णय लिया है। उन्हें यहाँ भूमि संबंधी अधिकार या अरुणाचल प्रदेश में अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की जाएगी ताकि मूल निवासियों के अधिकार का हनन न हो।

7.6. फिलीस्तीनी शरणार्थी

- वर्तमान में 160 फ़िलिस्तीनी शरणार्थी के दर्जे की मांग कर रहे हैं। ये भारत में सबसे हाल में आने वाले शरणार्थी समूह हैं। संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी उच्चायुक्त (UNHCR) के दिल्ली में अवस्थित मिशन द्वारा कुछ फिलिस्तीनियों को शरणार्थी के रूप में मान्यता प्रदान की गई है जबकि कुछ अन्य आवेदन विचाराधीन हैं। इन शरणार्थियों को भारत सरकार द्वारा निवास परमिट नहीं जारी किया गया है।

7.7. अफगान शरणार्थी

- भारत सरकार द्वारा आधिकारिक तौर पर अफगान समुदाय को शरणार्थी के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की जाती है तथा उन्हें UNHCR के अधिदेश के तहत, मान्यता और संरक्षण प्रदान किया जाता है।
- भारत सरकार ने अधिकांश अफगान शरणार्थियों को वैध निवास परमिट जारी किया है। यह उन्हें एक सीमा तक विधिक संरक्षण प्रदान करता है जो उन्हें वैध पासपोर्ट के बिना भी भारत में रहने की अनुमति देता है।
- भारत में 2004-07 के मध्य नवीन आगंतुकों के लिए निवास परमिट प्राप्त करना अधिक कठिन रहा है। अफगान शरणार्थियों को पहले 6 महीने तक, मुख्य आवेदक और उन पर आश्रित प्रत्येक व्यक्ति हेतु, न्यूनतम निर्वाह भत्ता प्रदान किया जाता है।

इन समूहों के अतिरिक्त, भारत सूडान, इराक, ईरान, इरिट्रिया और इथियोपिया के कुछ शरणार्थियों को भी आश्रय प्रदान करता है।

8. प्रवासी भारतीय दिवस

- भारत के विकास में प्रवासी भारतीय समुदाय के योगदान को चिन्हित करने के लिए प्रतिवर्ष 9 **जनवरी** को प्रवासी भारतीय दिवस (PBD) का आयोजन किया जाता है। उल्लेखनीय है कि 9 जनवरी 1915 के दिन ही महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस लौटे थे और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व करते हुए भारतीयों के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन किया। इसी के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष 9 जनवरी को प्रवासी भारतीय दिवस मनाया जाता है।
- प्रवासी भारतीय दिवस सम्मेलन का आयोजन वर्ष 2003 से प्रतिवर्ष किया जा रहा है। यह सम्मेलन प्रवासी भारतीय समुदायों को, अपने पूर्वजों की मातृभूमि के लोगों और सरकार के साथ पारस्परिक लाभ हेतु संलग्न होने के लिए एक मंच प्रदान करता है। यह सम्मेलन विश्व के विभिन्न भागों में निवास करने वाले प्रवासी भारतीय समुदाय के मध्य नेटवर्किंग और विविध क्षेत्रों में उनके अनुभवों को साझा करने में उन्हें संलग्न करने हेतु उपयोगी है। इस सम्मेलन के दौरान, विशेष योग्यता के व्यक्तियों को भारत के विकास में उनकी भूमिका की सराहना करने के लिए प्रतिष्ठित प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है। यह सम्मेलन, विदेशों में बसे भारतीयों के संबंध में महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा के लिए भी एक मंच प्रदान करता है।

8.1. भारतीय प्रवासी दिवस के आयोजन का उद्देश्य

- प्रवासी भारतीय दिवस आयोजित करने का प्रमुख उद्देश्य प्रवासी भारतीय समुदाय की उपलब्धियों को एक मंच प्रदान कर उनको विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना है।
- प्रवासी भारतीयों की भारत के प्रति सोच, भावना की अभिव्यक्ति तथा देशवासियों के साथ सकारात्मक चर्चा के लिए एक मंच उपलब्ध कराना।
- विश्व के सभी देशों में प्रवासी भारतीयों का एक नेटवर्क बनाना।
- युवा पीढ़ी को प्रवासियों के साथ जोड़ना।
- विदेशों में निवास कर रहे भारतीय श्रमिकों और लोगों की समस्याओं को पहचानना तथा उनका समाधान करने का प्रयास करना।
- भारतीय अनिवासियों को आकर्षित करना।
- निवेश के अवसरों में वृद्धि करना।

8.2. प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय (Ministry of Overseas Indian Affairs: MOIA)

- प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय, विदेशों में बसे भारतीय नागरिकों की सेवा के लिए समर्पित है, जिसकी स्थपना मई 2004 में हुई थी। इसे सितंबर 2004 में प्रवासी भारतीय मामलों के मंत्रालय के रूप में पुनर्नामित किया गया था। सीमा रहित वैश्विक गठबंधन के माध्यम से विकास के लक्ष्यों से प्रेरित MOIA का उद्देश्य, प्रवासी भारतीय समुदाय को अपनी मातृभूमि के साथ जोड़ना है।
- एक 'सेवाप्रदाता' के रूप में परिकल्पित इस मंत्रालय द्वारा, प्रवासी भारतीयों {भारतीय मूल के व्यक्ति (PIOs) तथा अनिवासी भारतीय (NRI)} से संबंधित सभी मामलों पर सूचना, भागीदारी एवं सुविधा प्रदान की है। प्रवासी भारतीयों से संबंधित सभी मामलों से निपटने के अतिरिक्त, यह मंत्रालय व्यापार एवं निवेश, उत्प्रवास, शिक्षा, संस्कृति, स्वास्थ्य एवं विज्ञान और प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन करने हेतु उनके साथ कई पहलों में संलग्न है।
- वर्ष 2016 में, इस मंत्रालय का विदेश मंत्रालय के साथ विलय कर दिया गया था क्योंकि इसकी अधिकांश गतिविधियां केवल विदेश मंत्रालय के माध्यम से ही संचालित की जाती थीं। यह महसूस किया गया था कि एक पृथक मंत्रालय की आवश्यकता नहीं हैं और इसे विदेश मंत्रालय के तहत एक विभाग द्वारा ही संचालित किया जा सकता है। इसलिए, वर्तमान में विदेश मंत्रालय के तहत एक विभाग (प्रवासी भारतीय विभाग) के द्वारा प्रवासी भारतीयों के मामलों का निस्तारण किया जा रहा है।

9. वर्तमान मुद्दे

9.1. नागरिकता का विचार: एक विश्लेषण

- भारत में नागरिकता की समझ के संदर्भ में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। लगभग 40 वर्षों तक, भारत में नागरिकता का एक दार्शनिक और वैचारिक आधार रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के राज्यक्षेत्र में जन्मे प्रत्येक व्यक्ति को यहाँ का नागरिक बनने का अधिकार था।
    - **इस अधिकार का आधार संबद्धता है:** संविधान के संस्थापक नागरिकता की एक ऐसी अवधारणा को अपनाना चाहते थे जो भारतीय भूमि पर जन्मे प्रत्येक व्यक्ति (बिना किसी भेदभाव के) को समायोजित करने के लिए पर्याप्त रूप से विस्तृत हो। वस्तुतः, कई गणराज्यीय देशों के स्वतंत्र होने के पश्चात् वहां के राज्यक्षेत्र में जन्म लेने के आधार पर ही नागरिकता प्राप्त हो जाती है।
- इसके अतिरिक्त, जो लोग भारतीय नागरिकता के लिए दावा पेश करते हैं, वे ऐसा या तो अपने माता-पिता के भारत की भूमि पर जन्म के आधार पर या वर्ष 1950 में संविधान के अंगीकरण से ठीक पूर्व भारत में कम से कम 5 वर्षों तक साधारण तौर पर निवास के आधार पर करते हैं।
- भारत ने नागरिकता के इस आदर्श अर्थ के प्रति अपनी प्रतिबद्धता से क्रमशः अलग होना आरम्भ किया। वर्ष 1955 के नागरिकता अधिनियम के अनुसार, 26 जनवरी 1950 को या उसके पश्चात् भारत में जन्मा हर व्यक्ति, जन्म से भारत का नागरिक हो गया था।
- किंतु, नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 1986 के नियमानुसार भारत में जन्मा व्यक्ति तभी भारतीय होगा जब उसके जन्म के समय उसके माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक रहा हो। इस प्रकार भारतीय उद्भव को इसमें प्राथमिकता दी गयी।
- वर्ष 2003 के नागरिकता संशोधन अधिनियम में जन्म के आधार पर प्राप्त नागरिकता को सशर्त निर्धारित किया गया। इसे भारत में जन्मे व्यक्ति तक सीमित कर दिया गया, जिसके माता-पिता दोनों ही भारत के नागरिक हों या उसके जन्म के समय दोनों में से कोई एक भारत का नागरिक हो तथा दूसरा व्यक्ति भारत में अवैध प्रवासी न हो।

9.2. राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (National Population Register)

- हाल ही में, सरकार द्वारा देश भर में नागरिकों के पंजीकरण हेतु एक रजिस्टर के प्रवर्तन का आधार तैयार करने के लिए सितम्बर 2020 तक एक **राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (NPR)** निर्मित करने का निर्णय लिया गया है।

पृष्ठभूमि

- कारगिल युद्ध के पश्चात् एक मंत्रियों का समूह (Group of Ministers: GoMs) गठित किया गया था, जिसने नागरिकों के एक राष्ट्रीय रजिस्टर के सृजन को सुविधाजनक बनाने तथा अवैध प्रवास को नियंत्रित करने हेतु भारत के सभी निवासियों के अनिवार्य पंजीकरण की अनुशंसा की थी।
    - इसके द्वारा यह अनुशंसा की गयी थी कि सभी **भारतीय नागरिकों** को एक **बहुउद्देशीय राष्ट्रीय पहचान-पत्र (Multi-Purpose National Identity Card: MPNIC)** प्रदान किया जाना चाहिए तथा **गैर-नागरिकों** हेतु विभिन्न रंगों एवं डिजाईन के पहचान-पत्र जारी किए जाने चाहिए।
- वर्ष 2011 की जनगणना के दौरान गणना हेतु वर्ष 2010 में रजिस्ट्रार जनरल ऑफ़ इंडिया (RGI) ने एक राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्ट्री के लिए आंकड़ों का संग्रहण किया था।
    - वर्ष 2015 में इन आंकड़ों को घर-घर जाकर एक सर्वेक्षण के माध्यम से अद्यतित किया गया था।

- हालांकि, वर्ष 2016 में सरकारी लाभों के अंतरण हेतु प्रमुख साधन के रूप में सरकार द्वारा आधार (Aadhaar) का चयन किया गया था, जबकि NPR की धीमी प्रगति के कारण NPR के प्रवर्तन को रोक दिया गया था।
- RGI द्वारा अगस्त 2019 में जारी अधिसूचना के माध्यम से इस योजना को अब पुनर्जीवित किया गया है। साथ ही, अतिरिक्त आंकड़ों के साथ NPR-2015 को अद्यतित करने का कार्य आरम्भ किया गया है, जिसे वर्ष 2020 तक पूर्ण कर लिया जाएगा।

NPR में संग्रहित आंकड़े

- NPR में **जनसांख्यिकीय तथा बायोमेट्रिक दोनों प्रकार के आंकड़ों** का संग्रहण किया जाएगा।
- **जनसांख्यिकीय आकड़ों** की 15 विभिन्न श्रेणियां होंगी, जो नाम, जन्मस्थान, शिक्षा व व्यवसाय आदि अनेक आधारों पर भिन्न होंगी।
- **बायोमेट्रिक आंकड़ों** हेतु यह 'आधार' पर निर्भर होगा, जिसके लिए निवासियों के 'आधार विवरण' का उपयोग किया जाएगा।
- यह **जन्म एवं मृत्यु प्रमाण-पत्रों के सिविल रजिस्ट्रेशन सिस्टम को अद्यतित** करने का कार्य कर रहा है।
- यद्यपि, NPR में पंजीकरण कराना **अनिवार्य** है, तथापि **PAN, आधार, ड्राइविंग लाइसेंस और मतदाता पहचान-पत्र** जैसे अतिरिक्त आंकड़ों का समावेशन **स्वैच्छिक** है।

राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (NPR) के बारे में

- NPR "देश के सामान्य निवासियों" की एक सूची है।
  - गृह मंत्रालय के अनुसार "देश का सामान्य निवासी" वह व्यक्ति है, जो कम से कम विगत छह माह से एक स्थानीय क्षेत्र में निवास कर रहा है तथा आगामी छह माह हेतु एक विशेष स्थान पर रहने का इच्छुक है।
- NPR को नागरिकता अधिनियम, 1955 तथा नागरिकता (नागरिकों का पंजीकरण और राष्ट्रीय पहचान-पत्र जारी करना) नियमावली, 2003 के प्रावधानों के तहत तैयार किया जा रहा है।
  - नागरिकता अधिनियम, 1955 को वर्ष 2004 में संशोधित करते हुए इसमें धारा 14A को समाविष्ट किया गया था, जो निम्नलिखित हेतु प्रावधान करती है:
    - केंद्र सरकार अनिवार्यत: भारत के प्रत्येक नागरिक को पंजीकृत कर सकती है तथा राष्ट्रीय पहचान-पत्र जारी कर सकती है।
    - केंद्र सरकार **भारतीय नागरिकों का एक राष्ट्रीय रजिस्टर (National Register of Indian Citizens: NRIC)** बना सकती है तथा इस प्रयोजनार्थ राष्ट्रीय पंजीकरण प्राधिकरण (National Registration Authority) स्थापित कर सकती है।
    - **निवासियों** के सार्वभौमिक आंकड़ों को संग्रहित करने के पश्चात् नागरिकता का उचित सत्यापन किया जाएगा, तत्पश्चात उसमें से **नागरिकों** के उप-समुच्चय को निर्धारित किया जाएगा। इसलिए, **सभी सामान्य निवासियों** हेतु NPR में पंजीकरण करवाना **अनिवार्य** है।
- NPR का स्थानीय, उप-जिला, जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तरों पर संचालन किया जाएगा।
- इसे **गृह मंत्रालय के अंतर्गत RGI के कार्यालय द्वारा जनगणना 2021** के प्रथम चरण के साथ संयोजन में संचालित किया जाएगा।

- हाल ही में पूर्ण हुए NRC (राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर) को ध्यान में रखते हुए केवल **असम को NPR में सम्मिलित नहीं किया जाएगा।**

- NPR में पंजीकृत **18 वर्ष के आयु वर्ग** के सभी सामान्य निवासियों हेतु **निवास पहचान-पत्र जारी किए जाने का प्रावधान** भी किया गया है।

NPR, जनगणना और NRC से किस प्रकार भिन्न है?

- यह कार्य प्रत्येक दस वर्षों में आयोजित होने वाली **जनगणना से भिन्न है तथा यह NRC से संबद्ध नहीं है।**
- हालांकि, जनगणना एक वृहद् कार्य है, किंतु इसमें व्यक्तिगत पहचान संबंधी विवरणों को शामिल नहीं किया जाता है। दूसरी ओर, NPR, प्रत्येक व्यक्ति के पहचान संबंधी विवरण को संग्रहित करने हेतु अभिकल्पित है।
  - जनगणना संबंधी आंकड़े गोपनीयता खंड द्वारा संरक्षित होते हैं। सरकार ने यह प्रतिबद्धता व्यक्त की है कि वह व्यक्तियों की कुल गणना (headcount) हेतु एक व्यक्ति से प्राप्त सूचना को प्रकट नहीं करेगी।
- NRC के विपरीत NPR, नागरिकता प्रमाणन का अभियान नहीं है, क्योंकि यह छह माह से अधिक अवधि से एक स्थान पर निवासित एक विदेशी व्यक्ति का भी रिकॉर्ड रखेगा।
  - NPR के एक बार पूर्ण व प्रकाशित हो जाने के उपरांत, यह भारतीय नागरिकों के राष्ट्रीय रजिस्टर (National Register of Indian Citizens: NRIC) को निर्मित करने का आधार तैयार करेगा। इस प्रकार NRIC, असम के NRC का ही एक अखिल भारतीय संस्करण होगा।

NPR के लाभ

- **निवासियों का डेटाबेस:** यह प्रासंगिक जनांकिकीय विवरणों के साथ देश के निवासियों का एक व्यापक पहचान डेटाबेस निर्मित करने में सहायता प्रदान करेगा तथा विभिन्न मंचों पर निवासियों के आंकड़ों को सुव्यवस्थित करेगा।
- **बेहतर क्रियान्वयन:** यह सरकार को अपनी नीतियों को बेहतर तरीके से सूत्रबद्ध करने में सहायता प्रदान करेगा तथा राष्ट्रीय सुरक्षा में भी योगदान देगा।
  - यह न केवल सरकारी लाभार्थियों को बेहतर तरीके से लक्षित करने में सहायता प्रदान करेगा, अपितु समान रीति से कागजी कार्यवाही व लालफीताशाही में उसी प्रकार कटौती करेगा जैसे कि आधार कार्ड योजना में की गई है।
  - गृह मंत्रालय ने यह तर्क दिया है कि आधार की तुलना में NPR सब्सिडियों के वितरण हेतु अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि NPR में प्रत्येक व्यक्ति को एक परिवार से संबद्ध करने हेतु आंकड़े उपलब्ध हैं।
- **किसी भी प्रकार के दोषों का निवारण:** उदाहरणार्थ- एक व्यक्ति की विभिन्न सरकारी दस्तावेजों में भिन्न-भिन्न जन्म-तिथियाँ दर्ज होना सामान्य है। NPR इस प्रकार की असंगति के उन्मूलन में सहायता प्रदान करेगा।
- **दोहराव (duplication) की समाप्ति:** NPR आंकड़ों के चलते, निवासियों को आधिकारिक कार्यों हेतु आयु, पता और अन्य विवरण के विभिन्न साक्ष्यों को प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होगी। सरकार ने दृढ़ता से कहा है कि यह मतदाता सूची में दोहराव का उन्मूलन करेगा।

NPR से संबंधित मुद्दे

- **निजता का मुद्दा:** ज्ञातव्य है कि देश में आधार (Aadhaar) से संबंधित निजता के मुद्दे पर वाद-विवाद अभी भी जारी है, तथापि NPR में भारत के निवासियों के व्यापक आंकड़ों को संग्रहित करने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही, इतने व्यापक मात्रा में आंकड़ों के संरक्षण हेतु किसी प्रकार के तंत्र पर स्पष्टता अभी तक परिलक्षित नही हुई है।
    - इससे पूर्व, विभिन्न रिपोर्टों में यह वर्णित किया गया है कि विविध अवसरों पर आधार डेटा के दुरुप्रयोग के मामले प्रकट हुए हैं, परन्तु UIDAI (भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण) निरंतर इस प्रकार के उल्लंघनों को पूर्णतः अस्वीकृत करता रहा है।
- **आंकड़ों के सहभाजन की वैधता:** UIDAI और NPR, दोनों द्वारा एकत्रित किए जाने वाले सामान्य एवं बायोमेट्रिक आंकड़ों के संग्रहण की वैधता पर प्रश्नचिन्ह आरोपित किए गए हैं। उदाहरणार्थ- यह तर्क दिया गया है कि NPR के माध्यम से बायोमेट्रिक सूचना का संग्रहण अधीनस्थ विधान (subordinate legislation) के विषय-क्षेत्र के अंतर्गत शामिल नहीं है।
- **राष्ट्रीय सुरक्षा:** सृजित किए जाने वाले डेटाबेस के आकार, डेटाबेस की केंद्रीकृत प्रकृति, डेटाबेस में संग्रहित सूचना की संवेदनशील प्रकृति तथा अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों की संलिप्तता को देखते हुए इससे राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष खतरा उत्पन्न हो सकता है।
- **NRC के समान मुद्दे:** NPR वस्तुतः राष्ट्रव्यापी NRC के समान होगा। NRC के निर्माण के दौरान ऐसे अनेक दृष्टांत दृष्टिगोचर हुए थे जहां एक परिवार के कुछ सदस्यों को प्रारूप सूची में सूचीबद्ध किया गया था जबकि अन्यों को सूचीबद्ध नहीं किया गया।
- **परियोजनाओं का दोहराव:** यह अस्पष्ट है कि सरकार के लिए भारतीय नागरिकता के संबंध में एक अन्य पहचान अभियान संचालित करने की क्या आवश्यकता है, जबकि लगभग 90% नागरिक आधार योजना के अंतर्गत सम्मिलित किए जा चुके हैं।
    - आधार, NRC, NPR, जनगणना इत्यादि जैसी बहुविध परियोजनाओं के चलते **देश में नागरिकता के विचार के संदर्भ में भ्रांति** उत्पन्न हुई है।
- **गैर-सूचीबद्ध जनसंख्या (Uncounted people):** जनगणना के तहत संपूर्ण जनसंख्या को शामिल नहीं किया जाता है, जिसके कारण उन नागरिकों की स्थिति से संबंधित प्रश्न का समाधान नहीं हो सका है, जिन्हें जनगणना अधिकारी द्वारा सूचीबद्ध नहीं किया गया है।
    - यह प्रवासी श्रमिकों की स्थिति को भी स्पष्ट नहीं करता है, जो नागरिक तो हो सकते हैं, परन्तु "सामान्य निवासी" के रूप में पात्र नहीं होंगे।

NPR बनाम आधार

NPR में संग्रहित आंकड़ों को दोहराव से संरक्षित करने तथा आधार संख्या जारी करने हेतु UIDAI को प्रेषित किया जाएगा।

- **स्वैच्छिक बनाम अनिवार्य:** सभी भारतीय निवासियों को NPR में पंजीकरण करवाना अनिवार्य है, जबकि UIDAI में पंजीकरण करवाना स्वैच्छिक है।
- **संख्या बनाम रजिस्टर:** UIDAI एक संख्या जारी करता है जबकि NPR नागरिकों के राष्ट्रीय रजिस्टर का सूचक है। इस प्रकार यह केवल एक रजिस्टर है।

- **प्रमाणीकरण बनाम पहचान निर्धारण:** आधार संख्या, इस कार्य-कलाप के दौरान एक प्रमाणकर्ता (authenticator) के रूप में कार्य करेगा। इसे किसी भी मंच द्वारा स्वीकृत किया जा सकता है तथा अनिवार्य बनाया जा सकता है। राष्ट्रीय निवासी कार्ड (National Resident Card) वस्तुत: निवासी की स्थिति और नागरिकता का द्योतक होगा। यह अस्पष्ट है कि किन परिस्थितियों में इस कार्ड का प्रयोग किए जाने की आवश्यकता होगी।
- **UIDAI बनाम RGI:** UIDAI विशिष्ट पहचान योजना में व्यक्तियों को नामांकित करने हेतु उत्तरदायी है तथा RGI व्यक्तियों को NPR में सूचीबद्ध करने हेतु अधिदेशित है।
- **घर-घर जाकर नामांकन करना बनाम किसी केंद्र पर नामांकन करवाना (Door to door canvassing vs. center enrollment):** UID में पंजीकरण हेतु व्यक्तियों को एक नामांकन केंद्र में जाना होता है जबकि NPR के तहत घर-घर जाकर निवासियों का पंजीकरण किया जाएगा।
- **अग्रिम दस्तावेजीकरण बनाम जनगणना सामग्री:** UID दस्तावेजीकरण और पहचान-निर्धारण के अग्रिम रूपों पर आधारित है जबकि NPR जनगणना द्वारा प्रदत्त सूचना पर आधारित होगा।

निष्कर्ष

NPR में संग्रहित किए जाने वाले आंकड़ों से संबद्ध निजता संबंधी सरोकारों को स्पष्ट किया जाना अत्यावश्यक है तथा असम में सम्पादित ऐसे समान कार्यों (उदाहरणार्थ- NRC) से उत्पन्न समस्याओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। यह नागरिकता के सत्यापन हेतु एक मूलभूत डेटाबेस के रूप में कार्य करने में तभी सक्षम होगा जब एक राष्ट्रव्यापी NRC को पश्चातवर्ती चरणों में संपन्न किया जाएगा।

9.3. राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (National Register Of Citizens: NRC)

NRC क्या है?

- **राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर** असम के सभी वैध (प्रमाणित) नागरिकों की एक सूची है तथा यह रजिस्टर केवल असम राज्य से ही संबंधित है।
- यह **नागरिकता अधिनियम, 1955** व **नागरिकता (नागरिकों का पंजीकरण और राष्ट्रीय पहचान-पत्र जारी करना) नियमावली, 2003** (वर्ष 2009 में संशोधित) तथा भारत के राजपत्र में **वर्ष 2010** में प्रकाशित **गृह मंत्रालय के एक आदेश** द्वारा शासित होता है।
- इसमें, 24 मार्च 1971 की मध्यरात्रि से पूर्व किसी निर्वाचक नामावली या राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर, 1951 में शामिल व्यक्तियों और उनके वंशजों को सम्मिलित किया जाएगा।
- **NRC बनाम जनगणना:** जनगणना कार्य राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक दशक में संपादित किया जाता है तथा यह भारत की जनसंख्या के आकार और प्रकृति का विवरण प्रदान करता है। परन्तु NRC नागरिकों की नागरिकता को प्रमाणित करने के दायित्व हेतु एक विशिष्ट अभ्यास है। इसके तहत नागरिकों के लिए एक दस्तावेजी साक्ष्य के माध्यम से यह दर्शाना अनिवार्य है कि वे कैसे असम में रहने वाले भारत के नागरिक बन गए हैं।

हाल ही में, असम के प्रामाणिक भारतीय नागरिकों की पुष्टि करने वाले राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (National Register of Citizens: NRC) के अपडेटेड (अद्यतित) और अंतिम प्रारूप को प्रकाशित किया गया। ज्ञातव्य है कि 19 लाख से अधिक आवेदक इस सूची में अपना नाम दर्ज करवाने में विफल हुए हैं।

पृष्ठभूमि

- NRC का मूल **असम स्टेट स्टूडेंट्स यूनियन** और **भारत सरकार** के मध्य वर्ष 1985 में हस्ताक्षरित **समझौता ज्ञापन (Memorandum of Settlement)** अथवा **असम समझौते (Assam Accord)** में निहित है। यह समझौता 1980 के दशक के प्रवासी विरोधी हिंसक आंदोलन का परिणाम था तथा इसमें अवैध प्रवास (illegal migration) को नियंत्रित करने हेतु विभिन्न खंडों का समावेश किया गया था।
- उल्लेखनीय है कि **असम समझौते** के पश्चात् 1 जनवरी 1966 से पूर्व बांग्लादेश से आए सभी भारतीय मूल के लोगों को भारतीय नागरिक के रूप में मान्यता प्रदान करने हेतु **नागरिकता अधिनियम, 1955 में संशोधन** किया गया था।
    - वे व्यक्ति जो 1 जनवरी 1966 और 25 मार्च 1971 के मध्य भारत आए थे, उन्हें पंजीकरण कराने और 10 वर्षों तक राज्य में निवास करने के पश्चात् नागरिकता हेतु पात्र समझा गया था, जबकि वे जिन्होंने 25 मार्च 1971 के पश्चात् राज्य में प्रवेश किया था उन्हें निर्वासित किया जाना था। हालांकि, विगत दशकों इस दिशा में कोई ठोस कार्यवाही नहीं की गई है।
- वर्ष 2014 में **उच्चतम न्यायालय** ने **राज्य सरकार** को एक समयबद्ध रीति में **NRC, 1951 को अद्यतित करने का निर्देश जारी किया था।** वर्तमान प्रक्रिया को उच्चतम न्यायालय के निरीक्षण में संचालित किया जा रहा है।

असम समझौता (The Assam Accord)

- यह भारत सरकार के प्रतिनिधियों और असम आन्दोलन के नेताओं के मध्य 15 अगस्त 1985 को नई दिल्ली में हस्ताक्षरित एक समझौता ज्ञापन (Memorandum of Settlement) था।
- इसमें यह प्रावधान शामिल था कि उन सभी "विदेशियों" की पहचान की जाएगी, जिन्होंने 25 मार्च 1971 के पश्चात् असम में प्रवेश किया है तथा तत्पश्चात उन्हें **अवैध प्रवासी (अधिकरण द्वारा निर्धारण) अधिनियम, 1983** {Illegal Migrants (Determination by Tribunals) Act, 1983 (IMDT)} के तहत पता लगाकर निर्वासित किया जाएगा। इसमें निर्वाचक नामावली से विदेशियों के नामों को हटाने का भी उपबंध किया गया है।

निर्दिष्ट तिथि (Cut of Date) का महत्व

- बांग्लादेश से भारत में प्रवेश करने वाले प्रवासियों की स्थिति को निर्धारित करने के संदर्भ में कट ऑफ़ डेट (निर्दिष्ट तिथि) का मुद्दा **विवाद का एक प्रमुख विषय** था। उल्लेखनीय है कि 25 मार्च 1971 को ही पाकिस्तान की सैन्य सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान के स्वतंत्रता सेनानियों और नागरिकों पर कठोर कार्यवाही की शुरुआत की थी।
- कठोर दमन-चक्र और क्रूरता के कारण 10 मिलियन से अधिक लोगों को भारत में शरण लेना पड़ा तथा आरंभ में ये शरणार्थी मुख्यत: असम, पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा में बस गए।

NRC का महत्व

- **दीर्घकालिक समाधान:** यह बांग्लादेश से अवैध प्रवास को नियंत्रित करने हेतु उपायों की व्यवस्था करता है, क्योंकि कूटनीतिक और सीमा प्रबंधन प्रयास इस मुद्दे का पूर्णत: समाधान करने में विफल

रहे हैं। इसके दो प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं: **i)** बांग्लादेश अपने क्षेत्र से भारत में किसी भी प्रकार की घुसपैठ को स्वीकार नहीं करता है तथा **ii)** भारत और बांग्लादेश के मध्य स्थित छिद्रिल सीमा, प्रभावी सीमा प्रबंधन में बाधा उत्पन्न करती है। इस प्रकार, अवैध प्रवास के संकट से निपटने हेतु NRC को एक वैकल्पिक साधन और एक दूरदर्शी प्रशासनिक समाधान स्वीकार किया गया है।

- **पहचान निर्धारण:** NRC अवैध प्रवासियों द्वारा राज्य की जनसांख्यिकी को परिवर्तित करने तथा राज्य की राजनीति को प्रभावित किए जाने की आशंका का भी निवारण करेगा।
- **एक निवारक साधन:** यह अपेक्षा की गई है कि NRC भविष्य में बांग्लादेश से अवैध प्रवासियों को असम में प्रवेश करने से निरुद्ध करेगा, क्योंकि इसके प्रारूप (ड्राफ्ट) के प्रकाशन ने इस संभावना का सृजन किया है कि वैध दस्तावेजों के बिना असम में निवास करना निरोध/कारावास और निर्वासन का कारण बनेगा।

NRC से संबद्ध मुद्दे

- **निष्कासन का भय:** इस संबंध में चिंताएं विद्यमान हैं कि NRC से सूची में लोगों का अनुचित रीति से समावेशन अथवा निष्कासन हो सकता है।
    - **D-मतदाताओं से संबंधित मुद्दे भी मौजूद हैं। D-मतदाता** वे मतदाता होते हैं जिन्हें सरकार द्वारा उनके उचित नागरिकता प्रमाण-पत्रों के कथित अभाव के आधार पर मताधिकार से वंचित कर दिया जाता है तथा उनका समावेशन **विदेशी विषयक अधिकरण (Foreigners Tribunal)** के निर्णय पर निर्भर करेगा।
- **अल्पसंख्यकों की चिंताएं:** यह आशंका प्रकट की गई है कि इस प्रकार की कार्यवाहियां देश के अल्पसंख्यकों को लक्षित कर सकती हैं।
    - **नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 2016** अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान से आए हिंदू और कुछ अन्य अल्पसंख्यक समुदायों से संबद्ध अवैध प्रवासियों को भारतीय नागरिकता हेतु पात्रता प्रदान करता है, जबकि यह कदम इस प्रक्रिया से अल्पसंख्यकों को हटाने (alienation) के संबंध में आशंकाओं का सृजन कर सकता है।
- **लोगों के भाग्य को अभिनिश्चित करने हेतु किसी विशिष्ट नीति का न होना:** सरकार ने NRC प्रक्रिया के पूर्ण होने के पश्चात् (पोस्ट NRC) कोई क्रियान्वयन योजना निर्मित नहीं की है, क्योंकि-
    - **अवैध प्रवासियों का बांग्लादेश में निर्वासन की संभावना अत्यल्प** है, क्योंकि सूची से बहिष्कृत लोगों को बांग्लादेश के प्रामाणिक नागरिक के रूप में सिद्ध करना होगा तथा इस हेतु **बांग्लादेश से सहयोग की भी आवश्यकता होगी।**
    - जिनकी पहचान "अवैध प्रवासियों" के रूप में की जाएगी, उन्हें उनके निर्वासन तक निरोध शिविरों (detention camps) में रखा जाएगा। मीडिया रिपोर्ट्स में यह भी उल्लेख किया गया है कि ये निरोध शिविर अपनी अमानवीय निवास परिस्थितियों के लिए प्रसिद्ध हैं।
- **सुरक्षा संबंधी चिंताएं:** ज्ञातव्य है कि पहले से ही सुरक्षा संबंधी चिंताएं प्रकट की जा रही हैं।
- **राज्यविहीनता का मुद्दा:** ऐसी आशंकाएं विद्यमान हैं कि भारत राज्यविहीन लोगों के नवीनतम समूह का सृजन करेगा, जिससे एक स्वदेशी संकट का भय उत्पन्न होगा तथा यह म्यांमार से बांग्लादेश पलायन कर गए रोहिंग्या लोगों की कहानी दोहराएगा।

NRC सूची में नाम दर्ज करवाने में विफल लोगों हेतु प्रावधान

- असम सरकार ने NRC सूची में नाम दर्ज करवाने से चूक गए लोगों को यह आश्वासन दिया है कि उन्हें तत्काल प्रभाव से "विदेशी" अथवा "अवैध प्रवासी" घोषित नहीं किया जाएगा।
- ऐसे लोगों को विदेशी विषयक अधिकरण के समक्ष अपने पक्ष को रखने (अर्थात् विरोध दर्ज कराने) की अनुमति प्रदान की जाएगी। इसके अतिरिक्त, वे इस मामले में उच्च न्यायालय और यहाँ तक कि उच्चतम न्यायालय में भी अपील दायर कर सकते हैं।
- राज्य सरकार NRC सूची से वंचित निर्धन लोगों को विधिक सहायता भी प्रदान करेगी।

निष्कर्ष

उपर्युक्त सभी आशंकाओं के मध्य भारतीय नागरिकों के दस्तावेजीकरण और घुसपैठ की निगरानी एवं रोकथाम के संदर्भ में NRC एक दूरदर्शी उपाय है। वर्तमान NRC प्रक्रिया न्यायिक अभिप्रेरण और राजनीतिक शक्ति संतुलन दोनों का ही एक परिणाम है, क्योंकि NRC का संचालन उच्चतम न्यायालय के तत्वावधान में किया जा रहा है तथा यह सम्पूर्ण प्रक्रिया की सूक्ष्मता से निगरानी कर रहा है। ज्ञातव्य है कि राज्यों का सहयोग NRC की सफलता हेतु महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

10. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions)

1. सरकार की दो समानांतर चलाई जा रही योजनाओं, यथा 'आधार कार्ड' और 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर', एक स्वैच्छिक और दूसरी अनिवार्य, ने राष्ट्रीय स्तर पर वाद-विवाद और मुकदमों को उत्पन्न किया है। सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों के आधार पर चर्चा कीजिए कि क्या दोनों योजनाओं को साथ-साथ चलाना आवश्यक है या नहीं। इन योजनाओं का विकासात्मक लाभों और न्यायोचित संवृद्धि को प्राप्त करने की संभाव्यता का विश्लेषण कीजिए। (2014)

मूल अधिकार

विषय सूची

1. अधिकारों की संकल्पना _____ 173

2. भारतीय संविधान में मूल अधिकारों की संकल्पना _____ 174

3. मूल अधिकारों का क्रमिक विकास _____ 174

3.1. मूल अधिकारों की सीमाएँ _____ 175

4. मूल अधिकारों की विशेषताएं _____ 175

5. मूल अधिकारों का विवरण _____ 176

5.1. अनुच्छेद 12 : राज्य की परिभाषा (DEFINITION OF STATE) _____ 176

5.1.1. क्या राज्य की परिभाषा के तहत निजी निकाय भी शामिल हैं? _____ 177

5.2. अनुच्छेद 13 : मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां _____ 177

5.2.1. न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) _____ 178

5.2.1.1. संविधान के पूर्व की विधियों की विधिमान्यता _____ 178

5.2.1.2. पृथक्करणीयता का सिद्धांत (Doctrine of Severability) _____ 179

5.2.1.3. ग्रहण का सिद्धांत (Doctrine of Eclipse) _____ 179

5.2.1.4. अधित्यजन का सिद्धांत (Doctrine of Waiver) _____ 179

5.2.1.5. भविष्यलक्षी विनिर्णय का सिद्धांत (Doctrine of Prospective Overruling) _____ 179

5.2.1.6. मोटर जनरल ट्रेड्स बनाम स्टेट ऑफ आन्ध्र प्रदेश (1984) _____ 179

5.2.2. मूल अधिकारों की संशोधनीयता और मूल ढांचे का सिद्धांत _____ 180

5.3. अनुच्छेद 14 - विधि के समक्ष समता _____ 181

5.4. अनुच्छेद 15 - भेदभाव के विरुद्ध अधिकार (RIGHT AGAINST DISCRIMINATION) _____ 182

5.4.1. संबंधित न्यायिक वाद _____ 183

5.4.2. अनुच्छेद 15 एवं संवैधानिक संशोधन _____ 184

5.4.3. अनुच्छेद 15 और सामाजिक प्रगति _____ 184

5.5. अनुच्छेद 16 - लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता का अधिकार _____ 185

5.5.1. मंडल आयोग और उसके पश्चात _____ 186

5.6. अनुच्छेद 17 - अस्पृश्यता का अंत _____ 187

5.6.1. अस्पृश्यता की समाप्ति के लिए विभिन्न अधिनियम _____ 188

5.7. अनुच्छेद 18 - उपाधियों का अंत _____ 189

5.8. अनुच्छेद 19 - स्वतंत्रता का अधिकार _____ 189

5.8.1. सूचना का अधिकार - सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत एक कानूनी अधिकार _____ 191

5.8.2. प्रेस की स्वतंत्रता की स्थिति _____ 192

5.8.3. अनुच्छेद 19 के तहत अधिकारों से संबंधित मुद्दे _____ 194

5.8.3.1. वाक् स्वातंत्र्य और सिविल सेवक: 19 (1) (a) _____ 194

5.8.3.2. 19 (1) (a) और 19 (2) - हेट स्पीच ____ 194
5.8.3.3. 19 (1) (a) और 19 (2) - मानहानि ____ 194
5.8.3.4. फिल्मों और पुस्तकों पर प्रतिबंध: 19 (1) (a) ____ 195
5.8.3.5. 19 (1) (a) इंटरनेट तक पहुंच का अधिकार ____ 195
5.8.3.6. 19 (1) (c) - सहकारी समितियों के गठन का अधिकार ____ 195
5.8.3.7. राष्ट्रीय आपातकाल का अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त अधिकारों पर प्रभाव ____ 195

5.9. अनुच्छेद 20- अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण ____ 196

5.10. अनुच्छेद 21- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार ____ 196
5.10.1. न्यायिक व्याख्या द्वारा अनुच्छेद 21 के क्षेत्र का विस्तार ____ 197
5.10.2. निजता का अधिकार (Right to Privacy) ____ 198
5.10.3. जीवन का अधिकार और आत्महत्या (IPC की धारा 309) ____ 200
5.10.4. जीवन का अधिकार एवं मृत्युदंड ____ 201

5.11. अनुच्छेद 21-A : शिक्षा का अधिकार ____ 202

5.12. अनुच्छेद 22: कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण ____ 203

5.13 अनुच्छेद 23 – मानव के दुर्व्यापार एवं बलात् श्रम का प्रतिषेध ____ 205

5.14. अनुच्छेद 24 – कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध ____ 206
5.14.1. बाल श्रम से संबंधित विधेयक ____ 206

5.15. अनुच्छेद 25: अंतःकरण की और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता ____ 207

5.16. अनुच्छेद 26: धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता ____ 209

5.17. अनुच्छेद 27: किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता ____ 210

5.18. अनुच्छेद 28: कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता ____ 211

5.19. अनुच्छेद 29: अल्पसंख्यक-वर्गों के हितों का संरक्षण ____ 211

5.20. अनुच्छेद 30: शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार ____ 212
5.20.1. अनुच्छेद 29 तथा 30 के मध्य संबंध ____ 212

5.21. अनुच्छेद 31: संपत्ति का अनिवार्य अर्जन (निरसित) ____ 213

5.22. अनुच्छेद 32 : संवैधानिक उपचारों का अधिकार ____ 215

5.23. अनुच्छेद 33 - मूल अधिकारों के, सुरक्षा बलों आदि पर लागू होने में, उपांतरण करने की संसद की शक्ति ____ 218

5.24. अनुच्छेद 34 - जब किसी क्षेत्र में सेना विधि प्रवृत्त है तब इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों पर निर्बंधन ____ 219

5.25. अनुच्छेद 35: भाग 3 के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए विधान ____ 220

6. संपत्ति के अधिकार की प्रस्थिति ____ 221

7. क्या मूल अधिकार आत्यंतिक हैं? ____ 221

8. मूल अधिकारों पर आपातकाल का प्रभाव ____ 221

9. मूल अधिकारों की आलोचना ____ 222

1. अधिकारों की संकल्पना

- अधिकार वस्तुतः किसी व्यक्ति को संविधान अथवा विधि द्वारा प्रदत्त दावे, सुविधाएं या विशेषाधिकार होते हैं। विधि द्वारा प्रदत्त सुविधाएँ अधिकारों की रक्षा करती हैं। दोनों का अस्तित्व परस्पर निर्भर है। जहां विधि एक ओर अधिकारों को मान्यता प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर इन्हें लागू करने अथवा इनकी अवहेलना पर नियंत्रण स्थापित करने की व्यवस्था भी करती है।
- अधिकार, लोकतंत्र का सार है। ये व्यक्ति को स्वयं का विकास करने के लिए सक्षम और सशक्त बनाते हैं। अधिकारों की धारणा समय-समय पर तथा एक समाज से दूसरे समाज में परिवर्तित होती रहती है।
- जब कुछ दावों को संविधान अथवा विधि द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है तो वे प्रवर्तनीय हो जाते हैं। इस स्थिति में नागरिक (कुछ मामलों में गैर-नागरिक) इन्हें लागू करने की मांग कर सकते हैं। इनके उल्लंघन की स्थिति में नागरिक अपने अधिकारों के संरक्षण हेतु न्यायालय में अपील कर सकते हैं। इस प्रकार, अधिकारों को **समाज द्वारा मान्यता प्राप्त और राज्य द्वारा स्वीकृत, तर्कसंगत दावों** के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। अधिकारों के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं:
    - **प्राकृतिक अधिकार (Natural Rights):** ये अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को उनके मनुष्य होने के कारण जन्म से उपलब्ध होते हैं। ये अहस्तांतरणीय नैसर्गिक अधिकार होते हैं। ये विधि द्वारा प्रदत्त नहीं हैं बल्कि विधि द्वारा केवल प्रवर्तनीय होते हैं, जैसे- जीवन का अधिकार।
    - **मानवाधिकार (Human Rights):** इन अधिकारों को प्राकृतिक अधिकारों का व्यावहारिक संस्करण माना जाता है। ये मानव के रूप में जन्म के साथ ही सभी मनुष्यों के लिए उपलब्ध होते हैं। इस संदर्भ में, ये राष्ट्रीयता, जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर विभेद किए बिना सार्वभौम प्रकृति के होते हैं। इन अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की गई।
    - **नागरिक अधिकार (Civil Rights):** ये अधिकार किसी देश की विधि अथवा संविधान द्वारा केवल नागरिकों को प्रदान किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, स्वतंत्रता का अधिकार।
    - **विधिक अधिकार (Legal rights):** ये वे नागरिक अधिकार होते हैं जो विधायिका द्वारा पारित विधियों के माध्यम से प्रदान किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, संपत्ति का अधिकार। (पूर्व में यह भारतीय संविधान में मूल अधिकार के रूप में शामिल था परन्तु, वर्तमान में इसे अनुच्छेद 300(A) के अंतर्गत विधिक अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त हैं।)
    - **संवैधानिक अधिकार (Constitutional Rights):** ये अधिकार संविधान में उल्लिखित होते हैं। कुछ अधिकारों को विशेष दर्जा प्रदान किया जाता है, जैसे- मूल अधिकार; जबकि अन्य अधिकारों को केवल साधारण दर्जा प्रदान किया जाता है।
    - **मूल अधिकार (Fundamental Rights):** यह संवैधानिक अधिकारों की एक शाखा है तथा इनके महत्व के आधार पर इन अधिकारों को विशेष दर्जा प्रदान किया गया है और ये सीधे उच्चतम एवं उच्च न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हैं।

2. भारतीय संविधान में मूल अधिकारों की संकल्पना

- इन्हें मूल इसलिए कहा जाता है, क्योंकि:
  - ये एक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक होते हैं; तथा
  - इन्हें देश की मूल विधि अर्थात् संविधान के द्वारा गारंटी प्रदान की गई है।
- मूल अधिकार, भारतीय संविधान के **भाग 3** के अंतर्गत **अनुच्छेद 12 से 35** तक समाविष्ट किए गए हैं। ये न केवल देश में राजनीतिक स्वतंत्रता की गारंटी प्रदान करते हैं, बल्कि राज्य की मनमानी कार्रवाई के विरूद्ध नियंत्रक की भूमिका का निर्वहन भी करते हैं। इसके अतिरिक्त, ये **'व्यक्ति के शासन'** के स्थान पर **'विधि के शासन'** की स्थापित करने में सहायता करते हैं, जिसका अभिप्राय है कि राज्य मनमाने तरीके से कार्य नहीं कर सकता है।
- इसके अतिरिक्त, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के साथ एक स्वतंत्र न्यायपालिका, मूल अधिकारों के संरक्षक की भूमिका निभाने के साथ-साथ विधि के शासन की स्थापना हेतु 'अभिभावक' एवं 'गारंटर' के रूप में कार्य करती है।

3. मूल अधिकारों का क्रमिक विकास

संविधान में मूल अधिकारों को सम्मिलित करने की प्रेरणा, स्वतंत्रता के लिए एक लंबे संघर्ष और विश्व के प्रमुख लोकतंत्रों के अनुभवों से प्राप्त हुई।

- वर्ष 1928 में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में सर्वदलीय सम्मेलन की समिति द्वारा एक संवैधानिक योजना का मसौदा तैयार किया गया था, जिसे **नेहरू रिपोर्ट** कहा गया। इसके अंतर्गत, भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना और अल्पसंख्यकों को संरक्षण प्रदान करने का आह्वान किया गया।
- वर्ष 1931 के **कराची अधिवेशन** के प्रस्ताव में व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रताओं के मुद्दों के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त की गई। इसमें मूल नागरिक अधिकार तथा न्यूनतम मजदूरी सुनिश्चित करने और अस्पृश्यता एवं दासता के उन्मूलन जैसे सामाजिक-आर्थिक अधिकार भी शामिल थे।
- हालाँकि, साइमन कमीशन और संयुक्त संसदीय समिति, जो भारत सरकार अधिनियम, 1935 के लिए उत्तरदायी थे, ने इस आधार पर मूल अधिकारों की घोषणाओं के विचार को अस्वीकार कर दिया था कि "ये अमूर्त घोषणाएँ तब तक गैर-उपयोगी हैं, जब तक कि इनके लिए इच्छाशक्ति और उन्हें प्रभावी बनाने के साधन उपलब्ध न हो"। नेहरू रिपोर्ट के पश्चात्, राष्ट्रवादी मत **'बिल ऑफ़ राइट्स'** के पक्ष में था, क्योंकि ब्रिटिश शासन के अधीन प्राप्त अनुभव यह था कि एक अधीनस्थ विधायिका व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अतिक्रमण करने में कार्यकारिणी के लिए कठपुतली के रूप में कार्य कर सकती है।
- ब्रिटिश मत पर ध्यान दिए बिना, संविधान निर्माताओं ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण तथा समुदाय के प्रत्येक सदस्य हेतु सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय (राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के साथ) सुनिश्चित करने के लिए मूल अधिकारों को अपनाया। संविधान सभा, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं ब्रिटेन के बिल ऑफ़ राइट्स के साथ-साथ फ्रांस के मानवाधिकारों की घोषणा से भी प्रेरित थी।

3.1. मूल अधिकारों की सीमाएँ

- विश्व भर में, यहां तक कि ऐतिहासिक रूप से सुदृढ़ लोकतंत्रों में भी मूल अधिकारों के उपयोग पर युक्तियुक्त सीमाएं आरोपित की गई हैं। भारतीय संविधान में भी इस प्रकार की सीमाओं का उल्लेख किया गया है। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 19 के अंतर्गत प्रदत्त मूल अधिकारों को सशर्त प्रदान किया है और ये युक्तियुक्त निर्बंधनों के अधीन हैं। जहाँ एक ओर अनुच्छेद 19 के अंतर्गत कुछ युक्तियुक्त प्रतिबंधों का उल्लेख किया गया है, वहीं दूसरी ओर अन्य मूल अधिकारों के संबंध में इस प्रकार की सीमाएं, विभिन्न संशोधन अधिनियमों या उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के माध्यम से जोड़े गए हैं। सामाजिक न्याय की स्थापना के उद्देश्य से अनुच्छेद 15 और 16 को संसद द्वारा समय-समय पर संशोधित किया गया है।

4. मूल अधिकारों की विशेषताएं

मूल अधिकारों की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- मूल अधिकारों के **दो वर्ग** हैं। कुछ अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को ही प्राप्त हैं, जबकि कुछ अधिकार भारतीय नागरिकों और विदेशी व्यक्तियों, दोनों को समान रूप से प्राप्त हैं। **अनुच्छेद 15, 16, 19, 29** और **30** द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल भारतीय नागरिकों के लिए ही उपलब्ध हैं। जबकि शेष सभी अधिकार, विदेशी नागरिकों (शत्रु राष्ट्र के नागरिकों के अतिरिक्त) के लिए भी उपलब्ध हैं।
- ये अधिकार असीमित नहीं हैं, अपितु इन पर कुछ युक्तियुक्त निर्बंधन आरोपित किए जा सकते हैं। "युक्तियुक्तता" (reasonableness) का अर्थ न्यायपालिका द्वारा 'समाज के समग्र कल्याण और व्यक्ति के अधिकारों के मध्य संतुलन की उचित अवस्था' के रूप में निर्धारित किया गया है।
- संसद को विधि द्वारा यह निर्धारित करने का अधिकार है कि ये अधिकार सैन्य बलों तथा खुफ़िया विभागों के संबंध में किस सीमा तक प्रभावी होंगे।
- ये **स्थायी नहीं** हैं। संसद, संवैधानिक संशोधन के माध्यम से इनमें कटौती अथवा कमी कर सकती है, बशर्ते कि इससे संविधान का मूल ढांचा प्रतिकूल रूप से प्रभावित न हो।
- इन अधिकारों का दायरा अनुच्छेद 31A, 31B, 31C, 33, 34 और 35 द्वारा सीमित होता है।
- अनुच्छेद 20 एवं 21 के अतिरिक्त, सभी अधिकारों को राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान निलंबित किया जा सकता है। अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त 6 स्वतंत्रताओं को केवल तभी निलंबित किया जा सकता है जब आपातकाल युद्ध और बाह्य आक्रमण के आधार पर घोषित किया गया हो, न कि सशस्त्र विद्रोह के आधार पर।
- मूल अधिकारों के अंतर्गत, कुछ अधिकार राज्य को यह निर्देश देते हैं कि वह कुछ विशिष्ट कार्य न करे। इनका स्वरूप **नकारात्मक** होता है। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 14, 15(1), 16(2), 18(1), 20, 21, 22(1), 27 तथा 28(1).
    - अनुच्छेद 14: राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।
- कुछ अनुच्छेद अभिव्यक्त रूप से, एक अथवा अधिक अधिकारों का सृजन करते हैं तथा उन्हें प्रदान करते हैं। इनका स्वरूप **सकारात्मक** होता है। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 19(1), 21क, 29, 30 तथा 32 की भाषा भी सकारात्मक है।

मूल अधिकारों का वर्गीकरण

संविधान के **भाग 3** में उल्लिखित मूल अधिकारों को निम्नलिखित छह श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

- समता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)
- स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)
- शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)
- धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)
- संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 21क, 29-30)
- संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

5. मूल अधिकारों का विवरण

5.1. अनुच्छेद 12 : राज्य की परिभाषा (Definition of State)

मूलपाठ

इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, "राज्य" के अंतर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक राज्य की सरकार और विधान-मंडल तथा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी शामिल हैं।

विवरण

अनुच्छेद 12 के अंतर्गत संविधान के भाग 3 के प्रयोजन के लिए "राज्य" को परिभाषित किया गया है। कोई नागरिक, राज्य की परिभाषा में सम्मिलित किसी भी निकाय द्वारा मूल अधिकारों के उल्लंघन किए जाने पर सीधे उच्चतम और उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। न्यायिक घोषणाओं में "अन्य प्राधिकारियों" (other authorities) को विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है। राज्य की यह परिभाषा नि:शेषकारी नहीं है, यह समावेशक है तथा इसका समय-समय पर विस्तार किया जाता रहा है। इसके अंतर्गत संसद, संघीय सरकार, राज्य विधायिका, राज्य कार्यपालिका, स्थानीय अधिकारी आदि शामिल हैं। "अन्य प्राधिकारियों" के अंतर्गत निम्नलिखित निकायों को शामिल किया गया है:

- विधि के तहत गठित वैधानिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले निकाय;
- सरकार द्वारा पर्याप्त वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाले निकाय;
- सरकारी कार्यों का निष्पादन करने वाले निकाय; तथा
- सरकार के नियंत्रण के अधीन निकाय।

निम्नलिखित को न्यायालय के निर्णयों द्वारा "राज्य" अभिनिर्धारित किया गया है:

- राज्य अधिनियम के अधीन पंजीकृत सोसाइटी द्वारा स्थापित प्रादेशिक इंजीनियरिंग महाविद्यालय,
- भारतीय सांख्यिकी संस्थान,
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद,
- भारतीय इस्पात प्राधिकरण,
- राजस्थान विद्युत बोर्ड,
- अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण,
- तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम,

- सभी राष्ट्रीयकृत बैंक....आदि।
    - किंतु, **भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (BCCI)** एवं **राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT)** राज्य की परिभाषा में शामिल **नहीं** हैं।
- **रामन दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण वाद** में, उच्चतम न्यायालय द्वारा "अन्य प्राधिकारी" के तहत शामिल किए जाने वाले निकाय हेतु निम्नलिखित पांच आधार निर्धारित किए गए थे:
    - यदि संपूर्ण शेयर पूंजी का स्वामित्व या प्रबंधन राज्य के अधीन हो;
    - एकाधिकार का दर्जा प्राप्त निकाय;
    - यदि सरकार का कोई विभाग किसी निगम के तत्वावधान में हो;
    - यदि किसी निकाय की कार्यात्मक प्रकृति मूलरूप में सरकारी हो; तथा
    - पूर्ण और व्यापक रूप से राज्य के नियंत्रण वाले निकाय।

5.1.1. क्या राज्य की परिभाषा के तहत निजी निकाय भी शामिल हैं?

- सार्वजनिक संसाधनों के प्रबंधन सहित निजी निकायों की सार्वजनिक कार्यों में बढ़ती भागीदारी ने निरंतर यह प्रश्नचिन्ह उत्पन्न किए हैं कि क्या ऐसे कार्यों का प्रदर्शन करने वाली निजी कंपनियां, निगम, सहकारी समितियों आदि जैसे निकाय अनुच्छेद 12 के तहत राज्य की परिभाषा के तहत शामिल हैं।
- इस तरह के प्रश्न न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं, जिन्हें न्यायालय द्वारा केस-दर-केस आधार पर निर्धारित किया गया है कि राज्य की परिभाषा के तहत किसी निकाय को शामिल किया जाना चाहिए या नहीं। इन प्रश्नों पर विचार करने के पश्चात् दिल्ली उच्च न्यायालय और भारतीय उच्चतम न्यायालय दोनों ने निर्णय दिया है कि CAG उन निजी दूरसंचार कंपनियों का ऑडिट कर सकती है जो सरकार के साथ अपना राजस्व साझा करती हैं। न्यायालय के अनुसार इस तरह की जांच यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि निजी दूरसंचार ऑपरेटरों को मूल्यवान प्राकृतिक संसाधन का उपयोग करने की अनुमति देने के पश्चात् सरकार को अपना "वैध हिस्सा" प्राप्त हुआ है या नहीं। न्यायालय का यह मानना है कि प्राकृतिक संसाधन से संबंधित किसी मामले की सुनवाई के दौरान, उसे अनुच्छेद 149 (जो CAG के कर्तव्यों और शक्तियों से संबंधित है) के तहत एक उद्देश्यपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करनी होगी। इस निर्णय ने CAG की पहुँच को सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों से लेकर किसी भी इकाई तक विस्तारित कर दिया गया जो अपने व्यवसाय में सार्वजनिक संसाधन का उपयोग करते हैं तथा सरकार के साथ राजस्व साझा करते हैं।
- हालांकि, इस पर टिप्पणी नहीं की गई है कि किसी निजी संस्था को किन परिस्थितियों में राज्य का दर्जा दिया जाएगा। दुर्भाग्यवश, अभी तक कोई निर्णायक आधार निर्धारित नहीं किया गया है।

5.2. अनुच्छेद 13 : मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां

मूल पाठ

मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियाँ:

(1) संविधान के प्रारंभ से ठीक पूर्व, भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियां उस सीमा तक शून्य होंगी, जहाँ तक वे इस भाग के उपबंधों से असंगत हैं।

(2) राज्य द्वारा ऐसी किसी विधि का निर्माण नहीं किया जाएगा जो इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को समाप्त अथवा न्यून करती है तथा इस खंड के उल्लंघन में बनाई गई प्रत्येक विधि, उल्लंघन की सीमा तक शून्य होगी।

(3) इस अनुच्छेद में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,

- *"विधि" के अंतर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में विधि का बल रखने वाला कोई अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनियम, अधिसूचना, रूढ़ि या प्रथा शामिल है;*
- *"प्रवृत्त विधि" के अंतर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में किसी विधान-मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस संविधान के प्रारंभ से पूर्व पारित या निर्मित विधि है जो पहले ही निरसित नहीं कर दी गई है, चाहे ऐसी कोई विधि या उसका कोई भाग उस समय पूर्णतया या विशिष्ट क्षेत्रों में प्रवर्तन में नहीं है।*

(4) इस अनुच्छेद की कोई बात अनुच्छेद 368 के अधीन किए गए इस संविधान के किसी संशोधन को लागू नहीं होगी।

विवरण

अनुच्छेद 13, न्यायिक पुनर्विलोकन (judicial review) की शक्ति से संबंधित है। यह देश में उच्चतर न्यायपालिका को मूल अधिकारों के संरक्षक के रूप में स्थापित करता है। इसका उद्देश्य मूल अधिकारों के विषय में संविधान की सर्वोपरि स्थिति को सुरक्षित करना है। न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान का आधारभूत लक्षण (मूल ढांचा) है।

5.2.1. न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review)

- न्यायिक पुनर्विलोकन का तात्पर्य न्यायपालिका की उस शक्ति से है जिसके अंतर्गत वह विधायिका द्वारा निर्मित किसी भी विधि (अथवा उसके किसी भाग) को संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन होने के आधार पर 'अवैध एवं शून्य' (null & void) अथवा कार्यपालिका द्वारा जारी किए गए किसी भी आदेश को उसके क्षेत्राधिकार से बाहर होने पर अधिकारातीत (ultra-vires) घोषित कर सकती है तथा साथ ही, पूर्व में दिए गए अपने निर्णयों की भी समीक्षा कर सकता है।
    - यह सिद्धांत संयुक्त राज्य अमेरिका की न्यायिक व्यवस्था की देन है, जहाँ **मारबरी बनाम मेडिसन वाद (1803)** में न्यायपालिका की अन्तर्निहित शक्ति के रूप में न्यायिक पुनर्विलोकन की स्थापना की गई।
- भारतीय संविधान, मूल अधिकारों की सुरक्षा के लिए कार्यपालिका एवं विधायिका की अनुचित कार्यवाहियों के विरुद्ध स्पष्ट रूप से न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करता है। 'पुनर्विलोकन' शब्द का प्रयोग केवल **अनुच्छेद 137** के अंतर्गत किया गया है, जिसमें उच्चतम न्यायालय को अपने द्वारा दिए गए निर्णयों अथवा आदेशों की न्यायिक पुनर्विलोकन (समीक्षा) की शक्ति प्रदान की गई है। लेकिन, संविधान के अंतर्गत कुछ विशेष प्रावधान है जिनके संबंध में न्यायालय को पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त होती है।
    - अनुच्छेद 13, 32, 131-136, 143, 226, 245, 246, 251, 254 एवं 372 के अंतर्गत उच्चतर न्यायपालिका को कुछ ऐसी शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व प्रदत्त हैं, जिससे न्यायालय को पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त होती है।

5.2.1.1. संविधान के पूर्व की विधियों की विधिमान्यता

- अनुच्छेद 13 (1) उन विधियों के संबंध में है जो संविधान के प्रारंभ के पूर्व प्रवृत्त थीं। अनुच्छेद 13 (2) संविधान के प्रारंभ के पश्चात् की विधियों को लागू होता है। संविधान के प्रारंभ के पूर्व की विधियों को शुरुआत से ही अविधिमान्य घोषित नहीं किया गया है। संविधान के प्रारंभ के पूर्व की कोई विधि यदि भाग 3 के उपबंधों के अनुरूप नहीं है तो वह विधिमान्य नहीं रहती है।

5.2.1.2. पृथक्करणीयता का सिद्धांत (Doctrine of Severability)

- अनुच्छेद 13 (1) और अनुच्छेद 13 (2) में यह कहा गया है कि विधियाँ असंगत होने की उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होंगी। यदि विधायिका द्वारा ऐसी विधि पारित की जाती है जो मूल अधिकारों के किसी प्रावधान का उल्लंघन करती है तो वह विधि न्यायालय द्वारा **असंगतता की सीमा तक** शून्य घोषित कर दी जाती है। संपूर्ण विधि को अमान्य घोषित करने के स्थान पर विधि के केवल उस भाग को हटाया जा सकता है, जो मूल अधिकारों से असंगत है। यह **पृथक्करण का सिद्धांत** है।
    - **मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ वाद, 1980** में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 368 के खंड 4 और 5 को अवैध घोषित कर दिया था, जिसे वर्ष 1976 में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था।

5.2.1.3. ग्रहण का सिद्धांत (Doctrine of Eclipse)

- अनुच्छेद 13 (1) के अनुसार, संविधान के लागू होने से पूर्व प्रवृत्त विधियां उस सीमा तक शून्य होंगी, जिस सीमा तक वे किसी मूल अधिकार का उल्लंघन करती हैं अथवा मूल अधिकारों से असंगत हैं। **ग्रहण का सिद्धांत** संविधान के पूर्व की ऐसी विधि को लागू होता है (अर्थात् ऐसी विधि जो 26 जनवरी 1950 के पहले अधिनियमित की गई हो) जो अधिनियमित किए जाने के समय विधिमान्य थी। यह सिद्धांत संविधान के प्रारंभ के बाद की विधियों को लागू नहीं होता है। यदि संविधान के प्रारंभ के पश्चात् बनायी गयी विधि संविधान से असंगत है तो वह प्रारंभ से ही शून्य होगी।
- हालाँकि, यदि इस प्रकार के मूल अधिकार (जो कि संविधान पूर्व निर्मित विधियों को आच्छादित करता है) को इस सीमा तक संशोधित किया गया है कि संविधान पूर्व निर्मित विधियां संशोधित मूल अधिकार के साथ असंगत नहीं हैं तो ऐसी विधियां पुनः वैध हो जाएँगी। इस प्रकार इन विधियों पर ग्रहण का सिद्धांत लागू नहीं होता है। यह निर्णय **भीखाजी नारायण वाद (1955)** में दिया गया था।

5.2.1.4. अधित्यजन का सिद्धांत (Doctrine of Waiver)

- यह संयुक्त राज्य अमेरिका में लागू है। इसके अनुसार कोई व्यक्ति अपने अधिकारों का स्वेच्छा से परित्याग कर सकता है।
    - हालांकि, भारत में **अधित्यजन का सिद्धांत** मूल अधिकारों पर लागू नहीं होता है। राज्य किसी व्यक्ति के मूल अधिकार को इस आधार पर भंग नहीं कर सकता कि व्यक्ति ने उसका अधित्यजन कर दिया था।

5.2.1.5. भविष्यलक्षी विनिर्णय का सिद्धांत (Doctrine of Prospective Overruling)

- मूल अधिकार का प्रभाव भूतलक्षी (Retrospective) नहीं है बल्कि इसका भविष्यलक्षी (Prospective) प्रभाव है। भारतीय संविधान के प्रवर्तन के पूर्व प्रवृत्त विधियों पर मूल अधिकारों का प्रभाव उस तिथि से लागू होगा, जिस तिथि से इन्हें लागू किया गया है। संविधान के लागू होने के पूर्व किए गए कार्यों के संबंध में संविधान पूर्व विधियाँ लागू होंगी। इसलिए, संविधान पूर्व प्रवृत्त विधियों के अधीन संविधान के लागू होने के पूर्व उत्पन्न अधिकार एवं दायित्व का मूल अधिकारों के उल्लंघन के बावजूद भी प्रवर्तन कराया जा सकता है।

5.2.1.6. मोटर जनरल ट्रेड्स बनाम स्टेट ऑफ आन्ध्र प्रदेश (1984)

- यदि किसी विधि के वैध खंड को अवैध खंड से अलग किया जा सकता है और वैध खंड को एक स्वतंत्र विधि बनाने के लिए विचार किया जा सकता है, तो उक्त अनुभाग वैध रहता है।
- यदि वैध और अवैध खंड आपस में इतने मिश्रित हैं कि उन्हें पृथक नहीं किया जा सकता है तो संपूर्ण विधि को शून्य घोषित किया जा सकता है।

5.2.2. मूल अधिकारों की संशोधनीयता और मूल ढांचे का सिद्धांत

- अनुच्छेद 13 (2) में कहा गया है कि राज्य, ऐसी कोई **विधि (law)** अधिनियमित नहीं करेगा, जो मूल अधिकारों में कटौती अथवा कमी करती है। इस संबंध में विवाद तब उत्पन्न हुआ जब यह प्रश्न सामने आया कि क्या ऐसी कोई **'विधि'** शब्द में अनुच्छेद 368 के तहत **'संविधान संशोधन अधिनियम'** भी सम्मिलित हैं?"
    - संविधान के **भाग 4** में उल्लिखित नीति-निदेशक तत्वों का उद्देश्य देश में सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना है। इन तत्वों को राज्य की नीतियों द्वारा लागू करने के लिए संसद ने आरंभ से ही संपत्ति के अधिकार को सीमित करने हेतु संविधान संशोधन की नीति अपनाई, जिसे मूल अधिकार में हस्तक्षेप के आधार पर चुनौती दी गई।
- मूल अधिकारों की संशोधनीयता से व्युत्पन्न कुछ प्रमुख वाद (एवं संविधान संशोधन अधिनियम) निम्नलिखित हैं:
    - **शंकरी प्रसाद वाद (1951):** इसमें उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान संशोधन, साधारण विधि नहीं है। अत: अनुच्छेद 13 में 'विधि' शब्द के अंतर्गत केवल साधारण विधियां शामिल हैं, न कि 'संविधान संशोधन अधिनियम'। इसलिए संसद के पास मूल अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति है।
    - **गोलकनाथ वाद (1967):** उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय को उलट दिया और निर्णय दिया कि संविधान में मूल अधिकारों को एक सर्वोच्च स्थिति प्राप्त है। अत: संसद द्वारा मूल अधिकारों में संशोधन **नहीं** किया जा सकता है।
- **24वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971:** संसद ने इस अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 13 में एक नया खंड जोड़कर यह स्पष्ट कर दिया गया कि अनुच्छेद 13 के अर्थांतर्गत अनुच्छेद 368 के अधीन पारित संवैधानिक संशोधन, साधारण विधि नहीं है। इस प्रकार अनुच्छेद 13, संविधान संशोधन अधिनियमों पर लागू नहीं होगा। इस प्रकार, राज्य के पास एक बार पुन: मूल अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति निहित हो गई।
- **केशवानंद भारती वाद (1973):** न्यायपालिका ने संविधान के **मूल ढांचे** की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसके अनुसार संविधान की कुछ ऐसी मूल विशेषताएँ हैं, जिनका संशोधन नहीं किया जा सकता है। मूल अधिकारों का संशोधन केवल उस सीमा तक किया जा सकता है जिस सीमा तक वे मूल ढांचे का भाग नहीं हैं।
- **42वां संविधान संशोधन अधिनियम (1976):** इस अधिनियम द्वारा मूल ढांचे के सिद्धांत को शून्य घोषित करने हेतु अनुच्छेद 368(4) और 368(5) समाविष्ट किए गए। इस अधिनियम ने संसद को संविधान में संशोधन करने की असीमित शक्तियां प्रदान की, जिन्हें न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती थी।
    - अनुच्छेद 368 (4) - कोई संसोधन किसी न्यायालय में किसी भी आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।
    - अनुच्छेद 368 (5) - संसद की संविधायी शक्तियों पर किसी प्रकार का निर्बंधन नहीं होगा।
- **मिनर्वा मिल्स वाद (1980):** इस निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 368(4) एवं 368(5) को निरस्त कर दिया, क्योंकि इनके द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन संबंधी शक्तियों में कटौती की गई थी, जो संविधान का मूल ढांचा है। अत: वर्तमान में मूल अधिकारों में उस सीमा तक संशोधन किया जा सकता है, जहाँ तक कि वह संशोधन के मूल ढांचे को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नही करता हैं।

- उच्चतम न्यायालय द्वारा 368 (4) और 368 (5) को निरसित कर दिया गया।
- उच्चतम न्यायालय ने कहा कि न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान की एक आधारभूत विशेषता है, जिसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।
- इस प्रकार, वर्तमान में मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है तथा ये न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन भी हैं।

- **आई. आर. कोएल्हो वाद (2007):** यह **9वीं अनुसूची** में सम्मिलित अधिनियमों की वैधता से संबंधित है। मूल ढांचे के सिद्धांत को केशवानंद भारती के निर्णय की तिथि से अनुसूची में शामिल किए गए अधिनियमों पर लागू किया जाएगा क्योंकि न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान की मूल विशेषता है।

मूल ढांचे का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार संविधान के मूल ढांचे या आधारभूत विशेषताओं को संवैधानिक संशोधन के माध्यम से संसद द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता है। विभिन्न निर्णयों के माध्यम से, न्यायपालिका द्वारा संविधान के मूल ढांचे के रूप में निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया गया है:

- संविधान की सर्वोच्चता;
- सरकार का गणतंत्रात्मक और लोकतांत्रिक स्वरूप;
- पंथनिरपेक्ष प्रकृति;
- शक्तियों का पृथक्करण;
- न्यायिक पुनर्विलोकन;
- संप्रभुता इत्यादि।

5.3. अनुच्छेद 14 - विधि के समक्ष समता

मूलपाठ

राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

विवरण

विधि के समक्ष समता (Equality before Law)

- इसका अर्थ यह है कि विधि के समक्ष सभी नागरिक समान है। यह **ब्रिटिश परंपरा** से ग्रहण किया गया है। इसकी प्रवृत्ति **नकारात्मक** है क्योंकि इसके तहत किसी भी विशेषाधिकार को स्वीकार नहीं किया गया है।

विधि का समान संरक्षण (Equal Protection of Law)

- इसे **संयुक्त राज्य अमेरिका** के संविधान से ग्रहण किया गया है। इसका अर्थ है कि राज्य को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि समान के साथ समान और असमान के साथ असमान व्यवहार किया जाए। समान संरक्षण का सिद्धांत असमान व्यक्तियों को विशेष सुविधाएँ और अवसर प्रदान करके राज्य द्वारा सकारात्मक कार्य किए जाने की अपेक्षा करता है। अतः यह एक **सकारात्मक** अवधारणा है।
- **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अनवर अली सरकार वाद (1951)** में उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि **'विधि के समक्ष समता' तथा 'विधियों का समान संरक्षण' दोनों वाक्यांशों का अर्थ एक ही है।** सैद्धान्तिक रूप से इसमें अंतर हो सकता है किन्तु, व्यावहारिक स्तर पर दोनों में कोई विभेद नहीं है।

विधि का शासन (Rule of Law)

विधि के समक्ष समता का विचार ए. वी. डायसी द्वारा प्रतिपादित **'विधि का शासन'** के सिद्धांत का मूल तत्व है। इसमें निम्नलिखित तीन तत्व सम्मिलित हैं:

- स्वेच्छाचारी शक्तियों की अनुपस्थिति, अर्थात किसी भी व्यक्ति को विधि के उल्लंघन के अतिरिक्त दण्डित नहीं किया जा सकता है।
- विधि के समक्ष समता अत्यावश्यक है, अर्थात सभी नागरिक विधि के समक्ष समान हैं।
- संविधान व्यक्तिगत अधिकारों का स्रोत नहीं बल्कि व्यक्तिगत अधिकारों का परिणाम है, क्योंकि संविधान के उद्भव के पूर्व भी व्यक्तिगत अधिकारों का अस्तित्व था।

भारत में इसके प्रथम एवं द्वितीय तत्व ही लागू होते हैं। चूँकि भारतीय व्यवस्था में, संविधान व्यक्तिगत अधिकारों का स्रोत है, अत: तृतीय तत्व लागू नहीं होता है।

उच्चतम न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में अनुच्छेद 14 के अंतर्गत विधि के शासन को संविधान के मूल ढांचे का एक घटक माना है।

विधि के समक्ष समता के अपवाद

भारतीय संविधान में निहित विधि के समक्ष समता का सिद्धांत पूर्णतया निरपेक्ष नहीं हैं। इसके कुछ अपवाद निम्नलिखित हैं:

- राष्ट्रपति और राज्यपाल को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 361 और 361A के अंतर्गत अभियोजन के विरुद्ध उन्मुक्ति प्रदान की गई है।
- सांसदों और विधायकों को विधायिका में विशेषाधिकार (अनुच्छेद 105 और 194) प्रदान किए गए हैं।
- विदेशी राजनयिकों को भी अभियोजन के विरुद्ध उन्मुक्ति प्रदान की गई है।

प्रयोजनीयता

- अनुच्छेद 14, चाहे वह भारतीय नागरिक, विदेशी अथवा यहां तक कि कंपनी जैसी कोई विधिक इकाई ही क्यों न हो, सभी को समानता का अधिकार प्रदान करता है। साथ ही, यह केवल राज्य की कार्यवाई के विरुद्ध ही उपलब्ध है।

5.4. अनुच्छेद 15 - भेदभाव के विरुद्ध अधिकार (Right against Discrimination)

मूलपाठ

धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध।

1. *राज्य किसी भी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर विभेद नहीं करेगा।*
2. *कोई नागरिक, केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर –*
   (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश; या
   (ख) पूर्णतः या अंशतः राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम स्थानों के उपयोग के संबंध में; किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बन्धन या शर्त के अधीन नहीं होगा।
3. *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।*
4. *इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।*

5. *इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 19 के खंड (1) के उपखंड (g) की कोई बात राज्य को, सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए अथवा अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए, विधि द्वारा, कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी, जहाँ तक ऐसे विशेष उपबंध, अनुच्छेद 30 के खंड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं से भिन्न, शिक्षा संस्थाओं में, जिनके अंतर्गत निजी शिक्षा संस्थाएँ भी शामिल हैं, चाहे वे राज्य से सहायता प्राप्त हों या नहीं, प्रवेश से संबंधित हैं।*

विवरण

- अनुच्छेद 15(1) **केवल धर्म, मूलवंश, लिंग, जाति और जन्म स्थान** के आधार पर राज्य द्वारा विभेद का प्रतिषेध करता है। विभेद **केवल** उपर्युक्त आधारों पर निषिद्ध है। राज्य अन्य आधारों पर विभेद कर सकता है।
- **इस संदर्भ में 'केवल' का अर्थ** - इसका अर्थ है कि केवल उपर्युक्त आधार पर भेदभाव की अनुमति नहीं दी गयी है। राज्य उपर्युक्त में से किसी भी आधार के साथ संयोजित कुछ अन्य आधारों पर विभेद कर सकता है।
- उदाहरणार्थ, केवल जाति के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जा सकता। लेकिन, जाति और पिछड़ेपन के आधार पर **सकारात्मक विभेद अथवा सकारात्मक कार्रवाई** की अनुमति प्रदान की गई है।
- अनुच्छेद 15 (2) विशिष्ट प्रकार की द्वियांगता के मामले में भेदभाव पर रोक लगाने से संबंधित है, जबकि 15 (1) राज्य के लिए केवल दिशा-निर्देश है। ज्ञातव्य हैकि 15 (2) निजी व्यक्तियों के विरूद्ध भी उपलब्ध है
- अनुच्छेद 15(3) महिलाओं एवं बच्चों के लिए सकारात्मक कार्यवाई का प्रावधान करता है। यह राज्य को सामाजिक समानता की स्थापना के लिए सकारात्मक एवं तर्कपूर्ण विभेद करने की अनुमति प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था एवं बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था।

5.4.1. संबंधित न्यायिक वाद

- पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण के मुद्दे पर कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई। उच्चतम न्यायालय ने **चंपकम दोराईराजन बनाम मद्रास राज्य वाद (1951)** में राज्य सरकार के उस निर्णय को निरस्त कर दिया जिसके द्वारा मेडिकल एवं इंजीनियरिंग कॉलेजों में गैर-ब्राह्मण छात्रों के लिए सीटें आरक्षित की गई। यह अनुच्छेद 15(1) के तहत धर्म, जाति या लिंग के आधार पर विभेद का प्रतिषेध के आधार पर किया गया था।
- लेकिन, इस निर्णय को बाद में संसद के द्वारा एक संविधान संशोधन के माध्यम से निरस्त कर दिया गया एवं एक नवीन प्रावधान अनुच्छेद 15(4) को जोड़ा गया जिसने कार्यपालिका को यह शक्ति प्रदान की है कि सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के नागरिकों के संबंध में सकारात्मक कार्रवाई (affirmative action) के प्रावधान करने में सरकार सक्षम है।
- लेकिन, संशोधित प्रावधानों के अंतर्गत राज्य द्वारा उठाए गए कदमों को भी चुनौती प्रदान की गई एवं पुनः उच्चतम न्यायालय ने **एम. आर. बालाजी बनाम मैसूर राज्य वाद** (1963) में यह निर्णय दिया कि एक विशेष वर्ग पिछड़ा है अथवा नहीं इसे ज्ञात करने हेतु लोगों का एक समूह अथवा उसकी जाति एकमात्र या प्रमुख कारण नहीं हो सकता है। साथ ही, उच्चतम न्यायालय ने आरक्षण के मामले में एक अन्य निर्देश यह दिया कि आरक्षण एक उचित सीमा से अधिक नहीं हो सकता हैं।
- उच्चतम न्यायालय ने **मंडल वाद के निर्णय (1993)** में जाति आधारित आरक्षण को वैध माना और क्रीमीलेयर की अवधारणा प्रदान की। इसके अनुसार, पिछड़े वर्गों में संपन्न लोगों को समाज के अग्रणी समुदायों के समकक्ष मानकर किसी भी प्रकार का आरक्षण नहीं दिया जाता है।

5.4.2. अनुच्छेद 15 एवं संवैधानिक संशोधन

- अनुच्छेद 15(4) को **प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम** द्वारा जोड़ा गया। यह सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों के लिए **सकारात्मक कार्रवाई (आरक्षण)** का प्रावधान करता है।
- अनुच्छेद 15(5), सरकार द्वारा सहायता-प्राप्त या गैर-सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में समाज के सामाजिक और शैक्षणिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए सकारात्मक कार्रवाई (आरक्षण) का प्रावधान करता है।
- जहाँ अनुच्छेद 15(4) की प्रकृति साधारण है, वहीं अनुच्छेद 15(5) विशिष्ट रूप से शिक्षा से संबंधित है। अनुच्छेद 15(5) को **93वें संविधान संशोधन अधिनियम (2005)** द्वारा जोड़ा गया। अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान, इस प्रावधान के अपवाद हैं। इस संशोधन के द्वारा SC, ST एवं OBC वर्ग के छात्रों हेतु शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की सुविधा प्रदान की गई है।

निजी शिक्षण संस्थानों में आरक्षण से संबंधित विवाद

- **TMA पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) और इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) वाद** में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि सरकार द्वारा गैर-सहायता प्राप्त निजी शिक्षण संस्थानों में कोटा (आरक्षण) प्रणाली लागू नहीं कर सकती है, क्योंकि यह अनुच्छेद 19(1)(g) के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का उल्लंघन है। इसके माध्यम से किसी भी वृत्ति (पेशा) के चयन की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है।
- 93वाँ संविधान संशोधन (2005), इस निर्णय को प्रतिस्थापित करने के लिए अधिनियमित किया गया।
- उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त संविधान संशोधन की वैधता को बनाए रखा। तदुपरांत, केंद्र सरकार द्वारा संविधान के उपबंधों को प्रभावी बनाने के लिए **केंद्रीय शैक्षिक संस्थान अधिनियम, 2006** पारित किया गया जिसके माध्यम से IIT, IIM एवं अन्य शैक्षणिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गो (OBC) के लिए 27% सीटें आरक्षित की गई।
- **ए. के. ठाकुर बनाम भारतीय संघ (2008) वाद** में न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि राज्य एवं निजी शिक्षण संस्थाओं में अनुच्छेद 15(5) के तहत आरक्षण का प्रावधान मान्य हैं।
- **राजस्थान के गैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूलों की सोसाइटी बनाम भारत संघ वाद, 2013:** निजी गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों में भी शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत 25 % सीटों पर आरक्षण की व्यवस्था को आरंभ करने की वैधता को उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाए रखा गया। इस निर्णय में उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नलिखित तर्क दिए गए:
  - शिक्षा को विशुद्ध रूप से व्यावसायिक उद्यम के रूप में नहीं माना जा सकता।
  - अनुच्छेद 21A राज्य पर एक दायित्व है।
  - शिक्षा का अधिकार, संस्था केंद्रित अधिनियम की अपेक्षा एक बाल केंद्रित अधिनियम है।

5.4.3. अनुच्छेद 15 और सामाजिक प्रगति

- अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समता को स्थापित करता है, किन्तु असमानता के ऐतिहासिक तथ्य वंचित समूहों के लिए विशेष उपचार की आवश्यकता पर बल प्रदान करते हैं। अतः अनुच्छेद 15 में समाज में हाशिए पर स्थित वर्गों के पक्ष में प्रावधान पहले से ही मौजूद हैं।

- शैक्षिक और अन्य सुविधाओं के संदर्भ में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवारों के पक्ष में अधिमानी (Preferantial) व्यवहार, अनुच्छेद 15 पर आधारित सामाजिक सुधार का ही एक रूप है। दूसरी ओर, उच्चतम न्यायालय ने सामान्य **सामाजिक कल्याण** को ध्यान में रखते हुए, मंडल वाद में, आरक्षण को 50% तक सीमित करते हुए संतुलन स्थापित किया है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों से संबंधित वाद में, उच्चतम न्यायालय ने क्रीमीलेयर का प्रावधान प्रस्तुत किया है।
- अनुच्छेद 15 के आधार पर महिलाओं और उनकी सामाजिक प्रगति के संदर्भ में, निम्नलिखित आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए:
    - उच्चतम न्यायालय के अनुसार, विशेष रूप से महिलाओं के लिए पदों का आरक्षण अनुच्छेद 15 (3) के तहत वैध है क्योंकि यह राज्य कार्रवाई के सकारात्मक आयाम को सम्मिलित करता है।
    - न्यायालय ने आपराधिक कानून (Criminal Law) और प्रक्रियात्मक कानून (Procedural Law) में महिलाओं के पक्ष में किए गए प्रावधानों को उनकी सामाजिक निर्बलता के आलोक में स्वीकार किया गया।
    - अनुच्छेद 15 में स्थानीय निकायों और शैक्षणिक संस्थानों में महिलाओं के लिए आरक्षण के विशेष उपबंध किए गए हैं।
    - **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य वाद** (1997) में उच्चतम न्यायालय द्वारा कार्य-स्थल पर यौन उत्पीड़न को समाप्त करने हेतु उपाय प्रस्तुत किए सुझाएँ गए क्योंकि महिलाओं के प्रति उत्पीड़न अनुच्छेद 14, 15, और 21 का उल्लंघन करता है।

5.5. अनुच्छेद 16 - लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता का अधिकार

मूल पाठ

लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता-

1. *राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।*
2. *राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न ही उससे विभेद किया जाएगा।*
3. *इस अनुच्छेद की कोई बात संसद को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी, जो किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र की सरकार के या उसमें के किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन वाले, किसी वर्ग या वर्गों के पद पर नियोजन या नियुक्ति के संबंध में, ऐसे नियोजन या नियुक्ति से पहले, उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के भीतर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती है।*
4. *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।*

   (4-A) *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को अनुसूचित जातियों और जनजातियों के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, राज्य के अधीन सेवाओं में, किसी वर्ग के अनुवर्ती वरिष्ठता के साथ प्रोन्नति के मामलों में, आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।*

(4-B) *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को किसी वर्ष में किन्हीं न भरी गयी ऐसी रिक्तियों को, जो खंड 4 या खंड 4(A) के अधीन किए गए आरक्षण के लिए किसी उपबंध के अनुसार उस वर्ष में भरी जाने के लिए आरक्षित हैं, किसी उत्तरवर्ती वर्ष या वर्षों में भरे जाने के लिए पृथक वर्ग की रिक्तियों के रूप में विचार करने से निवारित नहीं करेगी और ऐसे वर्ग की रिक्तियों पर उस वर्ष की रिक्तियों के साथ, जिसमें वे भरी जा रही हैं, उस वर्ष की रिक्तियों की कुल संख्या के सम्बन्ध में पचास प्रतिशत आरक्षण की अधिकतम सीमा का अवधारण करने के लिए विचार नहीं किया जाएगा।*

5. *इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी जो यह उपबंध करती है कि किसी धार्मिक या सांप्रदायिक संस्था के कार्यकलाप से संबंधित कोई पदधारी या उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का मानने वाला या विशिष्ट संप्रदाय का ही हो।*

विवरण

- अनुच्छेद 16(2) में उल्लिखित है कि राज्य धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान और निवास के आधार पर लोक नियोजन के विषय में विभेद नहीं कर सकता है। किंतु राज्य अन्य आधारों पर विभेद करने के लिए स्वतंत्र है। ध्यान देने योग्य है कि यह उपखण्ड, अनुच्छेद 15 में निर्दिष्ट आधारों में दो और आधारों को समाविष्ट करता है- उद्भव और निवास।
- निवास आरक्षण का आधार नहीं हो सकता है। हालांकि, अनुच्छेद 16(3) एक अपवाद है। राज्य या संघ राज्य क्षेत्र केवल अपने निवासियों के लिए कुछ पदों को आरक्षित कर सकते है, हालांकि केवल संसद ही इस संबंध में कानून बनाने में सक्षम है।
- अनुच्छेद 16(4) राज्य को किन्हीं पिछड़े वर्गों के पक्ष में लोक नियोजन में आरक्षण प्रदान करने के लिए सक्षम बनाता है। पिछड़ा वर्ग में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों और सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग या ऐसा कोई भी वर्ग शामिल किया जा सकता है, जिसे राज्य पिछड़ा मानता हो। इस प्रकार, सकारात्मक कार्रवाई की संभावना अनुच्छेद 15 की अपेक्षा अनुच्छेद 16 में व्यापक है।
- अनुच्छेद 16(5) किसी धार्मिक व्यवस्था के कुछ पदों के संबंध में धर्म के आधार पर विभेद का प्रावधान करता है।

5.5.1. मंडल आयोग और उसके पश्चात

मंडल आयोग को वर्ष 1979 में अनुच्छेद 340 के तहत, जनसंख्या के सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की जांच करने और उनकी उन्नति के लिए उपाय सुझाने के लिए गठित किया गया था। आयोग ने जनसंख्या के लगभग 52% भाग को पिछड़ा हुआ माना। वर्ष 1990 में वी.पी. सिंह सरकार द्वारा 'अन्य पिछड़े वर्गों (OBC)' के लिए सरकारी नौकरियों में 27% आरक्षण की व्यवस्था की गई।

इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ वाद (1992) में उच्चतम न्यायालय ने अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण प्रदान करने की सरकार की नीति को सही ठहराया। यह मंडल वाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस निर्णय के तहत:

- न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनु.16(4), अनु.16(1) का विरोधी नहीं है। दोनों एक ही क्षेत्र में कार्यरत है। इसी आधार पर न्यायालय ने 27 प्रतिशत आरक्षण को वैध माना।
- आरक्षण केवल आरंभिक नियुक्ति के समय पर दिया जाएगा, पदोन्नति के लिए नहीं।
- इसमें क्रीमीलेयर से संबंधित लोगों को आरक्षण से बाहर रखने का सिद्धांत दिया गया।
- इसने आरक्षण में किसी जाति को शामिल करने अथवा उसे बाहर करने के मापदंडों के विषय में निर्णय लेने के लिए सरकार को एक सांविधिक निकाय (राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग) के गठन का निर्देश दिया। वर्तमान में 102वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक निकाय का दर्जा प्रदान कर दिया गया है।

प्रोन्नति में आरक्षण का मुद्दा

- 77वां संविधान संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 16 में एक नया खंड 4(a) अंतःस्थापित किया गया। इसके द्वारा पदोन्नति में आरक्षण को वैध बनाया गया।
- **वीरपाल सिंह बनाम भारत संघ वाद (1995)** में न्यायालय ने कहा था कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति को प्रोन्नति में आरक्षण नहीं दिया जाएगा।
- 85वां संविधान संशोधन द्वारा न्यायालय के इस निर्णय को निष्प्रभावी कर दिया गया।
- **नागराज वाद** में, 85वें संविधान संशोधन की वैधता पर प्रश्न किया गया। उच्चतम न्यायालय ने माना कि संशोधन संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन नहीं करता है। उच्चतम न्यायालय ने तीन और दिशा-निर्देश दिए:
    - यह ध्यान रखना होगा कि जिस वर्ग के लिए पदोन्नति में आरक्षण की मांग की है, उस वर्ग का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हो।
    - अनुच्छेद 335 के अंतर्गत, इससे प्रशासन की दक्षता प्रभावित नहीं होनी चाहिए।
- **अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान फैकल्टी एसोसिएशन बनाम भारत संघ (2013) वाद** में उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की पीठ ने निर्णय दिया कि कुछ ऐसे कार्य हैं जिसके लिए केवल योग्यता एकमात्र मापदंड (सुपर स्पेशलिटी पदों हेतु) होनी चाहिए। केंद्र सरकार ने इस निर्णय के विरुद्ध याचिका दायर की और समीक्षा याचिका की सुनवाई के दौरान एक पांच सदस्यीय पीठ ने यह निर्णय दिया कि सरकार, फैकल्टी के सुपर स्पेशलिटी पदों में आरक्षण हेतु संविधान में संशोधन के लिए स्वतंत्र है। इस संदर्भ में न्यायालय का पूर्व निर्णय, ऐसे पदों पर आरक्षण के लिए सरकार के निर्णय लेने की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबन्ध आरोपित नहीं करता है।
- न्यायमूर्ति टीएस ठाकुर एवं न्यायमूर्ति आर भानुमति की खंडपीठ ने **एस. पन्नीरसेल्वम एवं अन्य बनाम तमिलनाडु (सिविल अपील)** तथा अन्य याचिकाओं को स्वीकार करते हुए SC/STs को प्रोन्नति में आरक्षण और परिणामी वरिष्ठता के मामले में मद्रास हाईकोर्ट के निर्णय को निरस्त कर दिया। खंडपीठ ने कहा कि नियमों में परिणामी वरिष्ठता का कोई प्रावधान न होने के कारण 'कैच अप रूल्स' लागू होगा।

प्रयोजनीयता

- लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता का अधिकार **केवल** भारतीय नागरिकों के लिए उपलब्ध है।

5.6. अनुच्छेद 17 - *अस्पृश्यता का अंत*

मूल पाठ

अस्पृश्यता का अंत *.- "अस्पृश्यता" का अंत किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। "अस्पृश्यता" से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।*

विवरण

अस्पृश्यता देश में सभी रूपों में निषिद्ध है। उल्लेखनीय है कि संविधान में 'अस्पृश्यता' शब्द को परिभाषित **नहीं** किया गया है। अनुच्छेद 35 के तहत, संसद द्वारा इस उपबंध को लागू करने के लिए कई अधिनियम बनाए गए हैं:

5.6.1. अस्पृश्यता की समाप्ति के लिए विभिन्न अधिनियम

नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955

अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 का वर्ष 1976 में संशोधन करके नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम द्वारा इसका नाम परिवर्तित कर दिया गया। यह अस्पृश्यता विरोधी प्रावधानों को और सशक्त करता है। अस्पृश्यता एक संज्ञेय अपराध (cognizable offence) (अर्थात पुलिस अधिकारी, मजिस्ट्रेट वारंट के बिना आरोपी को गिरफ्तार कर सकते हैं) तथा गैर-प्रशम्य (non-compoundable) (अर्थात ऐसे वाद जिन्हें वापस नहीं लिया जा सकता, चाहे दोनों पक्षों में समझौता हो चुका हो; इन मामलों में राज्य एक पक्ष बन जाता है) अपराध है। यह क़ानून त्वरित सुनवाई के लिए एक विशेष न्यायालय का प्रावधान करता है।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदाय को न्याय प्रदान करने और उत्पीड़न के शिकार लोगों को राहत, पुनर्वास उपलब्ध कराने के साथ ही, उनको गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार प्रदान करने के लिए **अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989** पारित किया गया।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 का उद्देश्य अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के विरुद्ध अत्याचार की रोकथाम तथा इसके लिए और अधिक कठोर प्रावधानों को सुनिश्चित करना है। यह अधिनियम मूल अधिनियम में एक संशोधन है और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के साथ संशोधन प्रभावों के साथ लागू किया गया है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित प्रावधान किए गए है:

1. **अपराधों की विस्तृत सीमा:** अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध किए जाने वाले नए अपराधों में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के सिर और मूंछ की बालों का मुंडन कराने और इसी तरह अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों के सम्मान के विरुद्ध किए गए कृत हैं। अत्याचारों में समुदाय के लोगों को जूते की माला पहनाना, उन्हें सिंचाई सुविधाओं तक जाने से रोकना या वन अधिकारों से वंचित करने रखना, मानव और पशु नरकंकाल को निपटाने और लाने-ले जाने के लिए तथा बाध्य करना, कब्र खोदने के लिए बाध्य करना, सिर पर मैला ढोने की प्रथा का उपयोग और अनुमति देना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं को देवदासी के रूप में समर्पित करना, जाति सूचक गाली देना, जादू-टोना अत्याचार को बढ़ावा देना, सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार करना, चुनाव लड़ने में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों को नामांकन दाखिल करने से रोकना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं को वस्त्र हरण कर आहत करना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के किसी सदस्य को घर, गांव और आवास छोड़ने के लिए बाध्य करना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पूजनीय वस्तुओं को विरुपित करना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य के विरुद्ध यौन दुर्व्यवहार करना, यौन दुर्व्यवहार भाव से उन्हें छूना और भाषा का उपयोग करना है।
2. **आहत करना और धमकाना:** अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य को आहत करने, उन्हें दुखद रूप से आहत करने, धमकाने और अपहरण करने जैसे अपराधों को, जिनमें 10 वर्ष से कम की सजा का प्रावधान है, उन्हें अत्याचार निवारण अधिनियम में अपराध के रूप में शामिल करना। अभी अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों पर किए गए अत्याचार मामलों में 10 वर्ष और उससे अधिक की सजा वाले अपराधों को ही अपराध माना जाता है।

3. **मामलों का तेजी से निपटान:** मामलों का तीव्र निपटान के लिए अत्याचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत आने वाले अपराधों में विशेष रूप से मुकदमा चलाने के लिए विशेष न्यायालय बनाना और विशेष लोक अभियोजक को निर्दिष्ट करना।
4. **प्रत्यक्ष संज्ञान लेने की शक्ति:** विशेष अदालतों को अपराध का प्रत्यक्ष संज्ञान लेने की शक्ति प्रदान करना और जहां तक संभव हो, आरोप पत्र दाखिल करने की तिथि से दो महीने के अंदर सुनवाई पूरी करना।
5. **अतिरिक्त अध्याय:** पीड़ितों तथा गवाहों के अधिकारों पर अतिरिक्त अध्याय शामिल करना आदि।
6. **जानबूझकर की गई ढिलाई की स्पष्ट परिभाषा:** शिकायत दर्ज होने से लेकर एवं अधिनियम के अंतर्गत कार्य की उपेक्षा के आयामों को लेते हुए हर स्तर के सरकारी कर्मचारियों के लिए 'जानबूझकर की गई ढिलाई' पद की स्पष्ट परिभाषा निर्धारित करना।
7. **अपराध की अन्य प्रकल्पनाएं:** अपराधों में प्रकल्पनाओं का शामिल किया जाना - यदि अभियुक्त पीड़ित या उसके परिवार से परिचित है, तो जब तक इसके विपरीत सिद्ध न किया जाए न्यायालय यह मानेगा कि अभियुक्त पीड़ित की जाति अथवा जनजातीय पहचान के बारे में जानता था।

5.7. अनुच्छेद 18 - *उपाधियों का अंत*

मूल पाठ

1. *राज्य सेना या विद्या संबंधी सम्मान के सिवाय और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा।*
2. *भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।*
3. *कोई व्यक्ति जो भारत का नागरिक नहीं है, राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।*
4. *राज्य के अधीन लाभ या विश्वास का पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से या उसके अधीन किसी रूप में कोई भेंट, उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।*

विवरण

- यह राज्य, नागरिकों और गैर-नागरिकों के अधिकारों पर एक प्रतिबंध आरोपित करता है। राज्य सैन्य या शैक्षणिक उपाधि को छोड़कर कोई अन्य उपाधि प्रदान नहीं करेगा। भारत के किसी नागरिक को किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार करने की अनुमति नहीं है। भारतीय राज्य के अधीन लाभ या विश्वास का पद धारण करने वाले विदेशी नागरिक को राष्ट्रपति की अनुमति के बिना किसी विदेशी राज्य से किसी भी प्रकार की उपाधि, भेंट, उपलब्धि या पद स्वीकार करने की अनुमति नहीं है।

भारत रत्न और पद्म पुरस्कारों से संबंधित वाद

- **बालाजी राघवन वाद** में, उच्चतम न्यायालय ने राज्य को भारत रत्न और पद्म पुरस्कार देने की अनुमति प्रदान की है, किन्तु साथ ही यह स्पष्ट किया है कि इन्हें नाम के प्रत्यय या उपसर्ग के तौर पर उपयोग नहीं किया जा सकता।

5.8. अनुच्छेद 19 - स्वतंत्रता का अधिकार

मूल पाठ

वाक् -स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण-

1. *सभी नागरिकों को--*
    - *वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का,*
    - *शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का,*
    - *संगम या संघ बनाने का,*

- *भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का,*
- *भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का,*
- *कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का, अधिकार होगा।*

2. *खंड (1) के उपखंड (a) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय-अवमान, मानहानि या अपराध-उद्दीपन के संबंध में युक्तियुक्त निर्बंधन जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बंधन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।*
3. उक्त खंड के उपखंड (b) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर, भारत की प्रभुता और अखंडता या लोक व्यवस्था के हितों में युक्तियुक्त निर्बंधन जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बंधन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।
4. उक्त खंड के उपखंड (c) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखंडता या लोक व्यवस्था या सदाचार के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धन, जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है, वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।
5. उक्त खंड के उपखंड (d) और (e) की कोई बात उक्त उपखंडों द्वारा दिए गए अधिकारों के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों में या किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए युक्तियुक्त निर्बन्धन जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।
6. उक्त खंड के उपखंड (g) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धन जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी और विशिष्टतया उक्त उपखंड की कोई बात--
    - कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने के लिए आवश्यक वृत्तिक या तकनीकी अर्हताओं से, या
    - राज्य द्वारा या राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण में किसी निगम द्वारा कोई व्यापार, कारोबार, उद्योग या सेवा, नागरिकों का पूर्णतः या भागतः अपवर्जन करके या अन्यथा, चलाए जाने से,

जहाँ तक कोई विद्यमान विधि संबंध रखती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या इस प्रकार संबंध रखने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।

विवरण

- संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत अधिकारों की प्रकृति सकारात्मक हैं तथा यह केवल भारत के नागरिक को प्राप्त हैं। प्रारंभ में इस अनुच्छेद के अंतर्गत नागरिकों को सात स्वतंत्रताएं प्राप्त थीं। लेकिन, 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा अनुच्छेद 19(1)(f) (संपति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार) समाप्त कर दिया गया है। वर्तमान में यह अनुच्छेद नागरिकों को छः प्रकार की स्वतंत्रताएं प्रदान करता हैं।

- अनुच्छेद 19 को भारतीय लोकतांत्रिक शासन का आधार है। हालांकि, कोई भी स्वतंत्रता असीमित (आत्यंतिक) नहीं है और इन पर 'युक्तियुक्त' प्रतिबंध आरोपित करके कटौती की जा सकती है।
- युक्तियुक्त प्रतिबंध केवल विधि के प्राधिकार द्वारा आरोपित किया जा सकता है, न कि कार्यपालिका की कार्रवाई से। यह न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन है। प्रतिबंध केवल संविधान में उल्लिखित आधारों पर लगाया जा सकता है।

अनुच्छेद 19(1) के द्वारा निम्नलिखित स्वतंत्रताएं प्रदान की गई हैं:

अनुच्छेद 19(1)(a) - वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

- वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है प्रत्येक नागरिक अपने विचारों और विश्वासों को निर्बाध रूप से मौखिक, लिखित अथवा मुद्रण और चित्रण के द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्र है। सर्वोच्च न्यायालय ने एक मामले की सुनवाई के दौरान 'मौन' (Silence) को भी अभिव्यक्ति का रूप माना है।

वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	
प्रतिबंध के आधार	**व्युत्पन्न महत्वपूर्ण अधिकार**
• भारत की संप्रभुता और अखंडता • राज्य की सुरक्षा, • विदेशी राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, • लोक व्यवस्था, • शिष्टाचार या सदाचार • न्यायालय की अवमानना, • मानहानि; तथा • अपराध-उद्दीपन।	• सूचना का अधिकार • प्रेस की स्वतंत्रता • निजता का अधिकार • राष्ट्रीय ध्वज फहराने का अधिकार • प्रदर्शन एवं विरोध का अधिकार, लेकिन हड़ताल का अधिकार नहीं • मौन रहने का अधिकार

5.8.1. सूचना का अधिकार - सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत एक कानूनी अधिकार

- यह एक नागरिक केंद्रित कानून है जो सरकार से सूचना प्राप्त करने की गारंटी प्रदान करता है, जब तक कि ऐसी सूचना देश की सुरक्षा के लिए खतरा न हो। संबंधित विभाग द्वारा समयबद्ध तरीके से सूचना प्रदान की जाती है। यह अधिनियम सूचना आयुक्तों वाली एक संस्थागत तंत्र का भी प्रावधान करता है जो किसी नागरिक द्वारा मांगी गई सूचना प्राप्त न होने पर उसकी शिकायत से संबंधित मामलों की जांच कर सकता है।
- **द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC)** ने इस अधिनियम को "सुशासन के लिए एक प्रमुख आधार" माना है। विशेषज्ञों का मानना है कि यह भारतीय लोकतंत्र के द्वितीय चरण की शुरुआत को प्रदर्शित करता है।
- यह शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 से व्यापक परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है जहां अब केवल सीमित सूचना को गोपनीयता के अधीन रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त, सरकारी विभागों को स्वतः संज्ञान लेते हुए और अग्रसक्रिय रूप से सूचना प्रदान करने हेतु प्रोत्साहित किया गया है।

- कुछ संगठनों को संप्रभुता, क्षेत्रीय अखंडता और अन्य कारणों के सन्दर्भ में अधिनियम के दायरे से बाहर रखा गया है।
- क्षेत्रीय भाषाओं में भी सूचना प्राप्त की जा सकती है और सूचना प्राप्त करने का कोई कारण बताने की आवश्यकता नहीं है।
- सार्वजनिक प्राधिकरण से सूचना प्राप्त की जा सकती है न कि किसी निजी संस्था से। हालाँकि, यदि किसी निजी निकाय की कार्य की प्रकृति मुख्यतः सार्वजनिक है अथवा वह सरकार द्वारा पर्याप्त तौर पर वित्तपोषित है तो उससे भी सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।
- सार्वजनिक प्राधिकरण का अर्थ संवैधानिक निकाय, वैधानिक निकाय और वैसे गैर-सरकारी संगठन हैं जिन्हें पर्याप्त रूप से सरकारी वित्तपोषण प्राप्त हो रहा हो।

5.8.2. प्रेस की स्वतंत्रता की स्थिति

- संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे कई देशों के विपरीत, जहां प्रेस की स्वतंत्रता की गारंटी का अलग से कोई प्रावधान नहीं है,
- भारत में साकल पेपर मिल्स बनाम भारत संघ वाद (1962) में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रेस की स्वतंत्रता, अनुच्छेद 19(1)(a) के तहत 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' में शामिल है। किंतु इस स्वतंत्रता पर भी अनुच्छेद 19(2) के तहत युक्तियुक्त निर्बंधन लगाए जा सकते हैं।
- **बृज भूषण वाद** में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मीडिया पर कोई पूर्व सेंसरशिप आरोपित नहीं है, अर्थात्, किसी पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं है।
- **44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976** द्वारा अनुच्छेद 361A को जोड़ा गया है; जो एक व्यक्ति को संसद और राज्य विधानमंडलों की कार्यवाहियों को प्रकाशित करने के संबंध में संरक्षण प्रदान करता है।
- **इंडियन एक्सप्रेस वाद (1985)** में, यह स्पष्ट किया गया कि प्रेस की स्वतंत्रता में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:
    - सूचना का अधिकार
    - प्रकाशित करने का अधिकार
    - प्रसारित करने का अधिकार

संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा हेतु गठित राष्ट्रीय आयोग (NCRWC) ने अनुशंसा की है कि प्रेस की स्वतंत्रता को स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिए तथा इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में निहित मानकर, इसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

अनुच्छेद: 19(1)(b) शांतिपूर्ण सम्मेलन की स्वतंत्रता

- अनुच्छेद 19(1)(b) के अंतर्गत नागरिकों को शांतिपूर्ण और निरायुध सम्मेलन करने का अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार के कारण नागरिकों को सार्वजनिक सभा करने, प्रदर्शन करने एवं जुलूस निकालने से प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है।
- इस पर भारत की संप्रभुता और अखंडता या लोक व्यवस्था के हित में युक्तियुक्त प्रतिबंध आरोपित किए जा सकते हैं।

अनुच्छेद: 19(1)(c) संगम या संघ बनाने का अधिकार

- इसके तहत भारत के सभी नागरिकों को संगम या संघ बनाने का अधिकार दिया गया है। यह संघ सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक हो सकता है। इस अधिकार के तहत राजनीतिक दल, कंपनियाँ, सहकारी संघ, मजदूर संघ, क्लब आदि बनाने की शक्ति प्राप्त होती है।

- सशस्त्र सेनाओं, पुलिस, आदि को भी संघ बनाने का अधिकार है, हालाँकि इन्हें केवल सांस्कृतिक संघ बनाने की अनुमति है न की राजनीतिक संघ बनाने की।
- **सरकारी अधिकारियों के वाद में हड़ताल का अधिकार:** औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत ट्रेड यूनियनों को कुछ निश्चित परिस्थितियों में, हड़ताल करने का अधिकार प्राप्त है। हालांकि, उच्चतम न्यायालय ने सरकारी अधिकारियों के लिए कहा है कि, जब संचार के अन्य सभी चैनल असफल हो जाएं, केवल तभी हड़ताल का अधिकार एक अंतिम उपाय के रूप में उपलब्ध है। हालांकि, इसे मूल अधिकारों के अंतर्गत सम्मिलित नहीं समझा जा सकता है। अत: सरकार ऐसी परिस्थितियों में आवश्यक सेवा अनुरक्षण कानून (Essential Services Maintenance Act) लागू कर हड़ताल वापस लेने के लिए बाध्य कर सकती है।
- उच्चतम न्यायालय ने **टी.के. रंगराजन बनाम तमिलनाडु राज्य वाद (2003)** में कहा है कि सरकारी अधिकारियों को हड़ताल का मूल अधिकार प्राप्त नहीं है।

अनुच्छेद 19(1)(d) भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार

अनुच्छेद 19(1)(d) के द्वारा भारत के नागरिक को भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार प्राप्त है। हालाँकि, जन-साधारण के हित में या अनुसूचित जनजाति के हित में अबाध भ्रमण (संचरण) पर युक्तियुक्त प्रतिबंध आरोपित किए जा सकते हैं। यह प्रतिबंध अनुसूचित जनजाति की संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाज आदि को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से लगाया गया है।

अनुच्छेद: 19(1)(e) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार

- यह भारतीय नागरिकों को भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार प्रदान करता है। विशिष्ट परिस्थितियों में, जन-साधारण या अनुसूचित जाति के हित मे, इस पर युक्तियुक्त प्रतिबंध आरोपित किए जा सकते हैं। यह देश के आंतरिक अवरोधों को समाप्त कर राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित करता है।

19(1)(d) और 19(1)(e) पर आरोपित प्रतिबन्ध

- 19(1)(d) भारतीय नागरिकों को देश के राज्यक्षेत्र में अबाध संचरण का और 19(1)(e) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बसने का अधिकार प्रदान करता है। इन अधिकारों के प्रदान करने का आधार भारत का 'एकल क्षेत्र' होने की संकल्पना पर आधारित है।
- दोनों अनुच्छेद परस्पर संबद्ध हैं तथा वास्तव में एक-दूसरे का अनुसरण करते हैं। निम्नलिखित कुछ प्रतिबंध हैं, जो इन पर आरोपित हैं:
    - **लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए:** यदि अधिकारियों को संदेह है कि किसी व्यक्ति के संचरण से एक क्षेत्र में लोक व्यवस्था में खतरा उत्पन्न होने की संभावना है, तो उसके इस अधिकार पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। हालांकि, यह प्रतिबंध दमनकारी या मनमाना नहीं हो सकता।
    - **सुरक्षा कारणों के लिए:** दो पहिया वाहन सवारों के लिए हेलमेट निर्धारित किया जा सकता है।
- किसी राज्यक्षेत्र से नागरिक के विरुद्ध निष्कासन का आदेश, यदि उसे एक असामाजिक तत्व माना जाता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति को राज्य से निष्कासित किया जा सकता है यदि वह किसी वाद में गवाह को डरा-धमका रहा हो।
- अनुसूचित जनजातियों के हितों के संरक्षण हेतु।

अनुच्छेद 19(1)(f) के तहत भारत के नागरिक को संपत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार प्राप्त था। सामाजिक और आर्थिक समानता लाने के उद्देश्य से इस अनुच्छेद को 44वाँ संविधान अधिनियम, 1978 द्वारा मूल अधिकार से हटा दिया गया है। इसे अनुच्छेद 300A में सामान्य कानूनी अधिकार के तहत रखा गया है।

अनुच्छेद: 19(1)(g) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार

- अनुच्छेद 19(1)(g) भारत के सभी नागरिकों को कोई भी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार प्रदान करता है। हालाँकि राज्य जनहित में इस अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बंधन आरोपित लगा सकती है, जैसे- नशीली दवाओं या शराब जैसे अहितकर, जोखिमपूर्ण और खतरनाक वस्तुओं का व्यापार करने पर कुछ प्रतिबंध है।
- राज्य किसी वृत्ति या कारोबार के लिए आवश्यक वृत्तिक (Professional) या तकनीकी अर्हता (Technical qualifications) निर्धारित कर सकता है।

5.8.3. अनुच्छेद 19 के तहत अधिकारों से संबंधित मुद्दे

5.8.3.1. वाक् स्वातंत्र्य और सिविल सेवक: 19 (1) (a)

- उच्चतम न्यायालय के अनुसार, सिविल सेवकों के वाक् स्वातंत्र्य को अनुशासन के सन्दर्भ में सीमित या उनमें कमी की जा सकती है, हालांकि अनुच्छेद 19 (2) में इस तरह के प्रतिबंध का उल्लेख नहीं किया गया है। सेवाओं के भीतर अनुशासन हेतु सेवा नियम आवश्यक हैं। यहां उद्देश्य सिविल सेवकों की वाक् स्वातंत्र्य पर अंकुश आरोपित करना नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि वे प्रभावी ढंग से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में सक्षम हो सकें। इसलिए, संगठनात्मक कार्यप्रणाली और वाक् स्वातंत्र्य के मध्य संतुलन को बनाए रखना आवश्यक है। हालाँकि, ऐसे प्रतिबंध किसी संगठन में निर्वाचित प्रतिनिधियों पर लागू नहीं होते हैं क्योंकि वे लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

5.8.3.2. 19 (1) (a) और 19 (2) - हेट स्पीच

- हेट स्पीच, वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए एक जटिल चुनौती है। हालांकि, यह प्रश्न बना हुआ है कि वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश आरोपित किए बिना किसे हेट स्पीच के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। यद्यपि "विधि आयोग" द्वारा इसे "नस्ल, नृजातियता, लिंग, यौन अभिविन्यास, धार्मिक विश्वास और पसंद" के रूप में परिभाषित व्यक्तियों के एक समूह के विरुद्ध मुख्य रूप से घृणा के लिए उकसाने के रूप में परिभाषित किया गया है। इस प्रकार, "हेट स्पीच के तहत कोई भी शब्द लिखित या मौखिक, संकेत, श्रवण या दृश्य रूप में किसी व्यक्ति को भय या धमकाने अथवा हिंसा के लिए उकसाने की मंशा से किए गए कृत शामिल हैं।
- केंद्र द्वारा गठित **टी. के. विश्वनाथन समिति** ने हेट स्पीच के लिए कठोर प्रावधान लागू किए जाने की सिफारिश की है।

5.8.3.3. 19 (1) (a) और 19 (2) - मानहानि

- वर्ष 2016 में, उच्चतम न्यायालय द्वारा देश के औपनिवेशिक युग के आपराधिक मानहानि कानूनों की संवैधानिक वैधता को यथावत रखते हुए यह निर्णय दिया कि वाक् स्वातंत्र्य के अधिकार एवं मानहानि के मध्य किसी प्रकार का टकराव नहीं हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 499 और 500 के तहत मानहानि एक दंडनीय अपराध है। मानहानि वाले कृत्यों के अंतर्गत "पढ़े या बोले जाने वाले शब्द" संकेत या दृश्य निरूपण/साक्ष्य शामिल हो सकते हैं, जो पब्लिक डोमेन में प्रकाशित या सार्वजनिक किए गए हों। इस अपराध के लिए दो वर्ष तक के कारावास, जुर्माना या दोनों की सजा का प्रावधान है।

- यह कहा गया है कि असहमति व्यक्त करना आवश्यक है, लेकिन यह किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचाने का अधिकार प्रदान नहीं करता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के व्यापक और विस्तृत दायरे के बावजूद, सभी अधिकारों के समान, वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार निरपेक्ष नहीं है। यह युक्तियुक्त निर्बंधनों के अधीन है। न्यायालय ने कहा कि किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्रदत्त जीवन के अधिकार का एक अभिन्न अंग है। किसी की प्रतिष्ठा को अन्य की वाक् स्वातंत्र्य द्वारा सीमित किए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

5.8.3.4. फिल्मों और पुस्तकों पर प्रतिबंध: 19 (1) (a)

- कुछ वर्गों द्वारा अपने लिए अपमानजनक समझे जाने के कारण भारत में किसी पुस्तक, कार्टून या फिल्म के प्रकाशन को लेकर नियमित विरोध और हिंसा होती रहती है। इनके द्वारा हिंसा, विरोध-प्रदर्शन और बंद का सहारा लिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप जीवन और संपत्ति को नुकसान पहुँचता है। परिणामतः सरकारों द्वारा प्राय: कानून और व्यवस्था की समस्या का हवाला देते हुए कला की इस प्रकार की अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध आरोपित किया जाता है। यह प्रत्यक्ष रूप से कलाकारों की वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने और देश में वाक्-स्वातंत्र्य के अधिकार का हनन है।
- इस संदर्भ में, कई निर्णयों में उच्चतम न्यायालय ने ऐसे प्रतिबंधों को अवैध माना है। कानून व्यवस्था बनाए रखना सरकार का दायित्व है। किसी भी लोकतांत्रिक समाज में विभिन्न विचारों का होना अनिवार्य है। केवल इस आधार पर कि समाज के एक छोटे वर्ग का भिन्न दृष्टिकोण है और गैर-कानूनी तरीकों से अपने विचारों को व्यक्त किया गया है इत्यादि के आधार पर प्रतिबंधों को आरोपित नहीं किया जा सकता है। कानून और व्यवस्था सुनिश्चित करना सरकार का कर्तव्य है।

5.8.3.5. 19 (1) (a) इंटरनेट तक पहुंच का अधिकार

- उच्चतम न्यायालय द्वारा एक निर्णय में कहा गया है कि इंटरनेट तक पहुंच का अधिकार अभिव्यक्ति के मूल अधिकार के तहत शमिल है और इसे किसी भी आधार पर बाधित नहीं किया जा सकता है। **पूर्व गर्भाधान और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (PCPNDT) अधिनियम, 1994** की धारा 22 के दृढ़ अनुपालन के संदर्भ में सर्च इंजनों (Yahoo, Google और Microsoft) के विरुद्ध दायर जनहित याचिका की सुनवाई के दौरान इसे पारित किया गया था। न्यायालय ने कहा कि जब तक इंटरनेट का उपयोग वैध तरीके से किया जाता है तब तक इंटरनेट तक पहुंच का अधिकार अनुमत है।

5.8.3.6. 19 (1) (c) - सहकारी समितियों के गठन का अधिकार

97वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2011 के द्वारा सहकारी समितियों के गठन के अधिकार को जोड़ा गया।

5.8.3.7. राष्ट्रीय आपातकाल का अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त अधिकारों पर प्रभाव

- यदि आपातकाल की घोषणा बाह्य आक्रमण के आधार पर की गई हो तो अनुच्छेद 19 स्वतः निलंबित हो जाता है और आपातकाल जारी रहने तक निलंबित रहता है। हालांकि, 44वें संविधान संशोधन के पश्चात्, यदि आपातकाल सशस्त्र विद्रोह के आधार पर घोषित किया गया है, तो इसे निलंबित नहीं किया जा सकता है।

नोट: अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को उपलब्ध हैं।

5.9. अनुच्छेद 20- अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण

मूल पाठ

1. *कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक दोषसिद्ध नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक शास्ति का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी।*
2. *किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा।*
3. *किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।*

विवरण

- **अनुच्छेद 20(1)** यह प्रावधान करता है कि कोई भी आपराधिक विधि **भूतलक्षी प्रभाव से** अधिनियमित नहीं की जा सकती। किसी अपराधी को केवल अपराध किए जाने के समय प्रभावी कानून द्वारा ही दंडित किया जा सकता है। **केदारनाथ बनाम पश्चिम बंगाल वाद (1954)** में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि जब विधानमंडल किसी कार्य को अपराध घोषित करता है अथवा किसी अपराध के दंड का उपबंध करता है तो वह विधि को भूतलक्षी बनाकर उन व्यक्तियों पर प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं कर सकता है जिन्होंने उस विधि के अधिनियमित होने के पूर्व अपराध किए थे। हालांकि, इस तरह के संरक्षण केवल आपराधिक कानूनों के संदर्भ में दिए गए हैं, सिविल कानूनों के संदर्भ में नहीं।
- **अनुच्छेद 20(2) दोहरे जोखिम** से सुरक्षा प्रदान करता है। इसके अनुसार एक व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा। हालांकि, यह सिद्धांत केवल न्यायालय अथवा न्यायिक अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों पर लागू होता है। विभागीय जाँच अथवा प्रशासनिक कार्यवाहियाँ इस सिद्धांत का उल्लंघन नहीं मानी जाती है। उल्लेखनीय है कि संविधान केवल एक ही अपराध के लिए दोहरा दंड वर्जित करता है। एक अपराध के लिए दोषसिद्ध ठहराए जाने के बाद भी किसी अन्य अपराध के संबंध में दंड दिया जा सकता है। यदि एक ही अधिनियम की विभिन्न धाराओं के तहत विभिन्न अपराध किए गए हों तो संविधान उनके लिए पृथक विचारण पर रोक नहीं लगाता है।
- **अनुच्छेद 20(3),** किसी अपराध के संबंध में अभियुक्त को स्वयं अपने विरुद्ध गवाही देने के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं का बचाव करने का अधिकार है। यह अधिकार प्राकृतिक व्यक्तियों को और निगमों को भी प्राप्त है। यह संरक्षण किसी न्यायालय या न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष दांडिक कार्यवाहियों तक सीमित है तथा सिविल कार्यवाहियों एवं न्यायिक प्रकृति कि कार्यवाहियों पर लागू नहीं होता है। **सेल्वी बनाम कर्नाटक राज्य वाद में** उच्चतम न्यायालय ने नार्को एनालिसिस और ब्रेन मैपिंग पर प्रतिबंध लगा दिया। हालांकि, डीएनए परीक्षण और अन्य सैंपल एकत्र किए जा सकते हैं।
    - यह अनुच्छेद भारतीय नागरिक अथवा विदेशी दोनों पर लागू होता है।

5.10. अनुच्छेद 21- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार

मूल पाठ

किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

विवरण:

- इसके अंतर्गत प्रत्येक भारतीय को न केवल जीवन बल्कि गरिमापूर्वक जीवन का अधिकार प्रदान किया गया है। अतः जीवन के अधिकार में वे सभी आयाम सम्मिलित हैं जिनसे मनुष्य का जीवन सार्थक, संपूर्ण और जीने योग्य बनता है।

- अनुच्छेद 21 के अंतर्गत व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं अर्थात यह अनुच्छेद राज्य की मनमानी शक्तियों पर एक प्रतिबंध आरोपित करता है। राज्य एक सुनिश्चित प्रक्रिया के अनुसार ही किसी व्यक्ति को उसके जीवन की स्वतंत्रता से वंचित कर सकता है।
- विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure established by law) ब्रिटिश परंपरा से ग्रहण की गई है। इसके अंतर्गत यह जाँच की जाती है कि क्या कानून प्रक्रियागत रूप से सही है। हालांकि, न्यायपालिका को इस कानून के उद्देश्यों को चुनौती देने की अनुमति नहीं है। वहीं दूसरी ओर विधि की सम्यक प्रक्रिया (Due process of law) अमेरिकी न्यायपालिका की एक अभिव्यक्ति है। जिसके अंतर्गत न्यायपालिका कानून को न केवल प्रक्रियात्मक आधार पर बल्कि इसके औचित्य के आधार पर भी चुनौती दे सकती है।

ए. के. गोपालन वाद (1950) एवं मेनका गांधी वाद (1978)

- गोपालन वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के प्रावधान को अपनाकर हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता की ब्रिटिश संकल्पना को अपनाया है तथा अमेरिका की विधि की सम्यक प्रक्रिया की संकल्पना को नहीं अपनाया है।
- उच्चतम न्यायालय ने संविधान में विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया की, गोपालन वाद (1950) में सूक्ष्म व्याख्या की तथा घोषित किया कि इस अधिकार के तहत सिर्फ मनमानी कार्यकारी प्रक्रिया के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त है, न कि विधानमंडलीय प्रक्रिया के विरुद्ध। इसका अर्थ यह है कि राज्य प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार को कानूनी आधार पर प्रतिबंधित कर सकता है।
- मेनका गांधी वाद (1978) में उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया है कि, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया विधि की विधिवत प्रक्रिया में ही निहित है। उच्चतम न्यायालय ने इस वाद में पहली बार अमेरिका की विधि की सम्यक प्रक्रिया की संकल्पना को लागू किया। यह निम्नलिखित तर्कों को लागू करता है:-
    - अनुच्छेद 19 और 21 को निरपेक्ष नहीं समझा जा सकता और युक्तियुक्तता के समान मापदंड अनुच्छेद 21 के लिए भी लागू किया जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 21 को अनुच्छेद 19 के साथ जोड़कर व्याख्या की तथा पहली बार प्रक्रिया की युक्तियुक्तता (अर्थात् प्रक्रिया मनमानी-पूर्ण या अनौचित्यपूर्ण न हो) पर बल प्रदान करते हुए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को अपनाया। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 19 और 21 परस्पर अपवर्जनकारी नहीं हैं, बल्कि वे एक-दूसरे को बल प्रदान करते हैं।
    - केवल विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पालन करना ही पर्याप्त नहीं है। न्यायालय को समीक्षा करने और कानून की युक्तियुक्तता पर प्रश्न उठाने का अधिकार भी प्राप्त होता है।
    - प्रतिबंध युक्तियुक्त, न्यायसंगत और निष्पक्ष होने चाहिए, मनमाने ढंग का नहीं।
- भारत में परंपरागत रूप से ब्रिटेन में प्रचलित विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिद्धांत का अनुपालन किया जाता रहा है। हालांकि वर्ष 1978 के पश्चात से, भारत में दोनों प्रक्रियाओं का अनुपालन किया जा रहा हैं।

5.10.1. न्यायिक व्याख्या द्वारा अनुच्छेद 21 के क्षेत्र का विस्तार

- मेनका गांधी वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 21 के तहत प्राण का अर्थ केवल 'पशुवत अस्तित्व' या जीवित रहना मात्र नहीं है। इसके अंतर्गत मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी सम्मिलित है।
- इसमें जीवन के वे सभी आयाम सम्मिलित हैं जिनसे मनुष्य का जीवन सार्थक, संपूर्ण और जीने योग्य बनता है। मेनका गांधी वाद के पश्चात् भी कई न्यायिक व्याख्याओं ने अनुच्छेद 21 के दायरे को विस्तृत करते हुए इसके अंतर्गत कई अधिकारों को समाहित किया है।

- **उन्नीकृष्णन बनाम आंध्रप्रदेश राज्य वाद (1993)** में निर्धारित किया गया कि जीवन के अधिकार में शिक्षा का अधिकार शामिल है। अनुच्छेद 21 का विस्तृत क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्णित किया गया है और उच्चतम न्यायालय ने स्वयं ही पूर्वन्यायनिर्णयों के आधार पर अनुच्छेद 21 के तहत आने वाले अधिकारों की सूची उपलब्ध कराई है। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:
    - विदेश यात्रा का अधिकार;
    - निजता का अधिकार;
    - आश्रय का अधिकार;
    - सामाजिक न्याय और आर्थिक सशक्तिकरण का अधिकार;
    - एकांत कारावास के विरुद्ध अधिकार;
    - हथकड़ी लगाने के विरुद्ध अधिकार;
    - मृत्युदंड में देरी के विरुद्ध अधिकार;
    - बंदीगृह में मृत्यु के विरुद्ध अधिकार;
    - सार्वजनिक रूप से फांसी के विरुद्ध अधिकार;
    - चिकित्सकीय सहायता का अधिकार;
    - सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा का अधिकार;
    - प्रत्येक शिशु के पूर्ण विकास का अधिकार;
    - प्रदूषणमुक्त वायु एवं जल का अधिकार आदि।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रारंभ में अनुच्छेद 21 के प्रावधानों की संकीर्ण व्याख्या की गई परन्तु क्रमशः दैहिक और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संदर्भ में कानून का विस्तार हुआ और इसकी उदार व्याख्या की गई। अनुच्छेद 21 के क्षेत्राधिकार में समय के साथ नये आयाम जोड़े गये। इसने किसी व्यक्ति को प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता से वंचित किए जाने की प्रक्रिया पर यह कहते हुए सीमाएँ आरोपित की, कि प्रक्रिया को न्यायोचित तथा विवेकपूर्ण होना चाहिए तथा कानून को मनमाना, दमनकारी अथवा काल्पनिक नहीं होना चाहिए।

{नोट: हुसैन आरा खातून वाद (1979) जिसे भारत में जनहित याचिका (PIL) के उद्भव के रूप में देखा जाता है; में निर्धारित किया गया कि त्वरित सुनवाई का अधिकार न्याय प्राप्ति का सार है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने पहली बार वंचितों को मुफ्त कानूनी सहायता की आवश्यकता पर बल दिया ताकि उनके अधिकारों को सार्थक संरक्षण प्रदान करने वाली न्याय प्रणाली को स्थापित किया जा सके। साथ ही इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 में प्रदत्त विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया में संतुलित, उचित एवं न्याय पर आधारित प्रयोजनों को लागू करने पर बल प्रदान किया।)}

5.10.2. निजता का अधिकार (Right to Privacy)

- हाल ही में, उच्चतम न्यायालय की नौ सदस्यीय संवैधानिक खंडपीठ ने **के. एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ वाद** में सर्वसम्मति से निर्णय देते हुए 'निजता के अधिकार' को अनुच्छेद-21 के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार के तहत मूल अधिकार का अभिन्न भाग माना है। यह निर्णय विभिन्न जन-कल्याण कार्यक्रमों का लाभ उठाने के लिए केंद्र सरकार द्वारा आधार कार्ड को अनिवार्य करने को चुनौती देने वाली याचिकाओं से संबंधित है।

- हालाँकि, न्यायालय ने माना कि निजता कोई पूर्ण (निरपेक्ष) अधिकार नहीं है। सरकार द्वारा एक कानून प्रस्तुत किया का सकता है जिसके माध्यम से सार्वजनिक और वैध राष्ट्रीय कारणों के आधार पर गोपनीयता को "सीमित" किया जा सकता है। राज्य के वैध उद्देश्यों के अंतर्गत राष्ट्रीय सुरक्षा, अपराध को रोकना और जांच करना, नवाचार को प्रोत्साहित एवं ज्ञान का प्रसार करना तथा सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित लाभों के अपव्यय को रोकना जैसे उदाहरण शामिल होंगे। लेकिन किसी व्यक्ति द्वारा निजता के मूल अधिकार के उल्लंघन के संदर्भ में देश के संवैधानिक न्यायालय में इस कानून को चुनौती दी जा सकती है।

निर्णय की मुख्य विशेषताएं

- **व्यक्ति के मूल अधिकारों का विस्तार करता है:** जिसकी अनुच्छेद 21 में गारंटी प्रदान की गयी है और इसके अंतर्गत किसी के घर में अवांछित प्रवेश, भोजन के चयन का अधिकार, संघ बनाने की स्वतंत्रता आदि शामिल हैं।।
- **गरिमा सुनिश्चित करता है:** क्योंकि नागरिकों के लिए गोपनीयता के बिना स्वतंत्रता और गरिमा का उपयोग करना संभव नहीं है।
- **स्वतंत्र बाह्य नियामक:** अब नागरिक अनुच्छेद 32 और 226 के तहत अपने मूल अधिकारों के उल्लंघन के लिए सीधे उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों में याचिका दायर कर सकते हैं। इस प्रकार यह सुनिश्चित करता कि अधिकार केवल लोक स्वास्थ्य, सदाचार और लोक व्यवस्था के युक्तियुक्त निर्बंधनों के अधीन हैं।
- **सूचनात्मक गोपनीयता इस अधिकार का एक पहलू है:** सरकार को डेटा सुरक्षा के लिए एक सुदृढ़ व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) वाद में न्यायालय ने यह माना कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और निजता के अधिकार में अल्पीकरण या दखल देने वाला कोई भी कानून अनियंत्रित या मनमाना नहीं होना चाहिए।

- निजता संबंधी कानूनों का अध्ययन करने के लिए न्यायमूर्ति ए. पी. शाह की अध्यक्षता में विशेषज्ञों की एक समिति गठित की गई। इस समिति को निजता पर प्रस्तावित मसौदा विधेयक, 2011 से संबंधित सुझाव प्रदान करना था। इसके द्वारा केंद्र और राज्यों में निजता आयुक्तों (privacy commissioners) की नियुक्ति, डेटा संग्रहकर्ताओं द्वारा पालन किए जाने वाले निजता संबंधी नौ सिद्धांत तथा उद्योगों द्वारा स्व-विनियामक संगठन की स्थापना, आदि अनुशंसाएँ की गईं।

डेटा (गोपनीयता और संरक्षण) विधेयक, 2017

- हाल ही में, डेटा (गोपनीयता और संरक्षण) विधेयक, 2017 को लोकसभा में पेश किया गया।
- इसमें डेटा के संकलन, प्रसंस्करण, भंडारण और हटाने के लिए व्यक्तिगत सहमति तथा इस प्रक्रिया में मामलों की विशिष्टता के आधार पर बहुत सीमित अपवादों की स्वीकृति को अनिवार्य बनाने का प्रावधान है।
- इसके साथ ही इसमें डेटा गोपनीयता और संरक्षण प्राधिकरण को अपील के प्रावधान के साथ अंतिम उपयोगकर्ताओं के शिकायत निवारण हेतु डेटा संरक्षण अधिकारी के पद का सृजन करना, जैसे प्रावधान किए गए हैं।

निजता के अधिकार से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय कानून

- वर्ष 1981 में यूरोपीय कॉउन्सिल द्वारा हस्ताक्षरित कन्वेंशन फॉर दि इंडिविजुअल विद रिगार्ड टू ऑटोमेटिक प्रोसेसिंग ऑफ़ पर्सनल डेटा (कन्वेंशन 108) निजता के अधिकार का संरक्षण प्रदान करने वाली प्रथम कानूनी रूप से बाध्यकारी अंतर्राष्ट्रीय संधि है।

- मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 का अनुच्छेद 12 और इंटरनेशनल कोवेनेंट ऑन सिविल एंड पोलिटिकल राइट (ICCPR) 1966 का अनुच्छेद 17, व्यक्तियों की निजता, परिवार, घर, पत्राचार, सम्मान और प्रतिष्ठा के साथ "मनमाने ढंग से हस्तक्षेप" के विरुद्ध कानूनी संरक्षण प्रदान करता है।

निजता के अधिकार का महत्व

- इस निर्णय के परिणामस्वरूप व्यक्ति के मूल अधिकारों का विस्तार तथा उनकी गरिमा सुनिश्चित होगी। इसके अनुसार, राष्ट्रीय डेटा संग्रह में निहित किसी भी व्यक्तिगत आंकड़ों के दुरुपयोग की स्थिति में राज्य को क्षतिपूर्ति प्रदान करनी होगी। अब नागरिक उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों में अनुच्छेद 32 और 226 के तहत अपनी निजता के अधिकार के उल्लंघन के लिए सीधे अपील दायर कर सकते हैं। इस प्रकार यह सुनिश्चित किया गया है कि अधिकार सार्वजनिक स्वास्थ्य, नैतिकता और व्यवस्था के उचित प्रतिबंधों के अधीन है। ध्यातव्य है कि निजता को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक सुदृढ़ कानूनी ढाँचे का समर्थन प्राप्त है। वर्ष 1979 में भारत ने ICCPR पर हस्ताक्षर तथा अभिपुष्टि भी की थी।
- परन्तु इस निर्णय से कई चिंताएँ भी उत्पन्न हुई हैं। यथा सरकार की कल्याणकारी योजनाओं और अन्य मामलों जैसे कि आधार, धारा 377, व्हाट्सएप प्राइवेसी पॉलिसी, खानपान की आदतों पर प्रतिबंध आदि पर प्रभाव पड़ेगा। निजता की रूपरेखा को परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह अन्य सभी मूल अधिकारों में भी समाहित है। यह निगरानी, खोज और जब्ती, कॉल टैपिंग, ट्रांसजेंडर के अधिकार आदि सहित विभिन्न अधिकारों का एक क्लस्टर (समूह) है।
- इस अधिकार के सफल कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है कि भारत में निजता के संरक्षण की भावना को बढ़ावा दिया जाए। यह पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में कम है। इस हेतु एक राष्ट्रीय डेटा संरक्षण प्रारूप का विकास किया जाना चाहिए जो व्यक्तियों के लिए केवल डेटा संरक्षण से परे एक व्यापक संदर्भ में व्यक्तिगत निजता की रूपरेखा को परिभाषित करे। एक विधिक ढांचे के निर्माण के माध्यम से डेटा माइनिंग और बिग डेटा के लाभों के साथ किसी व्यक्ति के निजता के अधिकार को संतुलित करना चाहिए।

5.10.3. जीवन का अधिकार और आत्महत्या (IPC की धारा 309)

- **भारत में आत्महत्या संबंधी कानून:** मानसिक स्वास्थ्य देखभाल विधेयक - 2016 के पारित होने से पूर्व आत्महत्या, या आत्महत्या का प्रयास करना भारतीय दंड संहिता की धारा 309 के अंतर्गत अपराध था। इस नये कानून के अंतर्गत भारतीय दंड संहिता की धारा 309 का निरपराधीकरण कर दिया गया है तथा मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति के आत्महत्या के प्रयासों को दण्डनीय नहीं माना गया है।
- **पी. रत्नम वाद** में उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 1994 में धारा 309 को यह कह कर असंवैधानिक करार दिया था कि 'न जीने का अधिकार' संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रदत्त 'जीने के अधिकार' में ही निहित है।
- साथ ही इस वाद में कहा गया कि सभी मूल अधिकारों के सकारात्मक के साथ नकारात्मक निहितार्थ भी हैं। जैसे कि भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल अधिकार में 'नहीं बोलने के अधिकार' भी समाविष्ट है। इस व्याख्या से धारा 309 का अस्तित्व समाप्त हो गया था और वर्ष 1996 तक यही स्थिति रही।
- हालाँकि, उच्चतम न्यायालय ने **ज्ञान कौर वाद** (1996) में वर्ष 1994 के निर्णय को उलट दिया जिसके कारण धारा 309 पुनः अस्तित्व में आ गयी और 'न जीने का अधिकार' असंवैधानिक बन गया।

- वर्ष 2008 में विधि आयोग ने अपनी 210वींरिपोर्ट में आत्महत्या के प्रयास को अपराध की श्रेणी से बाहर निकालने की अनुशंसा की।
- मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 के अनुसार आत्महत्या का प्रयास मानसिक तनाव की स्थिति को दर्शाता है तथा इसे अपराध की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आत्महत्या का प्रयास करने वाले व्यक्ति को दंड की नहीं वरन देखभाल और उपचार की आवश्यकता है।

इच्छामृत्यु/दया मृत्यु (Euthanasia/Mercy killing)

अरुणा शानबाग वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा निष्क्रिय इच्छामृत्यु की अनुमति प्रदान की गई थी लेकिन सक्रिय इच्छामृत्यु की नहीं।

सक्रिय इच्छामृत्यु (Active Euthanasia): किसी व्यक्ति के जीवन का अंत उसे सक्रिय साधनों जैसे प्राणघाती इंजेक्शन, ड्रग्स आदि देकर किया जाता है।

निष्क्रिय इच्छामृत्यु (Passive Euthanasia): इसमें किसी व्यक्ति या मरीज के लाइफ सपोर्ट सिस्टम को हटा दिया जाता है। इसकी अनुमति उच्चतम न्यायालय द्वारा संरक्षित परिस्थितियों में ही प्रदान की जाती है।

5.10.4. जीवन का अधिकार एवं मृत्युदंड

- वर्तमान में वैश्विक रुख मृत्युदंड को समाप्त करने के पक्ष में है, भारत ने स्वयं को ऐसे देशों की श्रेणी में बनाए रखा है जहां मृत्युदंड को पूर्णतया समाप्त नहीं किया गया है, जैसे- चीन, ईरान, पाकिस्तान, अमेरिका।
- मृत्युदंड के समर्थकों ने इसको निवारक क्षमता के लिए अपनाया है। इसके अतिरिक्त, कुछ अपराध इतने जघन्य होते हैं जिनकी सजा यदि मृत्युदंड से कम हो तो वे न्याय के लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाते हैं। आतंकवाद जैसे मामलों में, यदि आतंकवादियों को मौत की सजा नहीं दी जाए तो वे राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा बने रह सकते हैं।

हालांकि मृत्युदंड को समाप्त करने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं: -

- निवारक तर्क (deterrent logic) का समर्थन करने के लिए कोई पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं।
- संयुक्त राज्य अमेरिका में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि जिन राज्यों ने मौत की सजा को समाप्त कर दिया है वहाँ पर हत्या की घटना में गिरावट देखने को मिली।
- किसी भी सभ्य समाज में **प्रतिशोध का सिद्धांत (The principle of revenge)** (जैसे-आंख के बदले आंख) न्याय का आधार नहीं हो सकता।

सजा का उद्देश्य दंड के बजाए सुधार होना चाहिए। मृत्युदंड की सजा केवल **रेयरेस्ट ऑफ द रेयर** मामलों में दी जाती है।

बच्चन सिंह वाद (1980) में उच्चतम न्यायालय ने आजीवन कारावास को नियम और मृत्युदंड का अपवाद मानते हुए मृत्युदंड की संभावना को बरकरार रखा और इसे न्यायसंगत बनाने के लिए अनन्यतम (रेयरेस्ट ऑफ दि रेयर) का सिद्धांत निष्पादित किया।

मच्छी सिंह बनाम पंजाब सरकार (1983) वाद में उच्चतम न्यायालय के तीन सदस्यीय खंडपीठ ने मृत्युदंड देने के लिए निम्नलिखित मापदंडों को रखा।

- अत्यन्त क्रूर, कठोर और भयानक तरीके से हत्या के मामले में;
- हत्या का उद्देश्य धन होने पर;
- अनुसूचित जाति या अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों की हत्या करने पर;
- किसी निर्दोष बच्चे, असहाय महिला या गणमान्य व्यक्ति की हत्या करने पर।

प्रयोजनीयता

अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त अधिकारों को कभी भी (राष्ट्रीय आपातकाल में भी) निलंबित नहीं किया जा सकता और ये दोनों अधिकार सभी व्यक्तियों, चाहे वह भारतीय नागरिक हो या विदेशी सभी को उपलब्ध हैं।

5.11. अनुच्छेद 21-A : शिक्षा का अधिकार

मूल पाठ

शिक्षा का अधिकार (Right to education)

राज्य छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा इस प्रकार प्रदान करेगा जिस प्रकार से राज्य विधि के अधीन निर्धारित करे।

विवरण एवं ऐतिहासिक विकास

- शिक्षा के अधिकार की मांग सर्वप्रथम गोपाल कृष्ण गोखले ने ब्रिटिश काल के दौरान की थी। हालांकि, 100 वर्ष पश्चात शिक्षा का अधिकार अस्तित्व में आया।
- वर्ष 1992 में **मोहिनी जैन वाद** में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार का भाग है और इसलिए यह संविधान के भाग 3 के तहत एक मूल अधिकार है।
- **उन्नीकृष्णन वाद** (1993) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने इसको और सुदृढ़ किया जिसमें यह पुष्टि की गई कि शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत प्रत्याभूत जीवन के अधिकार से संबंधित है।
- उल्लेखनीय है कि उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह एक निरपेक्ष एवं अनन्य अधिकार नहीं है। यह अधिकार किस तरह लागू किया जाए इसका निर्धारण राज्य पर निर्भर करेगा।
- 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 21(A) को जोड़कर 6-14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य प्रारंभिक/प्राथमिक शिक्षा की संवैधानिक गारंटी प्रदान कि गई है। 86वें संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में निम्नलिखित परिवर्तन किए गए:
- राज्य की नीति के निर्देशक तत्व के रूप में संविधान के **अनुच्छेद 45** में कहा गया है कि, राज्य सभी बच्चों को 0-6 वर्ष की आयु पूरी हो जाने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।
- **अनुच्छेद 51A(k)** के तहत एक नया मूल कर्त्तव्य जोड़ा गया जिसके अनुसार - यह माता-पिता या संरक्षक का कर्त्तव्य होगा कि वह 6 से 14 वर्ष की मध्य की आयु के, यथास्थिति, अपने बच्चे अथवा प्रतिपाल्य को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करेगा।
- यह उपर्युक्त आयु समूह के सभी बच्चों के लिए लागू होता है चाहे वह भारतीय नागरिक हैं या नहीं हैं।

RTE की मुख्य विशेषताएं

- 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को अपने निकट स्थित स्कूल में प्रारंभिक और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा।
- यहां तक कि जो इस अवसर से वंचित रह गए हैं, उनके लिए इस अधिनियम के तहत 8 वर्ष की स्कूली शिक्षा का प्रावधान किया गया है। साथ ही, गैर-नामांकित बच्चों को उनकी आयु के अनुसार कक्षा में प्रवेश दिया जाएगा।
- केंद्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, सैनिक स्कूल और गैर-सहायता प्राप्त स्कूलों द्वारा कम से कम 25% वंचित और आर्थिक रूप से कमजोर समूहों के छात्रों का नामांकन किया जाना अनिवार्य है।
- प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक किसी भी बच्चे को बोर्ड परीक्षा में अनुत्तीर्ण या निष्कासित नहीं किया जाएगा।
- विद्यालय में प्रवेश के दौरान आवेदकों की स्क्रीनिंग तथा उनसे कैपिटेशन फ़ीस प्राप्त नहीं कर सकते हैं।
- सभी विधालयो को 5 वर्ष के भीतर शिक्षक योग्यता के मानदंडों का अनुपालन किया जाना अनिवार्य होगा। 1:30 के शिक्षक-छात्र अनुपात को बनाए रखने हेतु निश्चित संख्या में शिक्षकों की भर्ती करनी होगी।

- उन गैर-सहायता प्राप्त निजी विद्यालयों के अतिरिक्त सभी विद्यालयों द्वारा विद्यालय प्रबंधन समितियों का गठन किया जायेगा। इसके 75% सदस्य विद्यार्थियों के माता-पिता या संरक्षक होंगे।
- राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग द्वारा इसकी निगरानी की जाएगी। राज्य अपने स्तर पर भी इसके समान राज्य निकायों का गठन करेगा ।
- इसके लिए केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा परस्पर वितपोषण को साझा किया जाएगा:
  - केंद्र सरकार वित्त आयोग से राज्यों को अतिरिक्त संसाधन आवंटित करने हेतु अनुशंसा कर सकती है।
  - नागरिक समाज की साझेदारी के साथ वित्तीयन अंतराल को कम किया जाएगा।
  - संवैधानिक अधिकारों के अनुसार पाठ्यचर्या का विकास किया जाएगा।

RTE का मूल्यांकन

- यदि प्राधिकरण प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार लागू करने में विफल रहते हैं तो इसके लिए इस अधिनियम में कोई विशिष्ट दंड का प्रावधान नहीं किया गया है।
- राज्य सरकार और स्थानीय प्राधिकरण दोनों का कर्तव्य है कि वे नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करें। ज्ञातव्य है कि दोनों द्वारा इस कर्तव्य का साझाकरण किए जाने के कारण दोनों में से किसी को भी जवाबदेह नहीं ठहराया जा सकता है।
- इस अधिनियम में स्कूली शिक्षा और भौतिक अवसंरचना के अधिकार का प्रावधान किया गया है, लेकिन यह सुनिश्चित नहीं है कि बच्चे सीख पा रहे या नहीं। यदि सरकारी स्कूलों द्वारा निर्दिष्ट मानदंडों को पूरा नहीं किया जाता है तो इसके लिए उन्हें किसी भी प्रकार से दंडित नहीं किया जा सकता है।
- इस विधेयक में मल्टी-ग्रेड (बहु-कोटि) शिक्षण की प्रथा को वैधता प्रदान की गई है। शिक्षकों की संख्या ग्रेड के स्थान पर छात्रों की संख्या के आधारित होगी।
- नामांकन सार्वभौमिक स्तर पर पहुंच गया है लेकिन छात्रों की स्कूल छोड़ने (ड्रॉपआउट) और अनुपस्थिति की समस्या अभी भी बनी हुई है।
- इसके अतिरिक्त, इस अधिनियम में उन लोगों के के संबंध में कोई प्रावधान नहीं किए गए हैं जो स्कूल जाने में असमर्थ हैं।
- इसलिए, यह कहा जाता है कि यह शिक्षा के अधिकार के बजाय एक स्कूली शिक्षा का अधिकार है।
- अवसंरचना में सुधार के लक्ष्यों को पूरा करने में अनेक विद्यालय विफल रहे।
- देश में प्रशिक्षित शिक्षकों की की अत्यधिक कमी है।
- कुछ लोगों का मानना है कि बच्चों को फेल न करना एक बेहतर विकल्प नहीं है क्योंकि यह शिक्षकों को उसके उत्तरदायित्वों से मुक्त करता है।

प्रयोज्यता

- यह संबंधित आयु वर्ग के सभी बच्चों (चाहे भारतीय नागरिक हैं या नहीं) पर लागू होता है।

5.12. अनुच्छेद 22: कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण

मूल पाठ

कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण।

1. *किसी व्यक्ति को जिसे गिरफ्तार किया गया है, ऐसी गिरफ्तारी के कारणों से यथाशीघ्र अवगत कराए बिना अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा या अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने और प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से वंचित नहीं रखा जाएगा।*
2. *प्रत्येक व्यक्ति को, जिसे गिरफ्तार किया गया है और अभिरक्षा में निरुद्ध रखा गया है, गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर, ऐसी गिरफ्तारी से 24 घंटे की अवधि में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा और ऐसे किसी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना उक्त अवधि से अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा।*
3. *खण्ड (1) और खण्ड (2) की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को लागू नहीं होगी जो-*

(a) *तत्समय शत्रु अन्यदेशीय है; या*

(b) *निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन गिरफ्तार या निरुद्ध किया गया है।*

4. निवारक निरोध का उपबंध करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति को 3 माह से अधिक की अवधि के लिए तब तक निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत नहीं करेगी जब तक कि-

(a) *ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं या न्यायाधीश रहे हैं या न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अर्हित हैं, से मिलकर बने सलाहकार बोर्ड ने तीन मास की उक्त अवधि की समाप्ति से पूर्व यह प्रतिवेदन नहीं दिया है कि उसकी राय में ऐसे निरोध के लिए पर्याप्त कारण है:*

परन्तु इस उपबंध की कोई भी बात किसी व्यक्ति का उस अधिकतम अवधि से अधिक अवधि के लिए निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत नहीं करेगी जो खण्ड (7) के उपखण्ड (b) के अधीन संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा विहित की गई है; या

(b) *ऐसे व्यक्ति को खण्ड (7) उपखण्ड (a) और उपखण्ड (b) के अधीन संसद द्वारा निर्मित विधि के उपबंधों के अनुसार निरुद्ध नहीं किया जाता है।*

5. निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन किए गए आदेश के अनुसरण में जब किसी व्यक्ति को निरुद्ध किया जाता है तब आदेश करने वाला प्राधिकारी यथाशीघ्र उस व्यक्ति को यह संसूचित करेगा कि वह आदेश किन आधारों पर किया गया है और उस आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने के लिए उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा।

6. खण्ड (5) की किसी बात से ऐसा आदेश, जो उस खण्ड में निर्दिष्ट है, करने वाले प्राधिकारी के लिए ऐसे तथ्यों को प्रकट करना आवश्यक नहीं होगा जिन्हें प्रकट करना ऐसा प्राधिकारी लोकहित के विरुद्ध समझता है।

7. संसद विधि द्वारा यह विहित कर सकेगी कि-

(a) *किन परिस्थितियों के अधीन और किस वर्ग या वर्गों के वाद में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन तीन मास से अधिक अवधि के लिए खण्ड (4) के उपबंध (a) के उपबंधों के अनुसार सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना निरुद्ध किया जा सकेगा;*

(b) *किसी वर्ग या वर्गों के वाद में कितनी अधिकतम अवधि के लिए किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा; और*

(c) *खण्ड (4) के उपखण्ड (a) के अधीन की जाने वाली जांच में सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया क्या होगी।*

विवरण

अनुच्छेद 22 में दो प्रकार की गिरफ्तारी या निरोध का विवरण है:

- दंडात्मक निरोध (Punitive detention); तथा
- निवारक निरोध (Preventive detention)

दंडात्मक गिरफ्तारी से सुरक्षा नागरिकों और गैर-नागरिकों के लिए उपलब्ध है, परन्तु शत्रु देश के निवासियों के लिए उपलब्ध नहीं है। एक व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के आधार के बारे में अवश्य सूचित किया जाना चाहिए ताकि वह अपने बचाव की तैयारी कर सके। व्यक्ति को अपनी पसंद के विधिवेत्ता से परामर्श करने और उसके द्वारा बचाव करने का भी अधिकार है। इस तरह के किसी व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि कार्यपालिका की किसी भी गलत कार्रवाई को सुधारा जा सके।

निवारक निरोध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को अपराध करने से रोकना है। ऐसे व्यक्ति के लिए भी कुछ अधिकार उपलब्ध हैं। उसे, उसकी गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए। पुलिस किसी व्यक्ति को तीन माह से अधिक समय के लिए निरुद्ध नहीं कर सकती जब तक कि पुलिस के पास सलाहकार बोर्ड की अनुमति न हो। इस तरह के सलाहकार बोर्ड में तीन न्यायाधीश शामिल होंगे (इस तरह का सलाहकार बोर्ड ऐसे तीन व्यक्तियों से मिलकर बनेगा, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं या न्यायाधीश रहे हैं अथवा न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अर्हित हैं)। संसद, 3 माह से अधिक निरोध हेतु कानून बना सकती है।

44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा निरोध की अवधि को बिना सलाहकार बोर्ड की राय के तीन से दो माह कर दिया गया। हालांकि यह व्यवस्था अब तक प्रयोग में नहीं आई, जबकि निरोध की मूल अवधि तीन माह अब भी जारी है।

निवारक निरोध की आलोचना

भारत में, इस तरह के कानूनों का दुरुपयोग किया गया है और इसीलिए यह मानवाधिकारों से संबंधित चिंता का विषय बन गया है। यह राज्य की पुलिस शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। किसी अन्य लोकतांत्रिक देश ने अपने संविधान में निवारक निरोध का उल्लेख नहीं किया है और वहाँ इस तरह के कानून केवल आपात स्थिति के तहत प्रभाव में आते हैं।

निवारक निरोध के पक्ष में दिए गए तर्क

रक्षा, विदेश और देश की सुरक्षा से संबंधित संघ सूची की प्रविष्टि 9, और सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने, राज्य की सुरक्षा और आवश्यक आपूर्ति और सेवाएं बनाए रखने से संबंधित समवर्ती सूची की प्रविष्टि 3 में ऐसे विषय संविधान में पहले से ही दर्ज हैं जिन पर निवारक कानून बनाया जा सकता है। इस प्रकार, यह राज्य द्वारा मनमाने ढंग से की गई कार्रवाई को रोकता है।

विधायन/कानून

निम्नलिखित कानूनों में किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक समय तक निरोध किए जाने के संबंध में प्रावधान हैं:

- राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (National Security Act: NSA), 1980
- विदेशी मुद्रा का संरक्षण एवं व्यसन निवारण अधिनियम (COFEPOSA),1974 तथा
- आतंकवाद निवारक कानून (Prevention of Terrorism Act: POTA), 2002

इसी प्रकार, कई राज्यों ने भी इसी तरह के कानून बनाए हैं। केंद्रीय और राज्य स्तर के कानूनों को मिला दें तो निवारक निरोध से संबंधित ऐसे लगभग चालीस कानून अस्तित्व में हैं।

5.13 अनुच्छेद 23 – मानव के दुर्व्यापार एवं बलात् श्रम का प्रतिषेध

मूल पाठ

मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिषेध।

1. *मानव का दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात् श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।*
2. *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने से निवारित नहीं करेगी। ऐसी सेवा अधिरोपित करने में राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।*

विवरण

- अनुच्छेद 23 (1) मानव के दुर्व्यापार, बेगार और सभी प्रकार के बलात् श्रम को प्रतिषिद्ध करता है। इसका अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और महिलाओं के लिए विशेष महत्व है। "बेगार" ऐसी श्रम या सेवा के रूप में वर्णित है, जिसमें एक व्यक्ति को इसके लिए कोई पारिश्रमिक दिए बिना इसे करने को बाध्य किया जाता है।

- अनुच्छेद 23 (2) में कहा गया है कि राज्य अनिवार्य सेवा लागू कर सकता है, यदि इसकी आवश्यकता है। विशेषतः, देवदासी प्रथा को उपर्युक्त अनुच्छेद के निषेध के कारण समाप्त कर दिया गया है।

विधान

मानव दुर्व्यापार को रोकने के लिए पारित किए गए कुछ अधिनियम निम्नलिखित है:

- अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 (Immoral Traffic Prevention Act: ITPA, 1956)
- बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976 {Bonded Labor System (Abolition) Act, 1976}
- किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 {Juvenile Justice (Care and Protection) Act, 2000} को निरस्त करके किशोर न्याय (देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 पारित किया गया है, इसके कुछ प्रमुख प्रावधान निम्न हैं:
    - अधिनियम में 'किशोर' शब्द से जुड़े कई नकारात्मक संकेतार्थ को समाप्त करने के लिए 'किशोर' शब्द से 'बच्चे' शब्द की नामावली में परिवर्तन। अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पित बच्चों की नई परिभाषाओं को सम्मिलित किया गया है।
    - बच्चों के छोटे, गंभीर और जघन्य अपराध, किशोर न्याय बोर्ड (JJB) और बाल कल्याण समिति (CWC) के अधिकारों, कार्यों और जिम्मेदारियों में स्पष्टीकरण, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा जांच में स्पष्ट अवधि, 16 वर्ष से ऊपर के बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराध की स्थिति में विशेष प्रावधान, अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पित बच्चों को गोद लेने संबंधी नियमों से संबंधित पृथक नया अध्याय, बच्चों के विरुद्ध किए गए नए अपराधों को शामिल किया गया है, बाल कल्याण व देखभाल संस्थानों के पंजीकरण को अनिवार्य बनाया गया है।
    - धारा 15 के अंतर्गत 16-18 वर्ष की आयु के बाल अपराधियों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों के संबंध में विशेष प्रावधान किए गए हैं। किशोर न्याय बोर्ड के पास बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों के मामलों को प्रारंभिक आकलन के बाद उन्हें बाल न्यायालय (कोर्ट ऑफ सेशन) को स्थानांतरित करने का विकल्प होगा।
- यह नागरिकों और गैर-नागरिकों दोनों के लिए उपलब्ध है।

5.14. अनुच्छेद 24 – कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध

मूल पाठ

कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध - चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जाएगा।

विवरण

- अनुच्छेद 24 खतरनाक व्यवसायों में बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध करता है। हालांकि, यह हानिरहित कार्यों में उनके नियोजन का प्रतिषेध नहीं करता है।

नोट: अनुच्छेद 23 और 24 अनुच्छेद 39 (a) और 39 (f) द्वारा पूरित होते हैं।

5.14.1. बाल श्रम से संबंधित विधेयक

- बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 बाल श्रम को रोकने के लिए एक विधान है। इसको बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) संशोधन विधेयक, 2016 के द्वारा संशोधित किया गया है। इसमें किए गए प्रमुख संशोधन निम्नलिखित है:

- विधेयक में 14 वर्ष से कम आयु के बालकों के रोजगार में नियोजन पर आरोपित प्रतिबंध का सभी क्षेत्रों में विस्तार किया गया है।
- निशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिनियम, 2009 के आलोक में यह अधिनियम सभी व्यवसायों में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध आरोपित करता है। ज्ञातव्य है कि इसके अंतर्गत स्कूल के घंटों के पश्चात् अपने परिवार की सहायता करने वाले बच्चों या मनोरंजन उद्योग में कार्य कर रहा बच्चों को शामिल नहीं किया गया है।
- यह खतरनाक व्यवसायों में 18 वर्ष से कम आयु के किसी भी व्यक्ति को नियोजित करने से प्रतिबंधित करता है।
- इस अधिनियम में "किशोर" व्यक्तियों की एक नई श्रेणी को जोड़ा गया है। एक किशोर का अर्थ है 14 से 18 वर्ष आयु का व्यक्ति। यह अधिनियम निर्दिष्ट खतरनाक व्यवसायों में (खानों, ज्वलनशील पदार्थ और खतरनाक प्रक्रियाओं) में किशोरों के रोजगार पर प्रतिबंध आरोपित करता है।
- केंद्र सरकार द्वारा अधिनियम में शामिल सूची में से किसी भी खतरनाक व्यवसाय को जोड़ या हटा सकती है।
- 14-18 वर्ष के किशोरों के खतरनाक व्यवसायों में नियोजन पर प्रतिबंध लगाया गया है और
- इन प्रावधानों के उल्लंघन पर अधिक कठोर सजा; छह माह से दो वर्ष तक की कैद और 50,000 रुपए तक जुर्माने का प्रावधान।
- विधेयक पहले निर्धारित किए गए 83 खतरनाक व्यवसायों की सूची को केवल तीन तक सीमित करता है। इनके तहत खनन, ज्वलनशील पदार्थ तथा कारखाना अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित खतरनाक प्रक्रियाएँ शामिल होंगी जिन्हें केंद्र द्वारा चिन्हित किया जाएगा।
- विधेयक में बच्चों के पुनर्वास के लिए पुनर्वास कोष निर्मित किए जाने का प्रस्ताव है, जिसे पहले ही स्थापित किया जा चुका है।

• यह भी नागरिकों और गैर-नागरिकों दोनों के लिए उपलब्ध है।

5.15. अनुच्छेद 25: अंतःकरण की और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता

मूल पाठ

1. *लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने तथा प्रचार करने का समान अधिकार होगा।*
2. *इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो-*
   - *धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन या निर्बन्धन करती है;*
   - *सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिंदुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध करती है।*

***स्पष्टीकरण 1** – कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिख धर्म के अनुकरण का अंग समझा जाएगा।*

***स्पष्टीकरण 2-** खंड (2) के उपखंड (b) में हिंदुओं के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत सिख, जैन या बौद्ध धर्म के मानने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश है और हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ तदनुसार लगाया जायेगा।*

विवरण

अनुच्छेद 25 के अनुसार लोगों को,

- अंतःकरण की;
- धर्म को मानने (अपने धार्मिक विश्वासों को खुले तौर पर घोषित करने) की;
- धर्म के आचरण (धार्मिक पूजा का प्रदर्शन) की; और
- धर्म के प्रसार (अपनी धार्मिक मान्यताओं के प्रचार-प्रसार) की स्वतंत्रता है।

यह अनुच्छेद भारत में **पंथनिरपेक्षता** का आधार है।

- अंतःकरण की स्वतंत्रता से आशय किसी व्यक्ति के अपने धार्मिक विश्वास और आस्था को आकार देने की आतंरिक स्वतंत्रता से है। राज्य व्यक्ति की इस आंतरिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। सार्वजनिक अभिव्यक्ति में यह आतंरिक स्वतंत्रता; धार्मिक पूजा, परंपरा एवं धार्मिक प्रदर्शन की स्वतंत्रता का रूप धारण करती है। धर्म को मानने के अधिकार से आशय किसी व्यक्ति के उसके धार्मिक विश्वास और आस्था को खुले तौर पर व्यक्त करने के अधिकार से है। उदाहरण के लिए, सिखों के कृपाण रखने के अधिकार को उनके धर्म को अबाध रूप से मानने के अधिकार के अंतर्गत माना गया है।
- आचरण करने के अधिकार का अर्थ धार्मिक पूजा, परंपरा, समारोह आयोजित करने और अपनी आस्था और विचारों के प्रदर्शन की स्वतंत्रता है।
- 'प्रसार' से तात्पर्य, अपने धार्मिक विश्वास का अन्य लोगो के जीवन को उचित दिशा प्रदान करने के दृष्टिकोण से, धर्म के परिष्कृत रूप का प्रसार करना है जिसकी तार्किक परिणति किसी अन्य को अपने धर्म में धर्मान्तरित करने में होती है।
- अत: प्रसार का अर्थ अनुनय और बिना किसी धोखाधड़ी, बलपूर्वक अथवा धर्मान्तरण के लिए प्रलोभन के बिना विचारों का प्रसार करना। ध्यातव्य है कि, किसी व्यक्ति को अपने धर्म में धर्मान्तरित करने का अधिकार, उसके अपनी रूचि के मत में धर्मान्तरित होने के व्यक्तिगत अधिकार से भिन्न है।
- जहाँ स्वेच्छा से, अपने अंतःकरण के अनुसार किसी भी मत या संप्रदाय में धर्मान्तरित होना, निश्चित रूप से संविधान प्रदत्त धार्मिक तथा अंतःकरण की स्वतंत्रता के अधिकार के अनुरूप है, वहीं अपने द्वारा प्रसारित धर्म में किसी व्यक्ति को धर्मान्तरित करना राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में विवाद का केंद्र बन रहा है|
- इस प्रकार, अनुच्छेद 25 केवल धार्मिक विश्वास को ही नहीं, अपितु धार्मिक आचरण को भी समाहित करता है।
- हालाँकि भारतीय संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार निरपेक्ष अधिकार नही है। इसे सदाचार, स्वास्थ्य और लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रतिबंधित किया जा सकता है। धार्मिक मुद्दे से जुड़े लौकिक विषयों के प्रबंध में भी राज्य का हस्तक्षेप हो सकता है, जैसे मंदिरों एवं मस्जिदों को सभी लोगों को प्रवेश प्रदान करने के संदर्भ में विधि का निर्माण किया जा सकता है। यह धार्मिक स्वतंत्रता के अंतर्गत सम्मिलित नहीं होगा। अतः भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक ओर अन्तःकरण और धर्म की स्वतंत्रता का पूर्ण समर्थन किया, तो दूसरी ओर सामाजिक सुधार और लोक व्यवस्था पर भी अत्यधिक बल दिया है।

महत्वपूर्ण वाद

रतिलाल पानाचंद गाँधी बनाम बॉम्बे राज्य, 1954

- इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने घोषित किया कि, "अन्तःकरण की स्वतंत्रता (अपने धर्म में विश्वास की स्वतंत्रता) किसी एक धर्म के अनुयायियों के लिए नहीं है वरन् सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध होती है"।

स्टेनिस्लास बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1977

- उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि, अनुच्छेद 25 (1) धर्मांतरण का अधिकार प्रदान नहीं करता है बल्कि, केवल अपने धर्म के सिद्धांतों के प्रसार का अधिकार प्रदान करता है।
- इस प्रकार, भारत में केवल स्वैच्छिक धर्मांतरण ही मान्य है। कुछ राज्यों ने बलात् धर्मांतरण पर रोक लगाने के लिए धर्मांतरण विरोधी कानून भी पारित किए हैं।

जगदीश्वरानन्द वाद, 1984

- इस वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में यह कहा गया कि आनंदमार्गियों द्वारा कपाल लेकर नृत्य करते हुए जुलूस निकालना धर्म का मूलभूत तत्व नहीं है तथा इसे यथोचित रूप से प्रतिबंधित किया जा सकता है।
- इसी तरह, बक़रीद के अवसर पर गोहत्या इस्लाम के लिए आवश्यक तत्व नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार, राज्य यह विनियमित कर सकता है कि आवश्यक धार्मिक प्रथाएं क्या हैं और क्या नहीं तथा जो नहीं हैं उन्हें, असामाजिक होने की स्थिति में गैर-कानूनी घोषित कर सकता है।

व्यवहार्यता

- यह अधिकार नागरिकों और गैर-नागरिकों दोनों को प्रदान किया गया है।
- पंथनिरपेक्षता के अर्थ से संबंधित विविध व्याख्याओं और इससे संबंधित विरोधाभासों को दूर करने के लिए उच्चतम न्यायालय के नौ जजों की बेंच ने **एस. आर.बोम्मई वाद (1994)** में अपने एक निर्णय में इससे संबंधित आशंकाओं के निराकरण का प्रयास किया। न्यायालय के अनुसार पंथनिरपेक्षता से संबंधित निम्नलिखित तथ्य हैं, जो भारतीय संदर्भ में प्रासंगिक हैं:
    - पंथनिरपेक्षता का यह अर्थ नही है कि राज्य का धर्म के प्रति शत्रुभाव है। इसका अर्थ यह है कि राज्य को विभिन्न धर्मों के मध्य तटस्थ रहना चाहिए।
    - प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म को मानने और उसके अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता है। यह तर्क मान्य नही है कि यदि कोई व्यक्ति निष्ठावान हिन्दू या निष्ठावान मुस्लिम है तो वह पंथनिरपेक्ष नहीं रह जाता।
    - यदि धर्म का उपयोग राजनीतिक प्रयोजनों के लिए किया जाता है और राजनीतिक दल अपने राजनीतिक प्रयोजनों के लिए उसका आश्रय लेते हैं तो इससे राज्य की तटस्थता का उल्लंघन होगा। धर्म के आधार पर निर्वाचकों से अपील करना पंथनिरपेक्षीय लोकतंत्र के विरुद्ध है। राजनीति और धर्म को परस्पर तटस्थ होना चाहिए और उन्हें परस्पर संबद्ध नहीं किया जाना चाहिए। यदि कोई राज्य सरकार ऐसा करती है तो उसके विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन कार्रवाई उचित होगी। अतः इस अर्थ में पंथनिरपेक्षता संविधान का मूलभूत लक्षण होगी।

5.16. अनुच्छेद 26: धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता

मूलपाठ

लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग को

- *धार्मिक और धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का;*
- *अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का;*
- *जंगम और स्थावर संपत्ति के अर्जन और स्वामित्व का; और*
- *ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का अधिकार होगा।*

विवरण

अनुच्छेद 26 के अनुसार प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय को अधिकार है:

- धार्मिक एवं धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और निर्वाह करने का,
- अपने स्वयं के मामलों का प्रबंधन और
- इसके लिए संपत्ति का अधिग्रहण।

नोट: यद्यपि वर्तमान में व्यक्ति के लिए संपत्ति का अधिकार मूल अधिकार नहीं है, तथापि यह धार्मिक संप्रदाय के संबंध में उनका मूल अधिकार है।

- राज्य ऐसी संपत्ति के प्रशासन को विनियमित करने के लिए कानून बना सकता है, लेकिन प्रशासित करने के अधिकार को समग्र रूप से समाप्त नहीं कर सकता है।

हालांकि, यह स्वतंत्रता सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन है।

अनुच्छेद 25 के साथ संबंध

- अनुच्छेद 25, जहाँ किसी व्यक्ति को धर्म की स्वतंत्रता प्रदान करता है, वहीं अनुच्छेद 26 एक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग से संबंधित है।

अनुच्छेद 26 के अंतर्गत, प्रदत्त अधिकार नागरिकों एवं विदेशी व्यक्तियों दोनों को उपलब्ध हैं।

5.17. अनुच्छेद 27: किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता

मूल पाठ

किसी भी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता - किसी भी व्यक्ति को ऐसे करों का संदाय करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिनके आगम किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक संप्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से विनियोजित किए जाते हैं।

विवरण

- अनुच्छेद 27, राज्य द्वारा करों के माध्यम से एकत्र सार्वजनिक धन को किसी भी धर्म की अभिवृद्धि के लिए व्यय करने पर प्रतिबंध आरोपित करता है। यह पंथनिरपेक्षता की मूल अवधारणा के अनुरूप है। राज्य किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय का संरक्षण नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में, कर के माध्यम से एकत्र लोगों के धन को राज्य द्वारा किसी विशेष धर्म के रखरखाव या प्रसार पर व्यय नहीं किया जाना चाहिए। यह प्रावधान, राज्य द्वारा अन्य धर्मों की तुलना में किसी एक धर्म के पक्ष में संरक्षण और समर्थन किए जाने पर प्रतिबंध आरोपित करता है। इसका अर्थ यह है कि करों का उपयोग सभी धर्मों के समान अनुरक्षण या प्रसार के लिए किया जा सकता है, किसी धर्म विशेष के लिए नहीं।
- यह प्रावधान केवल कर वसूलने पर प्रतिबंध लगाता है; शुल्क वसूलने पर नहीं। इसका कारण यह है कि शुल्क का उद्देश्य धार्मिक संस्थाओं के प्रशासन का पंथनिरपेक्ष स्वरूप को बनाए रखना है, न कि धर्म का अनुरक्षण या प्रसार करना। इस प्रकार, कुछ विशेष सेवा या सुरक्षा उपाय प्रदान करने के लिए तीर्थयात्रियों से शुल्क वसूला जा सकता है तथा विनियमन व्यय को पूरा करने के लिए धार्मिक निधि पर शुल्क लगाया जा सकता है।

अनुच्छेद 27 के अंतर्गत, प्रदत्त अधिकार नागरिकों एवं विदेशी व्यक्तियों दोनों को उपलब्ध हैं।

5.18. अनुच्छेद 28: कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता

मूल पाठ

1. *राज्य-निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।*
2. *खंड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था को लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है किन्तु जो किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।*
3. *राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य-निधि से सहायता प्राप्त संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह अवयस्क है तो उसके संरक्षक ने, इसके लिए अपनी स्वीकृति प्रदान न की हो।*

विवरण

अनुच्छेद 28 के अनुसार,

- राज्य निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
- हालांकि, यह प्रावधान किसी धर्मस्थ संस्था या ट्रस्ट द्वारा स्थापित एवं राज्य द्वारा प्रशासित संस्थानों पर लागू नहीं होगा।
- इसके अतिरिक्त, राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या आर्थिक सहायता प्राप्त शिक्षण संस्था में किसी व्यक्ति को किसी धर्म विशेष की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा। हालाँकि, किसी व्यक्ति को उसकी सहमति पर धार्मिक निर्देश प्रदान किया जा सकता है। ध्यातव्य है कि व्यक्ति के अल्पवयस्क होने की स्थिति में उसके अभिभावक की सहमति आवश्यक है।

5.19. अनुच्छेद 29: अल्पसंख्यक-वर्गों के हितों का संरक्षण

मूल पाठ

(1) भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।

(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी भी आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

विवरण

- अनुच्छेद 29(1) किसी नागरिक को उसकी भाषा, लिपि एवं संस्कृति के संरक्षण का अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 29(2) राज्य द्वारा शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश की अनुमति देने में किए जाने वाले विभेद का प्रतिषेध करता है।
- विशेष: अनुच्छेद 15 भाषा को विभेद के आधार के रूप में उल्लिखित नहीं करता है, जबकि अनुच्छेद 29 में भाषा को शामिल किया गया है।
- अनुच्छेद 29 भाषायी और धार्मिक अल्पसंख्यकों, दोनों को संरक्षण प्रदान करता है। परंतु, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि इस अनुच्छेद का कार्यक्षेत्र केवल अल्पसंख्यकों तक सीमित नहीं है। अपितु, यह जनसंख्या के "सभी वर्गों" को सम्मिलित करता है जिसमें बहुसंख्यक भी शामिल हैं।

- **चम्पकम दोराईराजन के वाद (1951)** में पिछड़े वर्गों को प्रदान किए गए आरक्षण को इस आधार पर चुनौती दी गई कि यह अनुच्छेद 29(2) का उल्लंघन करता है। इसकी प्रतिक्रिया में संविधान का प्रथम संशोधन अधिनियम पारित किया गया, जिसके तहत आरक्षण के प्रावधान सुनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 15 (4) को प्रविष्ट किया गया।
- अनुच्छेद 29 और 30 दोनों केवल भारतीय नागरिकों पर लागू होते हैं।

5.20. अनुच्छेद 30: शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार

मूलपाठ

1. *धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।*
   खंड (1) में निर्दिष्ट किसी अल्पसंख्यक-वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधि बनाते समय, राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसी संपत्ति के अर्जन के लिए ऐसी विधि द्वारा नियत या उसके अधीन अवधारित राशि इतनी हो कि उस खंड के अधीन प्रत्याभूत अधिकार निर्बन्धित या निराकृत न हो जाए।
2. *शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के प्रबंध में संलग्न है।*

विवरण

- अनुच्छेद 30 के अंतर्गत अल्पसंख्यकों (भाषायी या धार्मिक) को अपनी रूचि के शैक्षिक संस्थानों की स्थापना एवं प्रशासन का अधिकार प्रदान किया गया है। राज्य शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्टता को बढ़ावा देने वाले नियमों के निर्माण के अतिरिक्त, अल्पसंख्यकों के इस अधिकार पर कोई प्रतिबंध नहीं लगा सकता।
- किसी अल्पसंख्यक संस्था की संपत्ति का राज्य द्वारा अधिग्रहण कर लिए जाने की स्थिति में यह उसके लिए पर्याप्त क्षतिपूर्ति का प्रावधान करता है।
- इस तरह के संस्थानों को सहायता उपलब्ध कराने में राज्य कोई भेदभाव नहीं करेगा।
- हालाँकि, संविधान में 'अल्पसंख्यक' शब्द का अर्थ व्याख्यायित नहीं किया गया है। वस्तुतः इसका आशय 'गैर-प्रभावी' समूह (non-dominant group) से है।
- केरल शिक्षा विधेयक तथा तत्पश्चात गुरु नानक देव विश्वविद्यालय के वाद में राष्ट्रपति को दी गयी अपनी सलाह में न्यायालय ने अल्पसंख्यकों की स्थिति के निर्धारण हेतु कुछ मानक निर्धारित किए हैं। केंद्रीय स्तर पर, इसका आशय उन समूहों से है जिनकी जनसंख्या, अखिल भारतीय स्तर पर 50 प्रतिशत से कम है। इसी प्रकार, राज्य स्तर पर भी राज्य की जनसंख्या के 50 प्रतिशत से कम जनसंख्या वाले समूह अल्पसंख्यक समूह माने जाते हैं।

5.20.1. अनुच्छेद 29 तथा 30 के मध्य संबंध

अनुच्छेद 29 जनसंख्या के सभी वर्गों के लिए उपलब्ध एक साधारण संरक्षण प्रावधान है। जबकि, अनुच्छेद 30 के तहत केवल भाषाई या धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षण उपलब्ध है।

अनुच्छेद 29 और 30 दोनों, केवल भारतीय नागरिकों के लिए उपलब्ध हैं।

महत्त्वपूर्ण वाद

सेंट स्टीफेंस बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय, 1992

- इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि अल्पसंख्यक संस्थानों को अपनी वार्षिक प्रवेश प्रक्रिया के दौरान कम से कम 50 प्रतिशत स्थान अन्य वर्गों के लिए उपलब्ध करना चाहिए तथा अन्य वर्गों के प्रवेश के लिए केवल योग्यता को ही आधार माना जाना चाहिए।

TMA पाई फाउंडेशन और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 2002

इस ऐतिहासिक निर्णय की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- सभी नागरिकों को शैक्षिक संस्थान स्थापित करने और उनके प्रशासन का अधिकार है।
- अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों के प्रशासन का अधिकार आत्यंतिक नहीं है।
- राज्य द्वारा गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों की शैक्षिक उत्कृष्टता सुनिश्चित करने के लिए नियम बनाए जा सकते हैं।
- वित्तपोषित अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों में प्रवेश हेतु अर्ह गैर-अल्पसंख्यक छात्रों का प्रतिशत राज्य अथवा विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित किया जाएगा।
- गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों के शुल्क को विनियमित नहीं किया जाएगा, परंतु कोई भी संस्थान कैपिटेशन फीस नहीं वसूल सकता।

इस्लामिक एकेडमी ऑफ़ एजुकेशन बनाम कर्नाटक राज्य, 2003

- इस वाद में, उच्चतम न्यायालय ने TMA पाई वाद में दिए गए अपने निर्णय को और अधिक स्पष्ट किया। निर्णय के अनुसार, अनुच्छेद 30 भाषायी एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों को शैक्षिक संस्थानों की स्थापना के लिए संपूर्ण अधिकार प्रदान करता है, परंतु सरकार उच्च मानकों को सुनिश्चित करने के लिए नियम बना सकती है तथा उन्हें नियंत्रित कर सकती है।

5.21. अनुच्छेद 31: संपत्ति का अनिवार्य अर्जन (निरसित)

- इस अनुच्छेद के तहत संपत्ति का अधिकार प्रदान किया गया था। परंतु, इसे 1978 में 44वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा निरस्त कर दिया गया तथा वर्तमान में यह एक मूल अधिकार नहीं वरन् **अनुच्छेद 300A** के तहत एक साधारण **विधिक अधिकार** है।
- 19(1)(f) के द्वारा प्रदत्त इस मूल अधिकार को अनुच्छेद 31 द्वारा पूर्णता प्रदान की गई। वर्ष 1978 में 44वें संविधान संशोधन के माध्यम से इन दोनों प्रावधानों को निरसित कर संविधान में अनुच्छेद 300A समाविष्ट किया गया। इसके अनुसार "किसी भी व्यक्ति को बिना उचित विधिक प्राधिकरण के उसकी निजी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकेगा।" इसका अर्थ है-
- इस प्रकार, वर्तमान में संपत्ति का अधिकार मूल अधिकार नहीं है अपितु यह एक संवैधानिक एवं विधिक अधिकार है। इसके उल्लंघन के लिए कोई सीधे उच्च या उच्चतम न्यायालय नहीं जा सकता है।
- इसके अतिरिक्त, यह व्यक्ति को केवल एकपक्षीय कार्यपालिका की कार्यवाही से सुरक्षा प्रदान करता है, एकपक्षीय विधायी प्रक्रियाओं से नहीं।
- अधिग्रहण की स्थिति में राज्य अनिवार्य रूप से क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए बाध्य नहीं है।

अनुच्छेद 31A: संपदाओं आदि के अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधियों की व्यावृत्ति

- अनुच्छेद 31A को मूलत: संपत्ति का अधिकार (अनुच्छेद 31), अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 19(1)(f) के अपवाद के रूप में अधिनियमित किया गया था, संपत्ति के अधिकार के उत्सादन के पश्चात् भी इस अनुच्छेद को बनाए रखा गया है।
- यह कानूनों की 5 श्रेणियों को अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दिए जाने और अवैध ठहराए जाने से सुरक्षित करता है। ये श्रेणियाँ कृषि, भूमि सुधार, उद्योग और वाणिज्य आदि से संबंधित हैं।

- यह अनुच्छेद **प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम** द्वारा जोड़ा गया था। यह राज्य को व्यक्तिगत संपत्तियों के अर्जन की अनुमति प्रदान करता है। संसद और राज्य विधानमंडल दोनों इस आशय के कानूनों का निर्माण कर सकते हैं। हालाँकि यह अनुच्छेद राज्य द्वारा निर्मित किसी कानून को तब तक उन्मुक्ति नहीं प्रदान करता, जब तक कि उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित न कर लिया जाए और राष्ट्रपति द्वारा इस आशय की सहमति प्राप्त न हो जाए।
- यदि राज्य किसी ऐसे व्यक्ति की भूमि का अधिग्रहण करे, जो उसकी कृषि भूमि के अधीन है तथा यह भूमि कानूनी रूप से लागू हदबंदी सीमा के भीतर है तो यह अनुच्छेद उसे इसके एवज में बाजार कीमतों आधार पर मुआवज़े का प्रावधान करता है।

अनुच्छेद 31B: कुछ अधिनियमों और विनियमों का विधिमान्यीकरण

अनुच्छेद 31B, नवीं अनुसूची में सम्मिलित कानूनों को अनुच्छेद 14 और 19 के उल्लंघन के आधार पर अवैध ठहराए जाने से सुरक्षा प्रदान करता है।

9वीं अनुसूची से संबंधित विवाद

- भूमि सुधारों को बढ़ावा देने के लिए संविधान संशोधन के माध्यम से वर्ष 1951 में संविधान में 9वीं अनुसूची शामिल की गई। इस अनुसूची का मूलभूत उद्देश्य जमींदारी प्रथा को समाप्त करना था। हालाँकि बाद में, इसका दुरुपयोग भी किया जाने लगा और वर्तमान में 9वीं अनुसूची में भूमि सुधार नियमों के अतिरिक्त अन्य अनेक विवादित नियम भी सम्मिलित कर लिए गए हैं यथा: तमिलनाडु का 69 प्रतिशत आरक्षण का नियम जो आरक्षण हेतु उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित 50 प्रतिशत की उच्चतम सीमा का उल्लंघन करता है।
- 9वीं अनुसूची में सम्मिलित सभी विषयों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने वाला अनुच्छेद 31B, भूतलक्षी प्रभाव भी रखता है। अतः यदि किसी विधान को किसी न्यायालय द्वारा असंवैधानिक भी घोषित कर दिया गया हो तो इस अनुसूची में शामिल होने की स्थिति में इसे लागू होने की तिथि से संवैधानिक माना जाएगा।
- हालाँकि, वर्ष 2007 के **आई. आर. कोएल्हो** वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि 24 अप्रैल 1973 (केशवानंद भारती वाद के निर्णय की तिथि) के पश्चात 9वीं अनुसूची में शामिल किसी भी कानून को अनुच्छेद 14, 19, 20 और 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी जा सकती है। उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा है कि यदि 9वीं अनुसूची में सम्मिलित कोई कानून संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को इस प्रकार संक्षिप्त या निषेधित करते हैं कि संविधान के मूल ढांचे को हानि पहुँचता है तो ऐसे कानून न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन होंगे तथा उन्हें शून्य माना जाएगा।

अनुच्छेद 31C: कुछ नीति निदेशक तत्वों को प्रभावी बनाने वाले कानूनों का संरक्षण

- अनुच्छेद 31C को 25वें संविधान संशोधन द्वारा वर्ष 1971 में शामिल किया गया था। यह अनुच्छेद 39(b) और 39(c) में निहित नीति निदेशक तत्वों के को लागू करने हेतु निर्मित किसी कानून को अनुच्छेद 14, 19 तथा 31 के उल्लंघन के आधार पर अवैध ठहराए जाने से सुरक्षा प्रदान करता है।
- मूलतः अनुच्छेद 31(C) के दो भाग थे। प्रथम, भाग अनुच्छेद 39(b) और 39(c) में उल्लिखित सिद्धांतों पर निर्मित राज्य की किसी नीति को अनुच्छेद 14, 19 तथा 31 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर शून्य घोषित न किए जाने का प्रावधान करता है।

- जबकि, इसका दूसरा भाग अनुच्छेद 39(b) और 39(c) को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से निर्मित विधियों को न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे से बाहर करता है और यह प्रावधान करता है कि ऐसी विधि न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि उसने अनुच्छेद 39(b) और 39(c) को प्रभावी बनाया है अथवा नहीं।
- हालाँकि, केशवानंद भारती वाद में उच्चतम न्यायालय ने इसके दूसरे भाग को असंवैधानिक एवं शून्य घोषित कर दिया क्योंकि यह न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को सीमित करता था, जो कि संविधान के मूल ढांचे का भाग है।
- बाद में, 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से इस अनुच्छेद के दायरे को विस्तृत कर सभी नीति निदेशक तत्वों को किसी भी मूल अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान कर दी गयी। इसके अनुसार कोई भी ऐसा कानून जो किसी भी नीति निदेशक तत्व {न कि केवल अनुच्छेद 39(b) और 39(c)} को प्रभावी बनाता है, उसे अनुच्छेद 14 तथा 19 के उल्लंघन के आधार पर शून्य घोषित नहीं किया जा सकता।
- हालाँकि, वर्ष 1980 में मिनर्वा मिल वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा उपर्युक्त प्रावधान को समाप्त कर दिया गया एवं मूल अधिकारों एवं नीति निदेशक तत्वों के **मध्य पुनः संतुलन स्थापित** कर दिया गया।

5.22. अनुच्छेद 32 : संवैधानिक उपचारों का अधिकार

मूल पाठ

भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उपचार -

- *इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय में समावेदन करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।*
- *इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निदेश या आदेश या रिट (बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण रिट), जो भी समुचित हो, जारी करने की शक्ति होगी।*
- *उच्चतम न्यायालय को खंड (1) और खंड (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल रूप से प्रभावित किए बिना, संसद, उच्चतम न्यायालय द्वारा खंड (2) के अधीन प्रयोक्तव्य किन्हीं या सभी शक्तियों का किसी अन्य न्यायालय को अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर प्रयोग करने के लिए विधि द्वारा सशक्त कर सकेगी अर्थात् संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अन्य न्यायालय को सभी प्रकार के निर्देश, आदेश और रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करे।*
- *इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित के अतिरिक्त, इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलंबित नहीं किया जाएगा।*

विवरण

- अनुच्छेद 32 (1) मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उच्चतम न्यायालय में समावेदन एवं उपचार का अधिकार प्रदान करता है। हालांकि, इसमें समुचित कार्यवाही के माध्यम से ही उच्चतम न्यायालय में याचिका करने का उल्लेख है। यह उच्चतम न्यायालय का कर्त्तव्य और व्यक्तियों का अधिकार है।
- उच्चतम न्यायालय समुचित कार्यवाही को निर्धारित कर सकता है। परंपरागत दृष्टिकोण यह है कि न्यायालय में समावेदन करने वाले व्यक्ति द्वारा वाद उचित प्रक्रिया (अथवा स्वयं उपस्थित होकर) के तहत किया जाना चाहिए। हालांकि, उच्चतम न्यायालय ने इस दृष्टिकोण को **जनहित याचिका, स्वतः संज्ञान (Suo Moto), पत्र व्यवहार** आदि प्रक्रियाओं के द्वारा उदार बनाया है।

जनहित याचिका (PIL)

- USA के सामाजिक हित याचिका (SIL) से अपनाया गया।
- यह न तो निजी हित याचिका है और न ही राजनीतिक हित याचिका है।
- यह कोई मूल अधिकार नहीं है।

इपिस्टलेरी जूरिस्डिक्शन (Epistolary jurisdiction)

- पोस्ट कार्ड, पत्र के आधार पर कार्रवाई करना।

स्वत: संज्ञान लेना (Suo moto)

- उच्चतम न्यायालय स्वत: संज्ञान के आधार पर कार्रवाई कर सकता है।

लेश का सिद्धांत (Doctrine of Laches)

- उच्चतम न्यायालय उन लोगों के अधिकारों की रक्षा करता है जो अपने अधिकारों के बारे में सतर्क हैं।
- अधिकारों को लागू करने के लिए न्यायालयों से संपर्क करने में अनावश्यक देरी के मामले में, उच्चतम न्यायालय रिट जारी करने से अस्वीकार कर सकता है।

अनुच्छेद 32 का महत्व

- सभी मूल अधिकारों में संवैधानिक उपचारों का अधिकार अत्यंत महत्वपूर्ण अधिकार है। साथ ही, मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए एक प्रभावी तंत्र का विद्यमान होना अनिवार्य हैं एवं उपचारों के बिना अधिकारों की घोषणा मूल्यहीन है।
- **अनुच्छेद 32 की अनुपस्थिति में** अन्य मूल अधिकारों की उपादेयता संदिग्ध हो जाती है, क्योंकि यह मूल अधिकार ही नागरिकों को किसी अन्य मूल अधिकारों की उल्लंघन की दशा में न्यायालय जाने का अधिकार प्रदान करता है और विधायिका या कार्यपालिका द्वारा किसी भी मूल अधिकारों के उल्लंघन करने वाली विधि को शून्य घोषित करता है अर्थात यह उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन शक्तियों को भी दर्शाता है। उच्चतम न्यायालय ने आई.आर. कोएल्हो बनाम तमिलनाडु राज्य (2007) वाद में कहा है कि अनुच्छेद 32 संविधान के मूल ढाँचे का अभिन्न अंग है। इस अनुच्छेद के द्वारा ही मूल अधिकारों के संरक्षक के रूप में उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई है। मूल अधिकार के महत्व को देखते हुए ही **भीमराव अंबेडकर ने इस अनुच्छेद को भारतीय संविधान की आत्मा कहा था।**
- इस अनुच्छेद के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय को संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को लागू करने के लिए आवश्यक निर्देश, आदेश, लेख या रिट जारी करने का अधिकार प्राप्त है। यह अनुच्छेद विशेष रूप से निम्नलिखित लेखों का उल्लेख करता है :

  (i) बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus): बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा उस व्यक्ति के संबंध में जारी एक आदेश है, जिसे हिरासत में लिया गया है या निरुद्ध किया गया हो (इसका अर्थ उसकी स्वतंत्रता के मूल अधिकार का उल्लंघन है)। इसके तहत न्यायालय, हिरासत में लिए गए व्यक्ति को सशरीर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश जारी करता है। तत्पश्चात, न्यायालय हिरासत में लिए जाने के कारणों की जाँच करता है और यदि उसकी हिरासत से संबंधित कोई कानूनी औचित्य सिद्ध नहीं होता है, तो उसे रिहा किया जा सकता है।

(ii) परमादेश (Mandamus): इसका शाब्दिक अर्थ है 'हम आदेश देते हैं'। इसे उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति, निगम, अधीनस्थ न्यायालय, सार्वजनिक प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरण को जारी किया जाता है, ताकि इनसे उनके कार्यों और उसे नकारने के संबंध में पुचा जा सके।

(iii) उत्प्रेषण (Certiorari): इसका शाब्दिक अर्थ है: "प्रमाणित होना" या "सूचना देना"। उत्प्रेषण रिट को पहले से ही एक अवर न्यायालय, अधिकरण या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को निरस्त करने के लिए उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय द्वारा जारी किया जा सकता है। उत्प्रेषण रिट जारी करने के लिए कई परिस्थितियों का होना आवश्यक है। जब भी कोई विधिक निकाय जिसे जनता के अधिकार को प्रभावित करने वाले किसी प्रश्न को अवधारित करने का विधिक प्राधिकार प्राप्त है और जिसका कर्त्तव्य है कि वह न्यायिक रीति से कार्य करे, यदि वह अपने विधिक प्राधिकार से इतर कार्य करता है तो उसकी अधिकारिता से इतर विनिश्चय को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी की जाती है।

(iv) प्रतिषेध (Prohibition): प्रतिषेध रिट का अर्थ "रोकना या मना करना" होता है और यह **स्थगन आदेश (स्टे आर्डर)** के रूप में लोकप्रिय है। यह रिट तब जारी की जाती है जब कोई अधीनस्थ न्यायालय या निकाय अपने प्राधिकार के अतिक्रमण का प्रयास करता है। प्रतिषेध रिट किसी अधीनस्थ न्यायालय या अर्ध-न्यायिक निकाय को किसी विशेष वाद में, जहाँ इन निकायों को कार्रवाई का अधिकार प्राप्त न हो, कार्यवाही करने से रोकने के लिए उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी की जाती है। इस रिट के जारी किए जाने के पश्चात अधीनस्थ न्यायालय में होने वाली कार्यवाही स्थगित हो जाती है।

प्रतिषेध और उत्प्रेषण में अंतर :

जहां प्रतिषेध रिट प्रक्रिया या कार्यवाही के निलंबन के दौरान उपलब्ध होती हैं, वही उत्प्रेषण रिट केवल आदेश या निर्णय की उद्घोषणा के पश्चात ही जारी की जा सकती है। दोनों ही रिट विधिक निकायों के विरुद्ध जारी की जा सकती हैं।

(v) अधिकार पृच्छा (Quo warranto)

अधिकार पृच्छा का अर्थ है "किस प्राधिकृत या वारंट के द्वारा?" या "आपका प्राधिकार क्या है?" इसे किसी व्यक्ति को किसी ऐसे सार्वजनिक पद को धारण करने से रोकने की दृष्टि से जारी किया जाता है जिसे धारण करने के वह अयोग्य है। रिट जारी करने के पश्चात यह आवश्यक हो जाता है कि संबद्ध व्यक्ति न्यायालय के समक्ष इस तथ्य की व्याख्या करे कि वह किस प्राधिकार से उक्त पद धारण किया है।

अधिकार पृच्छा जारी करने के लिए शर्तें:

- कार्यालय सार्वजनिक होना चाहिए और यह किसी विधि या स्वयं संविधान द्वारा स्थापित होना आवश्यक है।
- इसके लिए एक मूल कार्यालय का होना आवश्यक है और इसके प्रकार्य केवल अधीनस्थ के रूप में किसी और के प्रसाद पर्यंत नहीं होने चाहिए ।
- ऐसे किसी व्यक्ति की उस पद पर नियुक्ति में संविधान या विधि अथवा वैधानिक उपकरण का उल्लंघन न हुआ हो।

अनुच्छेद 32 (3)

संसद मूल अधिकारों को लागू करने के लिए किसी भी अन्य न्यायालय को अधिकृत कर सकती है।

शर्तें:

- ऐसा करने के उपरांत उच्चतम न्यायालय की शक्तियां नकारात्मक रूप से प्रभावित न हों।
- अन्य न्यायालय जिसे रिट जारी करने के लिए प्राधिकृत किया गया है; उसकी शक्तियां उसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर सीमित होनी चाहिए।

अनुच्छेद 32 (4)

यह अनुच्छेद 359 के तहत निर्धारित विशेष रीति से अनुच्छेद 32 के निलंबन का प्रावधान करता है।

अनुच्छेद 359- राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा के दौरान मूल अधिकारों का निलंबन

- अनुच्छेद 19 (जो बाह्य आक्रमण या युद्ध के आधार पर स्वतः निलंबित हो जाता है) के अतिरिक्त अन्य अधिकारों का निलंबन स्वतः नहीं होता है।
- अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त अधिकारों को कभी भी निलंबित नहीं किया जाता है। शेष अधिकारों को तभी निलंबित किया जा सकता है, जब राष्ट्रपति किसी अधिकार को निलंबित करने के लिए आदेश जारी करे। अपने आदेश में राष्ट्रपति को निलंबित किए जाने वाले अधिकार, उसकी निलंबन की अवधि तथा उसकी भौगोलिक सीमा का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करना होता है।

5.23. अनुच्छेद 33 - मूल अधिकारों के, सुरक्षा बलों आदि पर लागू होने में, उपांतरण करने की संसद की शक्ति

मूल पाठ

इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों का, सुरक्षा बलों आदि पर लागू होने में, उपांतरण करने की संसद की शक्ति- संसद, विधि द्वारा अवधारण कर सकेगी कि इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से कोई-

(क) सशस्त्र बलों के सदस्यों को, या

(ख) लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को, या

(ग) आसूचना या प्रति आसूचना के प्रयोजनों के लिए राज्य द्वारा स्थापित किसी ब्यूरो या अन्य संगठन में नियोजित व्यक्तियों को, या

(घ) खंड (a) से खंड (c) में निर्दिष्ट किसी बल, ब्यूरो या संगठन के प्रयोजनों के लिए स्थापित दूरसंचार प्रणाली में या उसके संबंध में नियोजित व्यक्तियों को,

लागू होने में, किस विस्तार तक निर्बन्धित या निराकृत किया जाए जिससे उनके कर्तव्यों का उचित पालन और उनमें अनुशासन बना रहे।

विवरण

- अनुच्छेद 33 संसद को यह अधिकार देता है कि वह सशस्त्र बलों, अर्द्धसैनिक बलों, पुलिस बलों इत्यादि के मूल अधिकारों को सीमित या कुछ स्तर तक युक्तियुक्त रूप से प्रतिबंधित कर सके। परंतु, इसका अर्थ यह नहीं कि यह अनुच्छेद स्वयं किसी अधिकार का प्रतिषेध करेगा।
- इस अनुच्छेद का कार्य संसदीय विधानों की प्रकृति पर निर्भर करेगा, भले ही वे इस अनुच्छेद को संदर्भित न करें। संसद द्वारा निर्मित इस प्रकार का विधान समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संघ निर्माण की स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता आदि के रूप में किसी भी मूल अधिकार के संचालन को प्रतिबंधित कर सकता है। पुलिस बल (विशेषाधिकार के प्रतिबंध) अधिनियम, 1966 संसद द्वारा पारित एक ऐसा ही अधिनियम है। इसे उच्चतम न्यायालय में चुनौती भी दी गयी थी, परंतु इसे वैध घोषित कर दिया गया था।

5.24. अनुच्छेद 34 - जब किसी क्षेत्र में सेना विधि प्रवृत्त है तब इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों पर निर्बंधन

मूल पाठ

इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, संसद विधि द्वारा संघ या किसी राज्य की सेवा में किसी व्यक्ति की या किसी अन्य व्यक्ति की किसी ऐसे कार्य के संबंध में क्षतिपूर्ति कर सकेगी जो उसने भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर किसी ऐसे क्षेत्र में, जहाँ सेना विधि प्रवृत्त थी, व्यवस्था के बनाए रखने या पुनःस्थापन के संबंध में किया है या ऐसे क्षेत्र में सेना विधि के अधीन पारित दंडादेश, दिए गए दंड, आदिष्ट समपहरण या किए गए अन्य कार्य को विधिमान्य कर सकेगी।

विवरण

- यह अनुच्छेद 'मार्शल लॉ' के लागू होने की स्थिति में मूल अधिकारों को सीमित या प्रतिबंधित करने से संबंधित है।
- मार्शल लॉ की परिभाषा संविधान में नहीं दी गई है। किंतु, इसका सामान्य अर्थ ऐसे सैन्य कानूनों से है जो किसी अशांत क्षेत्र में सामान्य प्रशासन के संचालन हेतु साधारण कानून को निलंबित करके सेना को प्रशासन के संचालन हेतु प्राधिकृत करने से हैं।
- मार्शल लॉ को लागू करने हेतु असाधारण परिस्थितियाँ जैसे युद्ध, अशांति, दंगे या कानून का उल्लंघन आदि की स्थिति उत्पन्न होनी चाहिए।
- इसके कार्यान्वयन के दौरान एवं कानून व्यवस्था बनाए रखने हेतु किए गए कृत्यों हेतु सरकारी कर्मचारी को सुरक्षा प्रदान की गई है।
- इसके क्रियान्वयन के दौरान मूल अधिकारों पर प्रतिबंध को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि यह मूल अधिकार का उल्लंघन करता है।
- अनुच्छेद 34 के तहत घोषित मार्शल लॉ एवं अनुच्छेद 352 के घोषित राष्ट्रीय आपातकाल में निम्नलिखित अंतर हैः

मार्शल लॉ	राष्ट्रीय आपातकाल
यह केवल मूल अधिकारों को प्रभावित करता है।	इससे केवल मूल अधिकार ही प्रभावित नहीं होते अपितु यह केंद्र-राज्य सम्बन्ध, राजस्व वितरण एवं केंद्र तथा राज्य की विधायी शक्तियों को भी प्रभावित करता है और इस दौरान सरकार के कार्यकाल में भी वृद्धि हो सकती है।
यह सरकार और साधारण कानूनी न्यायालयों को निलंबित कर देता है।	इस दौरान सरकार और साधारण न्यायालय कार्यरत रहते हैं।
यह किसी भी कारण से कानून एवं व्यवस्था में आए व्यवधान को समाप्त करता है।	यह केवल तीन आधारों पर लगाया जा सकता है - युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह।
यह देश के कुछ विशिष्ट हिस्सों में ही लागू किया जाता है।	यह या तो पूरे देश में या इसके किसी भी हिस्से में लगाया जा सकता है।
इसके सन्दर्भ में संविधान में कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं किया गया है। यह अव्यक्त है।	इसके सन्दर्भ में संविधान में विशिष्ट एवं विस्तृत प्रावधान किये गए हैं। यह स्पष्ट है।

5.25. अनुच्छेद 35: भाग 3 के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए विधान

मूल पाठ

इस भाग के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए विधान- इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी,-

(a) संसद (न की किसी राज्य के विधान-मंडल को) को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह-

(i) जिन विषयों के लिए अनुच्छेद 16 के खंड (3), अनुच्छेद 32 के खंड (3), अनुच्छेद 33 और अनुच्छेद 34 के अधीन संसद विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी उनमें से किसी के लिए, और

(ii) ऐसे कार्यों के लिए, जो इस भाग के अधीन अपराध घोषित किए गए हैं, दंड विहित करने के लिए, विधि बनाए और संसद इस संविधान के प्रारंभ के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र ऐसे कार्यों के लिए, जो उपखंड (iii) में निर्दिष्ट हैं, दंड विहित करने के लिए विधि बनाएगी;

(b) खंड (a) के उपखंड (i) में निर्दिष्ट विषयों में से किसी से संबंधित या उस खंड के उपखंड (ii) में निर्दिष्ट किसी कार्य के लिए दंड का उपबंध करने वाली कोई प्रवृत्त विधि, जो भारत के राज्यक्षेत्र में इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पूर्व प्रवृत्त थी, उसके निबंधनों के और अनुच्छेद 372 के अधीन उसमें किए गए किन्हीं अनुकूलनों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए तब तक प्रवृत्त रहेगी जब तक उसका संसद द्वारा परिवर्तन या निरसन या संशोधन नहीं कर दिया जाता है।

स्पष्टीकरण -इस अनुच्छेद में, "प्रवृत्त विधि" पद का वही अर्थ है जो अनुच्छेद 372 में है।

विवरण

- इसका उद्देश्य कुछ विशेष मूल अधिकारों को प्रभावी बनाने एवं उनके उल्लंघन की दशा में दंडित करने हेतु संपूर्ण देश में कानूनों के संमरूपता हेतु संसद को शक्ति संपन्न करना है।
- इस प्रकार के विधि निर्माण की शक्ति केवल संसद के पास है, न की राज्य विधानमंडल के पास।
- कुछ विशेष मूल अधिकारों को प्रभावी बनाने संबंधी संसद की शक्ति यथा:
    - **अनुच्छेद 16** - किसी राज्य, केंद्र-शासित या स्थानीय प्राधिकरणों में रोजगार हेतु निवास संबंधी अनिवार्यता।
    - **अनुच्छेद 32** - मूल अधिकारों के क्रियान्वयन हेतु उच्चतम या उच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों को प्राधिकृत करना।
    - **अनुच्छेद 33** - विभिन्न सशस्त्र बलों, अर्धसैनिक बलों, खुफ़िया एजेंसियों के समुचित क्रियाकलाप एवं अनुशासन को बनाए रखने हेतु मूल अधिकारों पर प्रतिबंध हेतु।
    - **अनुच्छेद 34** - मार्शल लॉ के कार्यान्वयन के दौरान निष्पादित कृत्यों की क्षतिपूर्ति हेतु।
- मूल अधिकारों के उल्लंघन की दिशा में दंडित करने हेतु संसद की शक्ति यथा :
    - **अनुच्छेद 17** - अस्पृश्यता की समाप्ति एवं छुआछूत के आचरण को दंडित करने हेतु विधि निर्माण संबंधी शक्ति। उदाहरण के लिए, नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 एवं अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 निर्मित किया गया है।
    - **अनुच्छेद 23** - मानवीय दुर्व्यपार एवं बलात् श्रम को रोकने हेतु अधिनियम। उदाहरण के लिए, अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 एवं बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम 1976.

6. संपत्ति के अधिकार की प्रस्थिति

वर्तमान में संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं है। हालाँकि, संविधान के प्रारम्भ में यह अनुच्छेद 19 (1) (च) द्वारा गारंटीकृत एक मौलिक अधिकार था। पुन: यह अनुच्छेद 31 का पूरक था, जिसने संपत्ति का राज्य द्वारा अधिग्रहण करने से सुरक्षा प्रदान की थी। इस अधिकार के कारण बहुत से भ्रम एवं कानूनी विवाद उत्पन्न हुए और संवैधानिक संशोधन भी हुए। अंततः 1978 में, 44 वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा इन दोनों अनुच्छेदों को निरसित कर दिया गया और एक अन्य अनुच्छेद 300A को सम्मिलित किया गया जिसमें कहा गया है कि "किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से विधि के प्राधिकार से ही वंचित किया जाएगा,अन्यथा नहीं।" इसका तात्पर्य है कि:

- इस प्रकार अब संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं है, बल्कि यह केवल एक संवैधानिक अधिकार है। अब कोई भी नागरिक इस अधिकार के उल्लंघन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में नहीं जा सकता है।
- इसके अतिरिक्त यह व्यक्तियों को केवल मनमानी कार्यकारी कार्रवाई से बचाता है, न कि विधायी कार्रवाई से।
- राज्य अधिग्रहण के मामले में किसी भी मुआवजे का भुगतान करने के लिए संवैधानिक रूप से बाध्य नहीं है।

7. क्या मूल अधिकार आत्यंतिक हैं?

मूल अधिकार किसी व्यक्ति को आत्यंतिक शक्तियां नहीं प्रदान करते। ये युक्तियुक्त रूप से सीमित (restricted) अधिकार हैं। **गोपालन वाद (1950)** में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट कहा था कि आत्यंतिक स्वतंत्रता जैसी कोई भी संकल्पना अस्तित्व नहीं रखती क्योंकि ऐसी स्थिति अराजकता की स्थिति बना सकती है। वहीं दूसरी ओर, यदि राज्य को आत्यंतिक अधिकार प्राप्त हो जाएँ तो तानाशाही का उदय होगा। मूल अधिकारों का उद्देश्य विधि के शासन की स्थापना है और इसीलिए व्यक्ति के अधिकारों एवं सामाजिक अपेक्षाओं के मध्य संतुलन का होना अत्यधिक आवश्यक है। यही कारण है कि संविधान संसद को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह व्यक्ति के मूल अधिकारों पर युक्तियुक्त एवं तर्कसंगत प्रतिबन्ध लगा सके।

युक्तियुक्त प्रतिबंधों के प्रमुख आधार निम्नांकित हैं:

- अनुच्छेद 19(2) में वर्णित आधार।
- महिलाओं और बच्चों सहित अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और समाज के अन्य कमजोर वर्गों की उन्नति।
- आम जनता, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता और नैतिकता के हित में।
- भारत की संप्रभुता और अखंडता।
- राज्य की सुरक्षा।
- विदेशी राज्यों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध।

8. मूल अधिकारों पर आपातकाल का प्रभाव

- अनुच्छेद 358 एवं 359 राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान मूल अधिकार पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करते हैं। अनुच्छेद 358, अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के निलंबन से संबंधित है, जबकि अनुच्छेद 359 अन्य मूल अधिकारों के निलंबन (अनुच्छेद 20 और 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के अतिरिक्त) से संबंधित है।
- जब कभी संविधान के अनुच्छेद 352 के अंतर्गत युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण के कारण (किंतु सशस्त्र विद्रोह के आधार पर नहीं) आपातकाल की उद्घोषणा की जाती है तो संविधान के अनुच्छेद 19 में उल्लेखित स्वतंत्रता संबंधी अधिकार का क्रियान्वयन निलंबित रहता है। उपरोक्त आधार पर आपातकाल की उद्घोषणा के उपरांत राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 359 के अंतर्गत एक दूसरा आदेश जारी कर अन्य मूल अधिकारों के क्रियान्वयन को भी स्थगित कर सकता है।

9. मूल अधिकारों की आलोचना

- यद्यपि ये मूल अधिकार कहे जाते हैं, परन्तु इन पर असंख्य प्रतिबंध आरोपित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त 'युक्तियुक्तता' में क्या शामिल है, यह न्यायालयों की बदलती व्याख्याओं पर निर्भर करता है।
- ये केवल राजनीतिक अधिकार प्रदान करते हैं। हालांकि राजनीतिक स्वतंत्रता तब तक व्यर्थ है, जब तक कि सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता न प्राप्त हो।
- ये अधिकार अपरिवर्तनीय नहीं हैं। संसद द्वारा इसमें कटौती या इन्हें सिमित किया जा सकता है। इनमें से अधिकांश राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान निलंबित हो जाते हैं।
- मूल अधिकारों के उल्लंघन के सन्दर्भ में, न्यायिक उपचार जटिल और महंगा हैं, अधिक समय लेने वाला और व्यवहार में अधिकांश जनसंख्या की पहुँच से बाहर है।

10. मूल अधिकारों का महत्व

- उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद, मूल अधिकार हमारे देश की उदार लोकतांत्रिक ढांचे की आधारशिला का निर्माण करते हैं। स्वतंत्रता के बाद के अनुभव से पता चलता है कि न केवल इसने लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत बनाने में मदद की है; अपितु न्यायालयों की उदार व्याख्या ने व्यक्तिगत अधिकारों के दायरे का अत्यंत विस्तार भी किया है। वर्तमान में ये कार्यकारी निरंकुशता और विधायी मनमानेपन के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण संरक्षण प्रदान करते हैं।

11. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions)

1. **यह आवश्यक नहीं कि सभी को समान उपचार प्राप्त हो, परन्तु सभी के साथ समान व्यवहार होना चाहिए। इस कथन के आलोक में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 की व्याख्या कीजिए।**

दृष्टिकोण:

- विधि के समक्ष समता तथा विधियों का समान संरक्षण के मध्य विभेद की स्पष्ट समझ होनी चाहिए।
- साथ ही विधि निर्माण के समय संविधान द्वारा किस प्रकार के वर्गीकरण को अनुमति दी गयी है, उसकी स्पष्ट समझ होनी चाहिए। उत्तर के पक्ष में, कुछ उदाहरण इसे अधिक सार्थक/सुसंगत बनाएंगे।
- विधि के समक्ष समता, विधि का शासन एवं इसकी महत्ता आदि पर कोई चर्चा नहीं करनी है क्योंकि प्रश्न में विशेष रूप से इसके अनुप्रयोगों के बारे में पूछा गया है।

उत्तरः

- अनुच्छेद 14 भारत के राज्य क्षेत्र में सभी व्यक्तियों को विधि के समक्ष समता का अधिकार प्रदान करता है अर्थात् यह किसी भी व्यक्ति को किसी तरह के विशेषाधिकार की अनुपस्थिति को दर्शाता है। इसका तात्पर्य है कि यहाँ कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है और सभी व्यक्ति चाहे वह किसी भी पद या स्तर का हो साधारण कानून के अधीन है।
- परन्तु विधि के समक्ष समता के सिद्धांत में सभी के लिए निरपेक्ष समता का विचार शामिल नहीं है। इस अनु॰ में एक वाक्य शामिल है- 'विधियों का समान संरक्षण' जिसका तात्पर्य है कि समान परिस्थितियों में सभी के साथ समान व्यवहार किया जायेगा।

- अनुच्छेद 14 में जो निषेध किया गया है वो 'वर्ग विधान' है न कि विधान बनाने के उद्देश्यों के लिए वर्गीकरण। परन्तु यह वर्गीकरण ऐच्छिक नहीं होना चाहिए। यह तार्किक होना चाहिए तथा वैसे गुणों और अभिलक्षणों पर आधारित होना चाहिए, जिनका विधान के उद्देश्य से संबंध हो। अतः अनुच्छेद 14 यह नहीं कहता कि सभी व्यक्तियों पर समान कर लगे बल्कि समान लक्षणों वाले व्यक्तियों पर समान मानकों पर आधारित कर आरोपित होना चाहिए।
- वर्गीकरण, तार्किक हो और मनमाना न हो इसके लिए दो शर्तें पूरी होना आवश्यक है। प्रथम वर्गीकरण बोधगम्य अंतर पर आधारित होना चाहिये जो एक समूह को दूसरे से पृथक करे और द्वितीय यह कि यह अंतर अधिनियम के उद्देश्य से युक्तियुक्त रूप से संबंधित होना चाहिए।
- साथ ही समान संरक्षण की गारण्टी, कानून निर्माण के साथ ही लागू नहीं होगी बल्कि उसके प्रशासन व कार्यान्वयन में भी लागू होगी। अतः कोई प्रक्रिया जो साधारण कानून से अलग अपनाई जाये एक विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति के लिए तो यह भेदभाव तार्किक वर्गीकरण पर आधारित होना चाहिये।

2. अनुच्छेद 21 के अंतर्गत, मानवीय प्रतिष्ठा के साथ जीवन के अधिकार में सम्मान के साथ मृत्यु का अधिकार भी सम्मिलित है। इस मामले पर सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न न्यायिक घोषणाओं के आलोक में चर्चा कीजिए। साथ ही, "मेडिकल ट्रीटमेंट ऑफ टर्मिनली इल पेशेंट्स बिल- 2016" से संबद्ध विभिन्न मुद्दों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

दृष्टिकोण:

यह समझने की आवश्यकता है कि यहां विशेष रूप से क्या पूछा जा रहा है, क्योंकि हाल के महीनों में इच्छामृत्यु पर चर्चा विशेष रूप से सुर्ख़ियों में रही है।

- इच्छामृत्यु पर चर्चा को भूमिका के रूप में प्रस्तुत कीजिए। संविधान के अनुच्छेद 21 के प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
- हाल के कुछ उदाहरणों के साथ इसके पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए।

उत्तर:

अनुच्छेद 21 व्यक्ति को सार्थक, संपूर्ण और सम्मानपूर्ण जीवन का अधिकार प्रदान करता है। किन्तु मरणासन्न रूप से रोगग्रस्त रोगियों के मामले में इस अधिकार को उचित रूप से प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि गरिमामय जीवन के अधिकार के अनुरूप, जो व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता उसे कम से कम गरिमापूर्ण मृत्यु का अधिकार प्राप्त होना ही चाहिए। इच्छामृत्यु या असिस्टेड सुसाइड को 'रोगी को दुख से उबारने' के माध्यम के रूप में बताते हुए तर्क दिया जाता रहा है। वर्ष 2011 में **अरुणा शानबाग** निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने निष्क्रिय (पैसिव) इच्छामृत्यु की अनुमति दी। यह अनुमति प्रत्येक मामले में विशेषज्ञों के पैनल से परामर्श के आधार पर उच्च न्यायालय की न्यायपीठ द्वारा अनिवार्य अनुमोदन से निर्धारित सुरक्षा उपायों और निष्पक्ष प्रक्रिया के अधीन थी। निष्क्रिय इच्छामृत्यु का संदर्भ जीवन को बनाए रखने के लिए आवश्यक उपचार पर रोक लगाने या हटा लेने को संदर्भित करता है।

जियान कौर बनाम पंजाब राज्य, 1996 के निर्णय के अनुसार अनुच्छेद 21 में 'जीवन' शब्द का वास्तविक अर्थ मानवीय गारिमामय जीवन है। यदि कोई 'मृत्यु का अधिकार' का विषय

उत्पन्न होता है तो वह स्वाभाविक रूप से "जीवन के अधिकार" अंसगत है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार "मृत्यु" "जीवन" से असंगत है।

भारतीय विधि आयोग की 196वीं रिपोर्ट में निष्क्रिय इच्छामृत्यु के पक्ष में विचार व्यक्त किए गए हैं।

- **इच्छामृत्यु के पक्ष में तर्क:**
  - यह एक नागरिक अधिकार है।
  - यह निजी स्वायत्तता का प्रश्न है।
  - यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि कोई भी व्यक्ति पीड़ादायक व्यथा से मृत्यु प्राप्त न करे।
  - इस प्रकार के कानून के प्रयोग को रोकने के लिए सुरक्षा दिशा-निर्देश दिए जा सकते हैं।
- **इच्छामृत्यु के विपक्ष में तर्क:**
  - असिस्टेड मृत्यु का प्रयोग अवैध रूप से व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है।
  - इसे औषधीय देखभाल के सस्ते विकल्प के रूप में प्रोत्साहित किए जाने की आशंका है।
  - अस्पताल की देखभाल और उचित उपचार नैतिक रूप से स्वीकार्य समाधान प्रदान करते हैं।
- इच्छामृत्यु एवं असिस्टेड सुसाइड दोनों ही नीदरलैंड, बेल्जियम एवं लक्जमबर्ग में वैध हैं, जबकि कोलंबिया में इच्छामृत्यु वैध है।

"मेडिकल ट्रीटमेंट ऑफ टर्मिनली इल पेशेंट्स बिल 2016" वस्तुतः अरुणा शानबाग निर्णय में निर्धारित प्रारूप को संहिताबद्ध करने का प्रयास करता है। इससे संबंधित कुछ चिन्ताएँ निम्नलिखित हैं:

- इसमें न्यायालय के अग्रणी निर्देशों के उचित रूप से कार्यान्वयन हेतु पर्याप्त सुरक्षा उपाय नहीं हैं।
- उच्च न्यायालय से अनुमति प्राप्त करने के प्रावधान पर भी प्रश्न खड़े किए जा रहे हैं।
- रोगियों के वर्गीकरण का न्यायिक जांच द्वारा परीक्षण संभव नहीं है।

3. सरकार, सार्वजनिक लाभों की प्राप्ति के लिए जनता के समक्ष मौलिक अधिकारों के परित्याग की शर्त नहीं रख सकती। हाल ही में आधार कार्ड से संबंधित याचिका में उठाए गए मुद्दों के संदर्भ में इस कथन पर चर्चा करें।

दृष्टिकोण :

यह प्रश्न भारत सरकार द्वारा आधार कार्ड के कार्यान्वयन का सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किये गए अवलोकन पर आधारित है। इसलिए उत्तर में निम्नलिखित बिंदु अवश्य होने चाहिए:

- आधार कार्ड के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के पिछले निर्देशों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
- इस मुद्दे से संबंधित वर्तमान विवाद का परीक्षण कीजिए।
- इसके अतिरिक्त, आधार के लाभों का उल्लेख कीजिए।
- निष्कर्ष में समाधान प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर:

कल्याणकारी योजनाओं के लिए आधार कार्ड के प्रयोग के सन्दर्भ में नागरिकों के निजता के अधिकार तथा समृद्ध एवं निर्धनों के लिए समान रूप से उनके संरक्षण पर देश में एक बहस छिड़ी हुई है।

2013 में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्देश दिया था कि आधार नहीं होने के कारण किसी व्यक्ति को सुविधा से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। वर्तमान सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय से अपने फैसले को वापस लेने का आग्रह किया क्योंकि सरकार की मंशा विविध सेवाओं के लिए आधार का प्रयोग करने की है।

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि आधार का प्रयोग PDS, केरोसीन तथा LPG वितरण के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता तथा यह भी स्पष्ट किया कि इन सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए भी आधार कार्ड अनिवार्य नहीं होगा।

आधार से संबंधित मुद्दे:

- सर्वोच्च न्यायालय के सभी निर्णयों की समीक्षा के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि गोपनीयता का अधिकार जीवन तथा स्वतंत्रता के अधिकार का अभिन्न पहलू है। इस सन्दर्भ में, सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार तथा UIDAI को रोकते हुए कहा कि वह आधार-धारक की लिखित अनुमति के बिना उनसे संबंधित जानकारी को किसी अन्य पक्ष से साझा नहीं कर सकते।
- सरकार के इस दलील को सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज़ कर दिया कि निर्धनों को सब्सिडी भुगतान तथा अन्य लाभों को प्राप्त करने के बदले अपनी गोपनीयता के अधिकार को त्यागने हेतु तैयार रहना चाहिए।
- आधार के द्वारा उठाए गए गोपनीयता के मुद्दों पर कोई व्यापक क़ानून नहीं है।
- प्रत्येक सरकार का सबसे आधारभूत दायित्व अपने नागरिकों के अधिकार को संरक्षण प्रदान करना है – चाहे वह अधिकार जीवन-यापन से जुड़ा हो तथा समान रूप से स्वतंत्रता प्रदान करने वाली गोपनीयता का।

दूसरी तरफ, आधार में सार्वजनिक सेवा वितरण व्यवस्था को पुनर्गठित करने की भारी क्षमता है। इसमें बेहतर लक्ष्य-निर्धारण, त्रुटियों को दूर करने आदि के रूप में लाभों का विशाल समूह समाहित है। आधार सरकार द्वारा प्रस्तुत ढेर सारी महत्वाकांक्षी योजनाओं यथा डीजी-लॉकर, ई-हस्ताक्षर आदि का मुख्य आधार है।

अतः पर्याप्त तथा आवश्यक सुरक्षा के साथ नागरिकों की गोपनीयता संबंधी चिंता का समाधान समय की मांग है। संसदीय अनुमति तथा कानूनी समर्थन के बगैर यह प्रक्रिया वैधानिक रूप से असमर्थनीय तथा अस्वीकार्य है।

4. **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक अधिकार है,परन्तु यह किसी भी व्यक्ति की मानहानि करने का अधिकार नहीं देता है। सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के आलोक में इस कथन पर चर्चा कीजिए।**

दृष्टिकोण:

- अधिकार के रूप में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा उस पर उचित निर्बंधनों की चर्चा कीजिए।
- सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों की सहायता से सिद्ध कीजिए कि मानहानि का अधिकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में सम्मिलित नहीं है।

उत्तर:

अनुच्छेद 19(1)(a) के तहत भारतीय संविधान द्वारा मूल अधिकार के रूप में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी प्रदान की गई है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्र रूप से अपने दृष्टिकोण, विचार, विश्वास और अवधारणा व्यक्त करने का अधिकार है।

हालांकि, यह अधिकार निरपेक्ष नहीं है। संविधान (अनुच्छेद 19(2)) ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रयोग पर मानहानि सहित कुछ उचित निर्बन्धन आरोपित किए हैं।

मानहानि, वैसी अपमानजनक सामग्री के प्रकाशन कार्य को संदर्भित करता है जो एक सामान्य व्यक्ति के दृष्टिकोण से व्यक्ति या संस्था की प्रतिष्ठा को कम करती है। ऐसा मौखिक या लिखित शब्दों या दृश्य निरूपण द्वारा किया जा सकता है।

भारत में मानहानि, दीवानी और फौज़दारी (दांडिक), दोनों प्रकृति के अपराध के तहत आता है। मानहानि एक दांडिक अपराध (criminal offence) के रूप में भारतीय दंड संहिता की धारा 499 के अंतर्गत सूचीबद्ध है।

हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत संघ वाद में आपराधिक मानहानि की संवैधानिकता को बनाए रखा। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, स्वतंत्र वाक् एवं अभिव्यक्ति के अधिकार का तात्पर्य यह नहीं है कि एक नागरिक दूसरे की मानहानि कर सकता है। इस निर्णय ने व्यक्ति की गरिमा और प्रतिष्ठा के साथ जीवन के मूल अधिकार को रेखांकित किया है।

- अनुच्छेद-21, गरिमा के साथ जीवन के अधिकार, के अंतर्गत प्रतिष्ठा का संरक्षण मूल अधिकार होने के साथ ही एक मानव अधिकार भी है।
- व्यक्ति की गरिमा और प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए मानहानि का अपराधीकरण "उचित निर्बन्धन" है।

एक अन्य वाद, **आर. राजगोपाल बनाम तमिलनाडु राज्य,** जिसे सुविदित रूप से ऑटो शंकर वाद के रूप में जाना जाता है, में सर्वोच्च न्यायालय का कहना था कि समाचार पत्र सहमति या प्राधिकार के बिना, उस हद तक लोगों की जीवन की कहानी या आत्मकथा का प्रकाशन कर सकते हैं, जहां तक वह सार्वजनिक अभिलेख से प्रकट होती है। परन्तु यदि वे सार्वजनिक अभिलेख से परे जाते हैं तब इसे प्रकाशन में नामित अधिकारियों की गोपनीयता पर हमला और मानहानि माना जाएगा, जो अस्वीकार्य है।

इन निर्णयों के अनुसार, अधिकारों के संतुलन का सिद्धांत बताता है कि भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के साथ-साथ, दूसरों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न करने का, अन्योन्याश्रयी कर्तव्य भी नागरिकों पर लागू होता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति गरिमा और प्रतिष्ठा का हकदार है।

5. विशेष अधिकार कोई विशेषाधिकार नहीं है, लेकिन इन्हें अल्पसंख्यकों को अपनी पहचान, संस्कृति और परंपराओं को बनाए रखने के लिए प्रदान किया गया है। उदाहरण के साथ भारत के संदर्भ में विस्तृत व्याख्या कीजिए।

दृष्टिकोण:

- अल्पसंख्यकों को विशेष अधिकार प्रदान किये जाने की आवश्यकता पर चर्चा कीजिए।
- भारत के संदर्भ में अल्पसंख्यकों को प्रदत्त विशेष अधिकारों पर चर्चा कीजिए (जैसे अल्पसंख्यकों के लिए संवैधानिक सुरक्षा)।
- भारत में अल्पसंख्यकों के संरक्षण में योगदान देने वाली सरकारी नीतियों / संस्थानों का उदाहरण दीजिए।

उत्तर:

लोकतांत्रिक व्यवस्था में, सदैव बहुसंख्यक वर्चस्व की प्रवृत्ति होती है। विधि के शासन पर आधारित राजव्यवस्था का तात्पर्य, नागरिकों के प्रत्येक समूह को, विशेषकर अल्पसंख्यकों को अपनी पहचान और संस्कृति बनाए रखने के संबंध में पर्याप्त सुरक्षा प्रदान किया जाना है। अल्पसंख्यकों को प्रदत्त विशेष अधिकार यही सुनिश्चित करते हैं। अल्पसंख्यकों को प्रदत्त अधिकारों का अर्थ उन्हें कोई राजनैतिक विशेषाधिकार प्रदान करना नहीं है। इसकी पृष्ठभूमि में यह विचार निहित नहीं है कि अल्पसंख्यकों को जनसंख्या का विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग

माना जाए, अपितु इसका उद्देश्य उनमें सुरक्षा की भावना उत्पन्न करना है। संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र में भी इन अधिकारों का वर्णन किया गया है। अतः ये अधिकार सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किए जाते हैं। इन अधिकारों का संबंध राष्ट्रीय या नृजातीय, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों से है।

भारत के संविधान के अंतर्गत अल्पसंख्यकों के लिए विभिन्न रक्षोपाय निम्नलिखित मूल अधिकारों के माध्यम से प्रदान किए गए हैं:

- अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण प्रदान करता है। इस प्रकार अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों की तुलना में विधिक रूप से हीन स्थिति में नहीं रखा जा सकता है।
- अनुच्छेद 15 और 16 कुछ आधारों (धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग या जन्म स्थान) पर भेदभाव का निषेध करते हैं।
- अनुच्छेद 29 स्पष्ट रूप से विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति वाले नागरिकों के प्रत्येक समूह को उनका संरक्षण करने का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 30 धार्मिक / भाषाई अल्पसंख्यकों को शैक्षिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त, निम्नलिखित अनुच्छेद विशेष रूप से भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित हैं:

- अनुच्छेद 347 में प्रदत्त प्रावधानों के अनुसार, यदि किसी राज्य की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से की इच्छा हो तो राष्ट्रपति के निर्देश पर उस भाषा को राज्य की आधिकारिक भाषा के रूप में सम्मिलित किया जा सकता है।
- अनुच्छेद 350 के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयुक्त किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।
- अनुच्छेद 350A में प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा के लिए सुविधाओं का प्रावधान किया गया है।
- अनुच्छेद 350B में भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी का प्रावधान किया गया है।

अल्पसंख्यक अधिकारों के संरक्षण के उदाहरण

- राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों के लिए राष्ट्रीय आयोग और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास वित्त निगम (NMDFC) का प्रावधान किया गया है।
- शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर अल्पसंख्यकों को मातृभाषा में शिक्षा की उपलब्धता।
- त्रिभाषा सूत्र का कार्यान्वयन किया जाना।
- अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए प्रधानमंत्री का नया 15 सूत्रीय कार्यक्रम।
- नई मंजिल, USTAAD, हमारी धरोहर, जियो पारसी, अल्पसंख्यक छात्रों के लिए मौलाना आजाद राष्ट्रीय फेलोशिप, नालंदा परियोजना आदि जैसी विकास संबंधी योजनाएं।
- स्थानीय भाषाओं में सूचना का प्रचार-प्रसार किया जाना।

ये प्रावधान अल्पसंख्यकों को कोई विशेषाधिकार नहीं प्रदान करते हैं। ये सुनिश्चित करते हैं कि सत्ताधारी पक्ष की विचारधारा के कारण उनकी प्रगति अवरुद्ध न हो। ये अधिकार उनकी विशेष स्थिति के साथ-साथ लोकतंत्र की संभावित चुनौतियों की भी पहचान करते हैं। समावेशी वृद्धि और विकास सुनिश्चित करने के लिए इनका कार्यान्वयन राज्य का संवैधानिक / सांविधिक उत्तरदायित्व है।

6. जब तक आलोचनाएं "न्याय के प्रशासन" में बाधा न डालें, न्यायपालिका के संबंध में आलोचनाओं का स्वागत किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में चर्चा कीजिए कि क्या उच्चतर न्यायपालिका को दी गई न्यायालय की अवमानना की शक्ति अनुच्छेद 19(1) (a) के तहत प्रदत्त स्वतंत्रता को सीमित करती है और क्या इन दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है?

दृष्टिकोण:

- शुरुआत में संक्षिप्त रूप से कथन में निहित मुख्य विषय को स्पष्ट कीजिये एवं अवमानना की शक्ति और वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में दिए गए तर्कों के साथ इसका संबंध स्थापित कीजिए।
- न्यायपालिका को प्रदान की गयी अवमानना शक्ति की आवश्यकता पर चर्चा कीजिए।
- न्यायपालिका को प्रदत्त अवमानना शक्ति का भाषण की स्वतंत्रता पर क्या प्रभाव पड़ता है ? चर्चा कीजिए।
- इन दोनों के बीच कैसे सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है? चर्चा कीजिए।

उत्तर:

न्याय के प्रशासन हेतु न्यायपालिका को मजबूत रक्षोपायों की आवश्यकता होती है।

- भारत के संविधान के अनुच्छेद 129 और 215 के प्रावधानों के अनुरूप क्रमशः सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को अपनी अवमानना के लिए लोगों को दंडित करने की शक्ति प्राप्त है।

न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 न्यायपालिका की अवमानना शक्तियों का वर्णन करता है:

- किसी भी न्यायालय के प्राधिकार को सीमित करने अथवा उसकी प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाने से रोकने के लिए।
- निर्धारित न्यायिक प्रक्रिया में किसी भी हस्तक्षेप को रोकने के लिए।
- विधिक प्राधिकरण के रूप में न्यायालय की छवि को सशक्त करने के लिए तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी कानून से ऊपर नहीं है।
- यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी अपनी स्वतंत्र इच्छानुसार न्यायालय के आदेशों की अवहेलना नहीं कर सके।

जहां अनुच्छेद 19 1(a) में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे अधिकार प्रदान किये गए हैं। वहीं अनुच्छेद 19 (2) के अंतर्गत प्रतिपादित प्रतिबंधो के संदर्भ में न्यायालय की अवमानना शक्ति को महत्वपूर्ण आधार प्राप्त होता है।

आलोचकों का मानना है कि:

- न्यायपालिका के प्राधिकार को सीमित करना या प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाने के आधार पर न्यायपालिका ने नियमित रूप से असहमत अभिव्यक्तियों को दंडित करने के लिए अपनी अवमानना शक्तियों का उपयोग किया है ।
- ऐसे भाषण और अभिव्यक्तियां जो अनिवार्य रूप से न्याय के वास्तविक प्रशासन में बाधक नहीं रही हैं,उन्हें भी न्यायपालिका की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचने के आधार पर दंडित किया गया है।

अनुच्छेद 19 (1)(a) के अंतर्गत दिए गए अधिकार महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे:

- नागरिकों को अपनी राय व्यक्त करने में समर्थ बनाते हैं जो कुशल सार्वजनिक नीतियों के लिए आवश्यक है।
- गुणवत्ता पूर्ण जीवन सुनिश्चित करने के लिए स्वयं में यह महत्वपूर्ण हैं। संविधान के अनुच्छेद 21 में भी ये अधिकार निहित हैं।

इस प्रकार, भाषण की स्वतंत्रता और न्यायालयों की अवमानना शक्ति के बीच सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इसे सुनिश्चित किया जा सकता है:

- न्यायपालिका ने स्वयं ही अवमानना की शक्ति के संयमित प्रयोग के संबंध में दिशा-निर्देश निर्धारित किये हैं जिनके अनुसार स्वतंत्र आलोचना के अधिकार और न्यायपालिका की गरिमा के बीच समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए, उदाहरण के लिए, मुल्गांवकर वाद 1978। साथ ही, राम दयाल मर्करहर बनाम मध्य प्रदेश 1978; कन्साइंटियस समूह बनाम मोहम्मद यूनुस 1987; P.N. डुडा बनाम P. शिव शंकर 1988; संजय नारायण, हिंदुस्तान टाइम्स बनाम उच्च न्यायालय इलाहाबाद 2011 जैसे प्रकरणों में की गयी टिप्पणियां भी इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं।
- न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 में 2006 में किये गये संशोधन के अनुसार " किसी भी अवमानना की कार्यवाही में वैध बचाव हेतु में न्यायालय ' सत्य के आधार पर औचित्य की सिद्धि (justification by truth)' की अनुमति दे सकता है यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि इस संबंध में बचाव पक्ष की ओर से किया गया आग्रह प्रमाणिक तथा सार्वजनिक हित में है।"

अंतर्राष्ट्रीय मानक और अन्य लोकतंत्रों के कानूनों से प्रेरणा ग्रहण की जा सकती है तथा इसके माध्यम से उपयुक्त मानदंडो का निर्धारण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, आस्ट्रिया, इटली जैसे यूरोपीय लोकतंत्रों में न्यायालय की अवमानना का उल्लंघन करने पर सजा देने के लिए कोई भी कानून नहीं है। U.K. में, न्यायालय की अवमानना शक्ति ख़त्म की जा चुकी है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, प्रेस और प्रकाशन के विरूद्ध अवमानना की शक्ति का उपयोग तभी किया जाता है, यदि लंबित वाद के वास्तव में प्रभावित होने की आशंका हो।

7. उत्तरदायित्व का सिद्धांत विधि के शासन का एक अनिवार्य अंग है। इस संदर्भ में,भारत में न्यायेतर हत्या की घटनाओं के प्रति सरकार के दृष्टिकोण एवं न्यायपालिका की प्रतिक्रिया में विद्यमान कमियों पर चर्चा कीजिए।

दृष्टिकोण:

- दिए गए कथन के अर्थ की व्याख्या करते हुए बताइए कि उत्तरदायित्व और विधि के शासन के बीच क्या संबंध है।
- न्यायेतर हत्याओं के संदर्भ में, सरकार के दृष्टिकोण की कमियों पर चर्चा कीजिए।
- स्थिति को सुधारने के लिए न्यायपालिका द्वारा दिए गए और अपनाए गए सुझावों पर चर्चा कीजिए।

उत्तर:

विधि का शासन एक प्रशासनिक सिद्धांत है, जिसमें राज्य सहित अन्य संस्थाएं सार्वजनिक रूप से प्रख्यापित, समान रूप से लागू और स्वतंत्र रूप से निर्णीत कानूनों के प्रति उत्तरदायी हैं। उत्तरदायित्व का सिद्धांत विधि के शासन का एक अनिवार्य अंग है।

न्यायेतर हत्याएं

न्यायेतर हत्या, विधि की मंजूरी के बिना, सरकारी अधिकारियों द्वारा किसी व्यक्ति की हत्या है। भारत में पुलिस और सशस्त्र बलों द्वारा की गयी न्यायिक हत्याओं के आरोप तथा उदाहरण सामने आए हैं।

इससे भारत में न्यायेतर हत्याओं को नियंत्रित करने के सम्बन्ध में गंभीर चिंता जताई गई है, जिसमें सरकार के तरीकों में निम्नलिखित लापरवाही शामिल है:

- ऐसी शिकायतों की जांच के लिए एक स्वतंत्र निकाय की अनुपस्थिति के कारण न्यायेतर हत्याओं की समुचित रूप से जांच नहीं हो पाई है।
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) द्वारा उल्लिखित दिशानिर्देशों को सरकार द्वारा प्रायः पूर्ण रूप से कार्यान्वित न किए जाने के कारण NHRC की सफलता सीमित रह गई है।
- यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन अगेंस्ट टार्चर तथा इंटरनेशनल कन्वेंशन फॉर द प्रोटेक्शन ऑफ़ आल पर्सन्स फ्रॉम एनफोर्स्ड डिसैपियरेन्स (International Convention for the Protection of All Persons from Enforced Disappearances) को अंगीकृत करने में सरकार की विफलता।
- न्यायेतर हत्याओं के शिकार लोगों के परिवारों के लिए पर्याप्त मुआवजा प्रणाली का अभाव।
- सशस्त्र बलों में आंतरिक अनुशासनात्मक सुनवाई में दोषसिद्धि की निम्न दर और पारदर्शिता की कमी। न्यायिक विलंब के कारण भी दोषसिद्धि कई बार कठिन हो जाती है।
- आर्म्ड फोर्सेज (स्पेशल पॉवर्स) एक्ट [AFSPA] के कारण भी राष्ट्रीय हित में सरकारी अधिकारियों के उत्तरदायित्व कुछ कम हो जाते हैं ।

न्यायपालिका की प्रतिक्रिया

- आर. एस. सोढी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, 1992: इस मामलें में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि प्रत्येक पुलिस मुठभेड़ की जांच होनी चाहिए।
- 2014 में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायेतर हत्याओं की जांच के लिए विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किए:
    - CID या एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी की देखरेख में एक अन्य पुलिस स्टेशन की टीम द्वारा मुठभेड़ों की स्वतंत्र जांच हो।
    - जांच रिपोर्ट को संबंधित न्यायालय में अग्रेषित किया जाना चाहिए, ताकि अदालती जांच कर अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जा सके।
    - घटना के तुरंत बाद संबंधित अधिकारियों को कोई पदोन्नति या तत्काल वीरता पुरस्कार नहीं दिया जाएगा।
    - यदि किसी पुलिस अधिकारियों के खिलाफ कोई चार्जशीट दायर की जाती है, तो उस अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई आरंभ करने और उसे निलंबित करने के साथ उनकी सुनवाई को भी शीघ्र ही पूरा किया जाना चाहिए।
    - यदि अधिकारी उच्चतम न्यायालय के निर्देशों का पालन करने में विफल रहते हैं, तो पीड़ितों के रिश्तेदार सत्र न्यायालय में भी जा सकते हैं।

हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने जनहित याचिका के आधार पर मणिपुर में संदिग्ध न्यायेतर हत्याओं के मामलों की CBI जांच का आदेश दिया था। इसी तरह, न्यायालय ने पिछले वर्ष यह निर्णय दिया था कि सेना को जिन क्षेत्रों में AFSPA के अंतर्गत विशेष शक्तियां प्राप्त हैं, उन क्षेत्रों में भी अत्याचार की शिकायत पर सेना जांच से बच नहीं सकती है। न्यायालय ने केंद्र को संबोधित करते हुए उसे भी मानवाधिकार आयोग की चिंताओं को ध्यान में रखकर स्थिति का समाधान करने के निर्देश दिए हैं। ऐसा करके न्यायालय ने इस बात को ही दोहराया है कि उत्तरदायित्व का सिद्धांत विधि के शासन का एक अनिवार्य अंग है।

12. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions)

1. In many democratic countries radio and television are not under the control of the state. Do you think that the same policy should be adopted in India? Mention briefly the points in favour of and against such a step. (Not more than 200 words) (80/I/14/25)

   कई लोकतांत्रिक देशों में रेडियो और टेलीविजन राज्य के नियंत्रणाधीन नहीं हैं। क्या आप मानते हैं कि भारत में भी यही नीति अपनाई जानी चाहिए?इस प्रकार के कदम के पक्ष और विपक्ष में अपना विचार संक्षिप्त रूप में प्रकट कीजिए।

2. The Press in India is free to publish any news and views except those, which are objectionable from the point of view of the security of state, friendly relations with Foreign States etc. What steps have been taken recently by Government to prevent monopoly of the management of the newspaper, to encourage the growth of small newspapers and to prevent the exploitation of working journalists and other employees of Indian newspapers? (Not more than 150 words) (81/I/6/25)

   भारत में प्रेस किसी भी समाचार और मत को प्रकाशित करने के लिए स्वतंत्र है, सिवाय उनके जो राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों आदि के दृष्टिकोण से आपत्तिजनक हैं। हाल ही में सरकार ने समाचार पत्रों के प्रबंधन में एकाधिकार को रोकने, छोटे समाचार पत्रों का विकास प्रोत्साहित करने और भारतीय समाचार पत्रों के कार्यशील पत्रकारों और अन्य कर्मचारियों का शोषण रोकने हेतु क्या कदम उठाए हैं?

3. Bring out the significance of the Fundamental rights provided in the Constitution of India. The right to acquire, hold and dispose of property has ceased to be a fundamental right. Examine the purpose of the change involved. (in about 150 words) (81/II/4a/20)

   भारत के संविधान में प्रदत्त मूल अधिकारों का महत्व बताइए। संपत्ति अधिग्रहीत करने, धारण करने और विक्रय का अधिकार, अब मूल अधिकार नहीं है। इस परिवर्तन के अंतर्निहित उद्देश्य का परीक्षण कीजिए। (लगभग 150 शब्दों में) (81/II/4a/20)

4. Why has there been reservation of seats for Scheduled Castes and Tribes in the legislatures and in public services? Has the purpose been achieved? Indicate recent developments. (in about 150 words) (81/II/4b/20)

   अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए विधायिकाओं और सार्वजनिक सेवाओं में सीटों का आरक्षण क्यों किया गया है? क्या इनका उद्देश्य फलीभूत हुआ है? हाल के घटनाक्रम को इंगित करें।

5. Differentiate between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy. Do you think that the latter have been adequately implemented? Give reasons for your views (in about 150 words) (82/II/5c/20)

   मूल अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के बीच अंतर कीजिए। क्या आप मानते हैं कि राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को पर्याप्त रूप से कार्यान्वित किया गया है? अपने विचार के समर्थन में कारणों का उल्लेख कीजिए।

6. Consider the recommendations of the Mandal Commission and offer your comments, referring to the situations obtaining in the country. (in about 150 words). (83/II/4c/20)

मंडल आयोग की अनुशंसाओं पर विचार कीजिए और देश में विद्यमान परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए टिप्पणी कीजिए।

7. What is meant by Habeas Corpus? What is the purpose of a writ of Habeas Corpus? (83/II/8a(B)/2)

बंदी प्रत्यक्षीकरण से क्या आशय है? बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का क्या उद्देश्य है?

8. What is the present status of the Right to Property? (84/II/8a(B)/3)

संपत्ति के अधिकार की वर्तमान स्थिति क्या है?

9. What is dealt with in Articles 25 of Indian Constitution? What was the controversy about it recently? (Not more than 100 words) (84/I/9a/20)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 में किस संबंध में चर्चा की गई है? हाल ही में इसके विषय विवाद क्या था?

10. What are the main causes of anti-reservation stir in Gujarat? What are the provisions in our Constitution regarding reservation? Do your consider the policy of reservation justified? (About 200 words) (85/I/11/35)

गुजरात में आरक्षण विरोधी आंदोलन के पीछे मुख्य कारण क्या हैं? आरक्षण के संबंध में हमारे संविधान में क्या प्रावधान हैं? क्या आप आरक्षण की नीति को उचित मानते हैं?

11. What to you understand by "preventive detention"? (86/II/8f(B)/3)

"निवारक निरोध" से आप क्या समझते हैं?

12. Discuss the importance of Article 32 of the Indian Constitution. (in about 150 words) (87/II/4c/20)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के महत्व की विवेचना कीजिए।

13. Define the writ of Certiorari. (87/II/8a(B)/3)

उत्प्रेषण रिट को परिभाषित कीजिए।

14. What to you understand by 'positive discrimination'? (87/II/8b(B)/3)

'सकारात्मक विभेद' से आप क्या समझते हैं?

15. Explain the concept of Minorities in the India Constitution and mention the safeguards provided therein for their protection. (150 words) (88/II/4b/20)

भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों की संकल्पना की व्याख्या कीजिए और इसमें उनके संरक्षण हेतु प्रदत्त रक्षोपायों का उल्लेख कीजिए।

16. What the "reasonable restrictions" mentioned in the Indian Constitution accompanying the fundamental rights? (in about 150 words) (90/II/4d/20)

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के साथ-साथ उल्लिखित "युक्तियुक्त निर्बन्धन" क्या हैं?

17. Explain the significance of Prasar Bharati Corporation in the context of Modern mass media. (90/II/8a(B)/3)
आधुनिक जनसंचार माध्यमों के संदर्भ में प्रसार भारती निगम का महत्व स्पष्ट कीजिए।

18. Define writ of Mandamus. Explain its importance. (90/II/8e(B)/3)
परमादेश रिट को परिभाषित कीजिए। इसका महत्व स्पष्ट कीजिए। (90/II/8e(B)/3)

19. Discuss the secular nature of Indian polity and the position of minorities in India. (in 150 words) (91/II/4c/20)
भारतीय राज्य व्यवस्था की धर्मनिरपेक्ष प्रकृति और भारत में अल्पसंख्यकों की स्थिति की विवेचना कीजिए।

20. The writ of Mandamus will not be granted against certain persons. Who are they? (92/II/4c/20)
परमादेश की रिट कुछ व्यक्तियों के विरुद्ध नहीं स्वीकृत होगी। वे कौन हैं?

21. Distinguish between preventive detention and punitive detention. (93/II/8a(B)/3)
निवारक निरोध और दंडात्मक निरोध के बीच क्या अंतर है।

22. When and why was the National Literacy Mission founded? (93/II/8c(B)/3)
राष्ट्रीय साक्षरता मिशन कब और क्यों आरंभ किया गया था?

23. What is meant by 'equal protection of law'? (93/II/8d(B)/3)
'विधि का समान संरक्षण' से क्या अभिप्राय है?

24. What is the purpose of Article 24 of the Constitution of India? (93/II/8f(B)/3)
भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 के क्या उद्देश्य हैं?

25. Difference between the 'due process of law' and 'the procedure established by law' in the context of deprivation of personal liberty in India. (94/II/8a(B)/3)
भारत में निजी स्वतंत्रता के वंचित होने के संदर्भ में 'विधि की सम्यक प्रक्रिया' और 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के बीच क्या अंतर है।

26. Explain the meaning of ex post-facto legislation (94/II/8b(B)/3)
भूतलक्षी प्रभाव विधि का अर्थ समझाइए।

27. Indicate the provisions of Indian Constitution relating to Secularism. (94/II/8e(B)/3)
धर्मनिरपेक्षता से संबंधित भारतीय संविधान के प्रावधानों पर प्रकाश डालिए।

28. What are the constitutional rights of the citizens of India? What do you think about the demand of the NRI's for dual citizenship? (150 words) (95/II/4c/20)
भारत के नागरिकों के क्या संवैधानिक अधिकार हैं? NRI की दोहरी नागरिकता की माँग के संबंध में आपके क्या विचार हैं?

29. What is the present status of the right to property as a Fundamental Right? (95/II/8b(B)/3)
मूल अधिकार के रूप में संपत्ति के अधिकार की वर्तमान स्थिति क्या है?

30. Why is Article 32 considered as the cornerstone of the Constitution? (95/II/8c(B)/3)

अनुच्छेद 32 को संविधान की आधारशिला क्यों माना जाता है?

31. The writ of Mandamus cannot be granted against certain persons. Who are they? (96/II/8c(B)/3)

कुछ पदाधिकारियों के विरूद्ध 'परमादेश' जारी नहीं किया जा सकता। ये पदाधिकारी कौन हैं?

32. What are the provisions regarding the protection of Linguistic minorities in the Constitution? (in about 75 words) (97/I/3d/10)

संविधान में भाषाई अल्पसंख्यकों के संरक्षण के संबंध में क्या प्रावधान हैं?

33. What is Social Justice? How can reservation of seats for women in Parliament contribute to the establishment of a socially just society in India? (97/II/1b/40)

सामाजिक न्याय क्या है? संसद में महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण किस प्रकार भारत में सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण समाज की स्थापना में योगदान दे सकता है?

34. What, according to the Supreme Court, Constituted 'The Basic Features' which it upheld in case known as

(i) Keshavanand Bharati v/s. State of Kerala (1973)

(ii) Minerva Mills v/s. Union of India (1990)? (in about 150 words) (97/II/4c/20)

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'आधारभूत विशेषताओं' में किन्हें सम्मिलित किया गया हैं जिन्हें निम्न वादों में अवधारित किया गया था:

(i) केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)

(ii) मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1990)?

35. What specific provisions exist in the Constitution of India about child labour? (97/II/8e(B)/3)

बाल श्रम के संबंध में भारत के संविधान में क्या विशिष्ट प्रावधान निहित हैं?

36. What are the circumstances leading to the promulgation of Prasar Bharti Ordinance in August 1998? (in about 50 words) (98/I/7a/6)

अगस्त,1998 में प्रसार भारती अध्यादेश जारी करने हेतु उत्तरदायी स्थितियाँ क्या थीं?

37. State the amplitude of Article 21 of the Constitution. (98/II/8c(B)/3)

संविधान के अनुच्छेद 21 का विस्तार बताइए।

38. On what grounds does Article 15 of the Indian Constitution prohibit discrimination? Indicate the way the concept of 'Special protection' has qualified this prohibition, and contributed to social change. (in about 250 words) (99/II/1b/40)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 द्वारा किन आधारों पर भेदभाव निषिद्ध है? इंगित कीजिए कि किस प्रकार से 'विशेष संरक्षण' के प्रत्यय ने इस निषिद्ध भेदभाव को मर्यादित किया है और सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा दिया दिया है।

39. What is the status of the right to Property in the Indian Constitution? (in about 25 words) (99/II/9e/3)

भारतीय संविधान में संपत्ति के अधिकार की स्थिति क्या है?

40. Discuss the constitutional provisions regarding the rights of children. (in about 150 words) (01/I/8c/15)

बालकों के अधिकारों के संबंध में संवैधानिक प्रावधानों की विवेचना कीजिए।

41. Discuss how the Constitution of India provides equal rights. (in about 250 words) (04/I/7a/30)

चर्चा कीजिए कि भारत का संविधान किस प्रकार समान अधिकार प्रदान करता है।

42. What is Habeas Corpus? (20 words) (04/I/9a/2)

बंदी प्रत्यक्षीकरण क्या होता है?

43. What is the special facility provided to the linguistic minorities under Article 350 A? (04/I/9c/10)

अनुच्छेद 350A के अधीन भाषाई अल्पसंख्यकों को कौन-सी विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई हैं?

44. Give your views on the right to freedom of religion as enshrined in the Indian Constitution. Do they make India a secular State (250 words) (05/I/7b/30)

भारतीय संविधान में प्रतिष्ठापित धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार पर अपने विचार प्रकट कीजिए। क्या यह अधिकार भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाता है?

45. What are the constitutional limitations on the free movements of Indians throughout the country? (150 words) (05/I/8a/15)

भारतीयों की समस्त देश में निर्बाध आवाजाही पर कौन-सी संवैधानिक सीमाएँ हैं?

46. What is the meant by 'double jeopardy'? (20 words) (05/I/9a/2)

'दोहरे जोखिम ' का क्या अर्थ है?

47. What is right to life and personal liberty? How have the courts expanded its meaning in recent years ? (in 250 words) (06/I/6a/30)

जीवन और वैयक्तिक स्वतंत्रता का अधिकार क्या होता है ? हाल के वर्षों में न्यायालयों ने इसके अर्थ का किस प्रकार विस्तार किया है ?

48. Bring out the difference between the Fundamental Rights and the Directive Principles of State Policy. Discuss some of the measures taken by the Union and State Governments for the implementation of the Directive Principles of State Policy. (250 words) (07/I/6b/30)

मूल अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए। राज्य के नीति के निदेशक तत्वों के कार्यान्वयन के लिए संघ और राज्य सरकारों द्वारा उठाए गए उपायों में से कुछ की चर्चा कीजिए।

49. What is the importance of Right to Constitutional Remedies? (07/I/9e/2)

संवैधानिक उपचारों के अधिकार का क्या महत्व है?

50. 'As we live in a plural society we need the greatest freedom to express our opinions even if others find it offensive' – Do you agree? Discuss with reference to some recent incidents in the Indian context. (09/I/9c/15)

चूंकि हम अनेकतावादी समाज में रहते हैं हमें अपने मतों को अभिव्यक्त करने की अधिकतम स्वतंत्रता की आवश्यकता है, भले ही वे अन्यों को अप्रिय लगे' - क्या आप इस बात से सहमत हैं? भारत के संदर्भ में हाल की कुछ घटनाओं का उल्लेख करते हुए इस पर चर्चा कीजिए।

51. Discuss Section 66A of IT Act, with reference to its alleged violation of Article 19 of the Constitution. (2013)

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66A की इससे कथित संविधान के अनुच्छेद 19 के कथित उल्लंघन के संदर्भ में विवेचना कीजिए।

52. What do you understand by the concept "freedom of speech and expression"? Does it cover hate speech also? Why do the films in India stand on a slightly different plane from other forms of expression? Discuss. (2014)

आप "वाक् एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य" की संकल्पना से क्या समझते हैं? क्या इसकी परिधि में घृणा वाक् भी आता है? भारत में फिल्में अभिव्यक्ति के अन्य रूपों से तनिक भिन्न स्तर पर क्यों हैं? चर्चा कीजिए। (2014)

53. Khap Panchayats have been in the news for functioning as extra-constitutional authorities, often delivering pronouncements amounting to human rights violations. Discuss critically the actions taken by the legislative, executive and the judiciary to set the things right in this regard. (2015)

खाप पंचायतें संविधनेतर प्राधिकरणों के तौर पर प्रकार्य करने, अक्सर मानावधिकार उलंघनों की कोटि में आने वाले निर्णयों को देने के कारण खबरों में बन रही हैं। इस संबंध में स्थिति को ठीक करने के लिए विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका द्वारा की गई कार्रवाइयों पर समालोचनात्मक चर्चा कीजिए।

54. Examine the scope of Fundamental Rights in the light of the latest judgement of the Supreme Court on Right to Privacy. (2017)

निजता के अधिकार पर उच्चतम न्यायालय के नवीनतम निर्णय के आलोक में, मौलिक अधिकारों के विस्तार का परिक्षण कीजिए।

मूल कर्त्तव्य

विषय सूची

1. मूल कर्त्तव्य: एक विचार 238

1.1. सरदार स्वर्ण सिंह समिति 238

1.2. मूल कर्त्तव्यों का संक्षिप्त विवरण 239

1.2.1. अनुच्छेद 51(A)(a): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह - संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे। 239

1.2.2. अनुच्छेद 51(A)(b): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे। 239

1.3. मूल कर्त्तव्यों को सम्मिलित करने के उद्देश्य 242

1.4. मूल कर्त्तव्यों की विशेषताएँ 243

1.5. मूल कर्त्तव्यों, नीति निदेशक तत्त्वों और मूल अधिकारों के मध्य सम्बन्ध 243

1.6. विभिन्न समितियाँ और न्यायिक निर्वचन 243

1.7. मूल कर्त्तव्य हेतु नवीन संदर्भ 244

1.8. आलोचना 244

1.9. प्रासंगिकता 245

1.10. मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी बनाने हेतु कुछ सुझाव 245

2. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions) 245

3. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions) 247
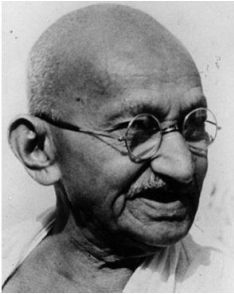
"The True Source of Rights is Duty."

"कर्त्तव्य ही अधिकारों का मूल स्रोत है।"

1. मूल कर्त्तव्य: एक विचार

- मूल भारतीय संविधान में नागरिकों के कर्त्तव्यों से संबंधित भाग को सम्मिलित नहीं किया गया था। **42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976** द्वारा संविधान में एक नया भाग IV-A जोड़ा गया। इसके द्वारा अनुच्छेद 51 के तहत अनुच्छेद 51(A) जोड़ते हुए 10 मूल कर्त्तव्यों को शामिल किया गया। 11वें मूल कर्त्तव्य को 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोड़ा गया था। इन्हें नागरिकों के नैतिक दायित्वों के रूप में परिभाषित किया गया है।
- इनकी प्रेरणा भूतपूर्व सोवियत संघ के संविधान से ग्रहण की गयी है। मूल कर्त्तव्यों से संबंधित प्रावधानों को विश्व के अन्य प्रमुख लोकतांत्रिक देशों, जैसे- अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रेलिया आदि में नहीं अपनाया गया है। हालाँकि, भारतीय संविधान में इन्हें अपनाए जाने के कारणों में भारतीय सांस्कृतिक एवं भौगोलिक विविधता और देश की एकता एवं अखंडता की सुरक्षा के लिए सक्रिय नागरिक सहभागिता की आवश्यकता के साथ ही युद्ध से उभरी परिस्थितियों में भारतीय सुरक्षा व्यवस्था की सुदृढ़ता जैसे कारक प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे।
- जहां निदेशक तत्व राज्य के लिए निर्देशित हैं, वहीं मूल कर्त्तव्यों को नागरिकों के लिए निर्देशित किया गया है। मूल अधिकारों का लाभ उठाने वाले नागरिकों को संविधान के आदर्शों का सम्मान करना चाहिए और सद्भाव एवं भ्रातृत्व की भावना को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- मूल कर्त्तव्य गैर-न्यायोचित हैं। इसका अर्थ है कि नागरिकों को उनका पालन करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। हालांकि, इनमें से कुछ प्रवर्तनीय कानून के भाग हैं। उदाहरण के लिए- राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 इत्यादि।

1.1. सरदार स्वर्ण सिंह समिति

- देश में आपातकाल लागू किए जाने के तुरंत पश्चात् प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा **सरदार स्वर्ण सिंह समिति** गठित की गयी। इस समिति का उद्देश्य अतीत के अनुभवों के आलोक में संविधान संशोधन से संबंधित प्रश्नों का अध्ययन करना और संशोधनों की सिफारिश करना था।
- सरदार स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों के आधार पर ही 42वें संशोधन अधिनियम,1976 पारित किया गया, जिसे **"लघु संविधान"** भी कहा जाता है। इसके तहत, विभिन्न अनुच्छेदों और यहाँ तक कि उद्देशिका में भी संशोधन किया गया।
- **सरदार स्वर्ण सिंह समिति द्वारा 8 मूल कर्त्तव्यों** को जोड़े जाने और इनका अनुपालन न किये जाने पर दंड के प्रावधान की सिफारिश की गयी थी।

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

(a) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(b) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(c) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(d) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;
(e) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है;
(f) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;
(g) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;
(h) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;
(i) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;
(j) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले; और
(k) माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष बीच की आयु के, यथास्थिति, बच्चे या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करेगा।

1.2. मूल कर्त्तव्यों का संक्षिप्त विवरण

1.2.1. अनुच्छेद 51(A)(a): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह - संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

विवरण

(i) संविधान की उद्देशिका में निम्नलिखित आदर्शों का वर्णन किया गया है जिनका पालन करने एवं अपनाने की नागरिकों से अपेक्षा की गई है:

- सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय;**
- विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता**;
- प्रतिष्ठा और अवसर की **समता;** और
- सभी व्यक्तियों की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली **बंधुता का विकास** करना।

(ii) संविधान की संस्थाओं के अंतर्गत, मुख्यतः कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका सम्मिलित हैं।

(iii) यदि किसी नागरिक की समस्या की सुनवाई इन संस्थाओं द्वारा नहीं किया जाता है तो इसके लिए उसे 'विद्रोह, हड़ताल एवं हिंसा' का मार्ग अपनाने के बजाय कानूनी एवं संवैधानिक मार्ग को अपनाना चाहिए तथा साथ ही, इन संस्थाओं का सम्मान भी करना चाहिए।

1.2.2. अनुच्छेद 51(A)(b): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह- स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

विवरणः

(i) भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले कुछ उच्च आदर्श निम्नलिखित हैं:

- विदेशी शासन से मुक्ति एवं एक ऐसी स्वशासन व्यवस्था की स्थापना करना जो ऐसे समाज का निर्माण कर सके जहाँ व्यक्ति, व्यक्ति का शोषण न करे तथा जहाँ निर्धनता, भुखमरी, अशिक्षा के लिए कोई स्थान न हो।

- उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति तभी संभव है जब सभी नागरिकों को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर मिल सके।
- इस प्रकार के पूर्ण विकास हेतु व्यक्तित्व-निर्माण करने वाली शिक्षा की आवश्यकता होगी।
- इसके लिए, प्रत्येक व्यक्ति को, राष्ट्रहित को व्यक्तिगत हितों से ऊपर रखना होगा।
- कुछ अन्य आदर्शों में समतापूर्ण समाज का निर्माण, अहिंसा, भाईचारा, विश्व शांति एवं स्वयं अनुच्छेद 51(A) में उल्लिखित प्रावधान यथा महिलाओं का सम्मान करना, भारत की सामासिक संस्कृति की रक्षा करना, लोगों में वैज्ञानिक मनोवृत्ति एवं मानववाद का विकास करना आदि शामिल हैं।

अनुच्छेद 51(A)(c): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे तथा उसे अक्षुण्ण बनाए रखे।

विवरण:

(i) एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में संप्रभुता, जनता में ही निहित होती है। अतः नागरिकों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे भारत की संप्रभुता, एकता एवं अखंडता की किसी भी स्थिति में रक्षा करें।

(ii) व्यवहारिक रूप में, भारत की संप्रभुता, एकता एवं अखंडता की रक्षा हेतु भारतीय दंड संहिता (IPC) और दंड का प्रावधान किया गया है।

अनुच्छेद 51(A)(d): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

देश की रक्षा करे और आह्वान किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।

विवरण

(i) आधुनिक राष्ट्र-राज्य की संकल्पना में यह निहित है कि प्रत्येक नागरिक युद्ध या बाह्य आक्रमण की स्थिति में अपने देश की रक्षा करने के कर्त्तव्य से बंधा है।

(ii) यहाँ **'आह्वान किये जाने'** का अर्थ तीनों सेनाओं के अतिरिक्त आम नागरिकों से है जिनकी आवश्यकता 'राष्ट्रीय सेवाओं' के लिए हो सकती है।

(iii) इसको ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 23(2) में राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि धर्म, मूलवंश, जाति, वर्ग या इनमें से किसी भी आधार पर विभेद किए बगैर वह नागरिकों से 'सार्वजनिक प्रयोजनों की पूर्ति हेतु 'अनिवार्य सेवा' अधिरोपित कर सकता है।

अनुच्छेद 51(A)(e): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो। ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।

विवरण:

- यहाँ धर्म, भाषा, प्रदेश या वर्ग आधारित भेदभाव से परे होने का अर्थ इस विविधता को सीमित या समाप्त करना नहीं है, बल्कि इनमें निहित सामूहिक एवं समान तत्वों के आधार पर समरूपता की भावना का लोगों में निर्माण करना है।
- उपर्युक्त विभिन्न आधारों पर विविधता के बावजूद सभी भारतीय एक संविधान, एक ध्वज एवं एक नागरिकता के आधार पर आपस में जुड़े हुए हैं तथा यही हमारे भ्रातृत्व की भावना के निर्माण का प्रमुख आधार है।
- इस अनुच्छेद का दूसरा भाग, लैंगिक आधार पर भेदभाव एवं पूर्वाग्रह का निषेध करता है। इसमें महिलाओं की गरिमा के विरुद्ध व्यवहार में लाई जाने वाली किसी भी प्रकार की प्रथाओं का विरोध किया गया है।
- महिला की गरिमा एवं सम्मान को व्यवहारिक रूप देने के लिए निम्न प्रावधान किये गए हैं-
    - सरकार द्वारा पारित सती प्रथा (निवारण) अधिनियम, 1987 एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्ष 1997 में कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकने हेतु **'विशाखा दिशा-निर्देश'** इस दिशा में मील के पत्थर सिद्ध हुए हैं।

- अक्टूबर 2017 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि 18 वर्ष से कम आयु की स्त्री से शारीरिक संबंध बनाना (चाहे पति द्वारा ही क्यों न हो) दुष्कर्म की श्रेणी में शामिल है, चाहे वह स्त्री विवाहित हो या अविवाहित। यह स्त्री के सम्मान की रक्षा हेतु एक सराहनीय एवं प्रगतिशील कदम है।

अनुच्छेद 51 (A)(f) : भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह -
हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे।
विवरण:

- हमारी सामासिक संस्कृति एवं गौरवशाली परंपरा के अंतर्गत निम्नलिखित शामिल हैं:
  - पांच हजार वर्षों से भी अधिक पुरानी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति।
  - विश्व के समक्ष प्रस्तुत मूर्तिकला, वास्तुकला, गणित, विज्ञान, चिकित्सा, चित्रकला से संबंधित भारतीयों का महत्वपूर्ण योगदान।
  - धरोहर के रूप में प्राचीन स्मारक, किले, मंदिर, मस्जिद, चर्च जैसे ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक महत्त्व के स्थल।
  - विभिन्न धर्मों यथा हिंदू, बौद्ध, जैन, सिख आदि की जन्मस्थली होने का गौरव।
  - सत्य, अहिंसा एवं विश्व शांति एवं बंधुत्व के प्रति हमारी दृढ़ निष्ठा।
- अतः जो कुछ हमने अपने पूर्वजों से प्राप्त किया है, उसे अगली पीढ़ी तक अधिक सुरक्षित एवं समृद्ध रूप में पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य है।
- इसके लिए, नीति-निदेशक तत्त्वों के अनुच्छेद 49 के अंतर्गत राष्ट्रीय महत्त्व या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण करना राज्य की बाध्यता होगी।
- नागरिक का बौद्धिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक आदि सभी क्षेत्रों में विकास हमारी सामासिक संस्कृति का अभिन्न अंग है। अतः अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु प्रयास करना, प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।
- हमारी सामासिक संस्कृति सत्य, अहिंसा जैसे नैतिक मूल्यों पर विशेष बल देती है।
- इसी सामासिक संस्कृति को परिरक्षित करने हेतु भारत सरकार द्वारा **21 जून को 'अंतराष्ट्रीय योग दिवस'** मनाने का निर्णय लिया गया, विश्व विरासत स्थल के रूप में स्थलों को संरक्षण प्रदान किया गया तथा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से समर्थन प्रदान किया गया है ताकि नागरिक अपनी संस्कृति की पांच हजार वर्षों से भी अधिक पुरानी गौरवशाली परंपरा के महत्त्व को समझ सकें।

अनुच्छेद 51(A)(g): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-
प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव शामिल हैं, की रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे।
विवरण:

- विगत कुछ वर्षों से निरंतर बढ़ रहे पर्यावरण क्षरण, प्रदूषण, वनों की कटाई, वैश्विक तापन, जलवायु परिवर्तन और वन्य जीवों के अवैध व्यापार एवं तस्करी ने समस्त मानव प्रजाति के साथ-साथ अन्य प्राणियों के समक्ष अस्तित्व के समक्ष संकट उत्पन्न कर दिया है।
- अतः, यह प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह अपने स्तर पर वनों की सुरक्षा करते हुए वृक्षारोपण, नदियों की सफाई, जल संरक्षण, सार्वजनिक स्थलों को स्वच्छ रखकर इस दिशा में प्रयास करे।
- इसके अतिरिक्त, संविधान के नीति-निदेशक तत्त्वों के तहत **अनुच्छेद 48(A)** में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि, राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन का और वन एवं वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा। जिसको व्यवहारिक रूप प्रदान करने हेतु राज्य ने पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986; वन्य जीव अधिनियम, 1972 आदि पारित किए हैं।
- हाल ही में, उच्चतम न्यायालय ने दिल्ली में दीपावली के अवसर पर पटाखों की बिक्री पर प्रतिबंध लगाकर इस कर्त्तव्य की ओर पुनः ध्यान आकर्षित किया है।

अनुच्छेद 51(A)(h): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

विवरण:

- इसमें तेजी से बदलती वैश्विक परिस्थितियों में मानव जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि एवं संपूर्ण विकास हेतु प्रत्येक नागरिक से मानववाद की भावना से ओत-प्रोत वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की अपेक्षा की गई है।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ है- सभी प्रकार के अंधविश्वासों से दूर रहना तथा ज्ञान की खोज एवं तथ्यों के अनुसंधान के आधार पर व्यवस्थित ज्ञान एवं अनुभव का विकास करना।
- ज्ञानार्जन एवं सुधार की भावना, सभी प्रकार के विकास हेतु पूर्वशर्त हैं।

अनुच्छेद 51(A)(i) : भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

विवरण:

- विगत कुछ वर्षों में देखा गया है कि जब भी रैली, बंद, हड़ताल आदि होते हैं तो इस दौरान सार्वजनिक संपत्तियों यथा बस, ट्रेन, भवनों आदि की तोड़फोड़ एवं आगजनी जैसी घटनाएँ प्रारंभ हो जाती हैं जो कि इस मूल कर्त्तव्य का प्रत्यक्ष उल्लंघन है।
- इसे रोकने के लिए सर्वाधिक सशक्त उपाय यही है कि विद्यालय के प्रारंभिक वर्षों में ही बच्चों में इसके प्रति जागरूकता उत्पन्न की जाए ताकि आने वाले वर्षों में सार्वजनिक संपति की रक्षा करना एवं हिंसा से दूर रहना जैसे मनोभाव, उनके चरित्र का हिस्सा बन जाए।

अनुच्छेद 51(A)(J): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

विवरण:

- वर्तमान के अति प्रतिस्पर्धी दौर में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'उत्कृष्टता' ही सभी प्रकार की सफलता एवं विकास का मानदंड बन गई है, चाहे वह व्यक्तिगत स्तर पर हो या सामूहिक स्तर पर।
- **डॉ. दशरथी बनाम आंध्रप्रदेश वाद (1985)** में न्यायालय ने कहा कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि व्यक्तिगत तथा सामूहिक सभी स्तरों पर उत्कृष्टता को प्राप्त करने का प्रयास करे ताकि उपलब्धियों एवं प्रगति के नए मानदंडों को स्थापित किया जा सके।

अनुच्छेद 51(A)(k): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

जो माता-पिता या संरक्षक हो वह, 6 से 14 वर्ष के बीच की आयु के, यथास्थिति, अपने बच्चे अथवा प्रतिपाल्य को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करे।

विवरण:

- इस मूल कर्त्तव्य को 86वें संविधान संशोधन, 2002 द्वारा अनुच्छेद 51(A) में जोड़ा गया।
- इसमें माता-पिता या अभिभावक को अपने बच्चों को शिक्षित करने का कर्त्तव्य सौंपा गया ताकि बच्चे अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकें।
- इसी संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा के अधिकार को अनुच्छेद 21(a) में मूल अधिकार के रूप में तथा अनुच्छेद 45 में राज्य के दायित्व के रूप में सम्मिलित किया गया है।

मूल कर्त्तव्य, न केवल नागरिकों पर बल्कि राज्य पर भी लागू होते हैं।

1.3. मूल कर्त्तव्यों को सम्मिलित करने के उद्देश्य

42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में मूल कर्त्तव्यों को निम्नलिखित उद्देश्यों हेतु सम्मिलित किया गया:

- नागरिकों में देशभक्ति की भावना को बढ़ावा देने हेतु;
- राष्ट्र को मजबूत करने वाली आचरण संहिता का पालन करने हेतु नागरिकों की सहायता करने हेतु;
- देश की संप्रभुता और अखंडता की रक्षा करने हेतु;

- राज्य के विविध कर्त्तव्यों के निष्पादन में सहायता करने हेतु;
- सद्भावना के विचारों को बढ़ावा देने हेतु;
- राज्य के प्रति नागरिकों की प्रतिबद्धताओं को सुनिश्चित करने हेतु;
- साथ ही, व्याप्त अनुशासनहीनता को समाप्त करने हेतु।

1.4. मूल कर्त्तव्यों की विशेषताएँ

- ये नागरिकों के नैतिक दायित्व हैं;
- ये केवल नागरिकों के लिए है न कि विदेशियों के लिए;
- इनकी प्रकृति गैर-न्यायोचित होती है अर्थात् ये न्यायालय में वाद योग्य नहीं हैं।

1.5. मूल कर्त्तव्यों, नीति निदेशक तत्त्वों और मूल अधिकारों के मध्य सम्बन्ध

- मूल कर्त्तव्य, नागरिकों के उत्तरदायित्व हैं जबकि निदेशक तत्त्व, राज्य की नीतियों के प्रमुख आधार हैं। हालाँकि, दोनों के अनुपालन संबंधी कोई क़ानूनी बाध्यकारिता निर्धारित नहीं की गयी है।
- मूल अधिकारों का उपयोग करने वाले नागरिकों को संविधान के आदर्शों का सम्मान करना चाहिए तथा सद्भाव और भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना चाहिए।
- अधिकार एवं कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा कर्त्तव्यों के पक्ष में तर्क दिया गया था कि "मूल कर्त्तव्य, मूल अधिकारों को सीमित नहीं करेंगे बल्कि लोकतांत्रिक संतुलन स्थापित करेंगे"। उच्चतम न्यायालय द्वारा 1992 में व्यवस्था की गयी कि मूल कर्त्तव्यों को कार्यान्वित करने के लिए निर्मित की गयी किसी विधि को अनुच्छेद 14 एवं 19 के उल्लंघन के आधार पर अमान्य घोषित नहीं किया जायेगा।
- मूल कर्त्तव्य न्यायालय के माध्यम से प्रवर्तनीय नहीं हैं। इसका तात्पर्य है कि नागरिकों को इनका पालन करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। तथापि, उनमें से कुछ, प्रवर्तनीय कानून के भाग हैं। उदाहरणार्थ– राष्ट्र गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 (Prevention of Insults to National Honor Act, 1971) आदि।

1.6. विभिन्न समितियाँ और न्यायिक निर्वचन

- **एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ वाद (1991)** में उच्चतम न्यायालय ने मूल कर्त्तव्यों से संबंधित निम्न दिशानिर्देश दिए:
  - शैक्षणिक संस्थाओं में सप्ताह में कम-से-कम एक घंटे के लिए पर्यावरण एवं वन्यजीवों के संरक्षण संबंधी प्रावधानों की शिक्षा प्रदान करने हेतु केंद्र सरकार व्यवस्था करेगी।
  - इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु केंद्र सरकार, शैक्षणिक संस्थाओं में निःशुल्क पुस्तक वितरण करेगी।
  - इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु केंद्र सरकार, शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करेगी।
  - केंद्र, राज्य एवं संघ-शासित प्रदेशों की सरकारें 'स्वच्छता सप्ताह' का आयोजन करेंगी।
  - पर्यावरण की गुणवत्ता में आ रही गिरावट के प्रति लोगों को जागरूक करने हेतु 'जागरूकता अभियान' चलाया जाएगा।
- 1999 में **नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों के शिक्षण के विषय पर जस्टिस वर्मा समिति** का गठन किया गया था। इसने विद्यालयों के पाठ्यक्रम और शिक्षकों के शिक्षा कार्यक्रम तथा उच्चतर एवं व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में मूल कर्त्तव्यों को सम्मिलित करने की सिफारिश की थी।
- वर्ष 2003 में उच्चतम न्यायालय ने केंद्र को जस्टिस वर्मा समिति के सुझावों के अनुसार, नागरिकों द्वारा मूल कर्त्तव्यों के पालन हेतु कानून बनाने के लिए निर्देश दिया।
- **भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश, रंगनाथ मिश्रा** ने भारत के मुख्य न्यायाधीश को एक पत्र लिखकर उच्चतम न्यायालय से मूल कर्त्तव्यों के विषय में अपने नागरिकों को शिक्षित करने हेतु राज्य के लिए

आवश्यक निर्देश जारी करने का अनुरोध किया था ताकि अधिकारों और कर्त्तव्यों के मध्य उचित संतुलन स्थापित किया जा सके। इस पत्र को एक रिट याचिका के समान माना गया था।

- **2002 में संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के लिए राष्ट्रीय आयोग (National Commission to Review the Working of the Constitution: NCRWC)** की रिपोर्ट में जस्टिस वर्मा समिति की अनुसंशाओं के कार्यान्वयन की सिफारिश की गयी। इसमें अनुशंसा की गयी कि प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण कदम जिसे संघ और राज्य सरकारों द्वारा उठाए जाने की आवश्यकता है, वह है- लोगों को संवेदनशील बनाना और नागरिकों के मध्य मूल कर्त्तव्यों के प्रावधानों के अनुपालन हेतु जागरूकता उत्पन्न करना।

1.7. मूल कर्त्तव्य हेतु नवीन संदर्भ

- 1976 से अब तक मूल कर्त्तव्यों में शिक्षा प्रदान करने संबंधी माता-पिता (अभिभावकों) के दायित्वों को शामिल करने के अतिरिक्त कोई बड़ा बदलाव नहीं हो पाया है। हाल के कुछ वर्षों में यह विषय संविधानवेत्ताओं, प्रबुद्ध नागरिकों एवं समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य गंभीर चिंतन और चर्चा का विषय बना हुआ है।
- जबकि, इसी दौरान भारत की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ है। साथ ही, उदार न्यायिक व्याख्याओं के द्वारा मूल अधिकारों के दायरे का विस्तार हुआ है। इससे अधिकार एवं कर्त्तव्य के मध्य असंतुलन उत्पन्न हो गया है। अतः इस पर तत्काल पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।
- उच्चतम न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश कुरियन जोसेफ ने अपने विभिन्न वक्तव्यों एवं लेखों के द्वारा मूल कर्त्तव्यों में कुछ नये आयामों को जोड़ने पर बल दिया है जो निम्न हैं:
  (i) मतदान करने का कर्त्तव्य (Duty to vote)
  (ii) कर अदायगी का कर्त्तव्य (Duty to pay tax)
  (iii) दुर्घटना पीड़ित की मदद करने का कर्त्तव्य (Duty to help accident victim)
  (iv) आस-पड़ोस को स्वच्छ रखने का कर्त्तव्य (Duty to keep the premise clean)
  (v) अनुचित कार्यों से स्वयं को एवं दूसरों को दूर रखने का नागरिक कर्त्तव्य (Duty to prevent civil wrong)
  (vi) अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का कर्त्तव्य (Duty to raise voice against injustice)
  (vii) व्हिसल ब्लोअर की सुरक्षा का कर्त्तव्य (Duty to protect whistleblower)
  (viii) सद्भावी सिविल सोसाइटी आंदोलन को समर्थन देने का कर्त्तव्य (Duty to support bona fide civil society movements)

1.8. आलोचना

- संविधान में प्रतिष्ठापित कर्त्तव्य, किसी सुसंगत मूलभूत विषय-वस्तु को प्रदर्शित नहीं करते हैं। मूल कर्त्तव्यों की गैर-प्रवर्तनीय प्रकृति के कारण तथा इनके अनिश्चित, अस्पष्ट और अल्प व्यवहारिक मूल्यों वाले एक नैतिक विचार भर होने के कारण इनकी आलोचना की गई है। इनमें से अधिकांश कर्त्तव्यों का उल्लंघन पहले से ही विभिन्न कानूनों के तहत दंडनीय है। कुछ आलोचकों का मानना है कि मूल अधिकारों के साथ-साथ मूल कर्त्तव्यों को न्यायोचित दर्जा प्रदान करना अधिक उपयुक्त होता क्योंकि अधिकार एवं कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
- **भारत के पूर्व महान्यायवादी, सी. के. दफ्तरी** द्वारा मूल कर्त्तव्यों का विरोध किया गया। उन्होंने तर्क दिया कि अधिकांश नागरिक कानूनों का पालन करते है। अतः उन्हें उनके कर्त्तव्यों के बारे में बताने की आवश्यकता नहीं हैं। "जब तक लोग खुश एवं संतुष्ट होते हैं तब तक वे स्वयं अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहते हैं।"

1.9. प्रासंगिकता

- कर्त्तव्य, नागरिकों को अनुशासन एवं प्रतिबद्धता की समझ प्रदान करते हैं। अधिकारों का उपभोग करने के साथ-साथ नागरिकों के कुछ कर्त्तव्य भी होते हैं। मूल कर्त्तव्यों से न्यायालयों में कानूनों की संवैधानिक वैधता की जांच करने में सहायता प्राप्त हुई है। इस प्रकार, ये कर्त्तव्य होने से पूर्व एक महान शिक्षाप्रद मूल्य भी हैं। ये देश की एकता एवं अखंडता के साथ-साथ भूमण्डलीकृत एवं भौतिकवादी वैश्विक व्यवस्था में गौरवशाली भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, मानववाद जैसे मूल्यों को भी सुरक्षा प्रदान करते हैं। यह वर्तमान वैश्विक समस्याओं जैसे पर्यावरणीय क्षरण आदि के समाधान के लिए भी प्रासंगिक है।

1.10. मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी बनाने हेतु कुछ सुझाव

- मूल कर्त्तव्यों एवं संवैधानिक मूल्यों के प्रति आम जनता को जागरुक करने के लिए राष्ट्रव्यापी अभियान चलाये जाने चाहिए। मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी एवं लोगों को जागरुक बनाने हेतु **जस्टिस वर्मा समिति** ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं-
  - भारतीय संविधान की उद्देशिका सहित सभी मूल कर्त्तव्य को सरकारी प्रकाशनों, कैलेंडर एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों पर प्रदर्शित किया जाना चाहिए ताकि लोग जागरुक हो सकें।
  - 3 जनवरी को 'मूल कर्त्तव्य दिवस' मनाया जाना चाहिए।
  - मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी बनाने हेतु लोकपाल जैसी स्वायत्त संस्थाओं का गठन किया जाना चाहिए।
  - मीडिया, रेडियो, समाचार पत्रों आदि के माध्यम से लोगों को इन मूल कर्त्तव्यों के प्रति जागरुक बनाया जाना चाहिए।
  - इनको प्रभावी रूप प्रदान करने में गैर-सरकारी संगठनों (NGO) की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो सकती है।
  - इन्हें मूर्त रूप प्रदान करना तभी संभव होगा जब प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शैक्षणिक स्तर पर सामूहिक परिचर्चा, भाषण, वर्कशॉप, निबंध आदि के माध्यम से इन कर्त्तव्यों के प्रति विद्यार्थियों को जीवन के प्रारंभिक चरण में ही जागरुक किया जाए।

2. विगत वर्षों में Vision IAS GS मेंस टेस्ट सीरीज में पूछे गए प्रश्न (Previous Year Vision IAS GS Mains Test Series Questions)

1. **जबकि एक जीवंत लोकतंत्र के अस्तित्व के लिए मूल अधिकार महत्वपूर्ण हैं, वहीं मूल कर्त्तव्य भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। मूल कर्त्तव्यों की गणना करते हुए, इस कथन पर चर्चा कीजिए।**

दृष्टिकोण:

- मूल कर्त्तव्यों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
- संक्षेप में मूल अधिकार और मूल कर्त्तव्यों की तुलना कीजिए।
- एक जीवंत लोकतंत्र के लिए मूल कर्त्तव्यों के महत्व पर चर्चा कीजिए।

उत्तर:

स्वर्ण सिंह समिति के सुझावों के आधार पर 42वें संविधान संशोधन अधिनियम (1976) के द्वारा संविधान में दस मूल कर्त्तव्यों को शामिल किया गया।

अनुच्छेद "51(A)" के अनुसार, भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह:-
संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्र गान का सम्मान करे, स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में

संजोए रखे और उनका पालन करे, भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखें, देश की रक्षा करे और आह्वान करने पर राष्ट्र की सेवा करे, भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे, हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे, प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे और उसका संवर्धन करें तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे, सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्र में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, बच्चों के लिए शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराए।

नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य अन्योन्याश्रयी और अविभाज्य हैं। मूल अधिकार राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्श को बढ़ावा देने और तानाशाही तथा निरंकुश शासन पर नियंत्रण स्थापित करने के साधन हैं। यह राज्य के हस्तक्षेप के विरुद्ध स्वतंत्रता और स्वाधीनता की रक्षा करता है। पुनः यह राज्य की मनमानी शक्तियों पर अंकुश लगाता है और लोगों के विकास के लिए कुछ बुनियादी अविच्छेद्य अधिकारों को सुनिश्चित करता है। जबकि, मूल कर्त्तव्य नागरिकों को सचेत करते हैं कि अपने अधिकारों का लाभ उठाते हुए अपने देश, समाज और साथी नागरिकों के प्रति जो कर्त्तव्य हैं, उन्हें उनके प्रति भी जागरूक होना चाहिए। इस प्रकार ये कर्त्तव्य आधारित दृष्टिकोण प्रस्तुत कर लोकतांत्रिक मूल्यों की शिक्षा शिक्षा प्रदान करते हैं।

ये राष्ट्र विरोधी और असामाजिक गतिविधियों के विरुद्ध एक चेतावनी के रूप में तथा नागरिकों के लिए प्रेरणा स्रोत के रूप में कार्य करते हैं तथा उनके मध्य अनुशासन और प्रतिबद्धता की भावना को बढ़ावा देते हैं। पुनः ये नागरिकों में यह भावना उत्पन्न करते हैं कि वे केवल मूकदर्शक नहीं हैं अपितु राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में एक सक्रिय भागीदार भी हैं।

वर्ष 1992 में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि किसी कानून की संवैधानिकता की दृष्टि से व्याख्या में यदि न्यायालय को ज्ञात हो कि विचाराधीन क़ानून मूल कर्त्तव्य को प्रभावित करेगा तो अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 के संदर्भ में इसे तर्कसंगत माना जा सकता है और इस प्रकार ऐसी विधि को असंवैधानिक होने से संरक्षण प्रदान किया जा सकता है।

इस प्रकार, ये लोकतंत्र को बनाए रखने में मूल अधिकारों की तुलना में समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। मूल अधिकारों की प्रतिक्रियाशील प्रकृति के विपरीत ये अंतःकरण को उद्वेलित और क्रियाशील कर लोगों में एक सक्रिय मूल्य भावना का निर्माण करते हैं।

2. मूल कर्त्तव्य यद्यपि महत्वपूर्ण हैं, तथापि इनकी कुछ सीमाएं हैं। परीक्षण कीजिए।

दृष्टिकोण:

- उत्तर का पहला भाग मूल कर्त्तव्यों के परिचय के साथ उनके महत्त्व पर केंद्रित होना चाहिए।
- दूसरे भाग उन प्रमुख कमियों को प्रस्तुत किया जाना चाहिए जो इनकी सर्वसम्मत स्वीकार्यता में बाधक हैं।

उत्तर:

संविधान में मूल कर्त्तव्यों को 42वें संशोधन (1976) के द्वारा प्रतिष्ठापित किया गया था। इनका उद्देश्य, भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए कर्त्तव्यों का एक समुच्चय प्रस्तुत करना था।

दशकों से इनके निरंतर विद्यमानता से इनके महत्व और प्रासंगिकता का पता चलता है। यह नागरिकों इस संबंध में सचेत करते हैं कि उन्हें अपने अधिकारों का लाभ उठाते हुए अपने कर्त्तव्यों का भी पालन करना चाहिए।

मूल कर्त्तव्यों ने विभिन्न वैधानिक विकास को आधार प्रदान किया है।

कई बार न्यायपालिका ने भी निर्णय हेतु इन मूल कर्त्तव्यों की विषय वस्तु का सहारा लिया है। इसके अतिरिक्त, नागरिकों के मध्य इन्हें प्राकृतिक न्याय के मार्ग के रूप में भी स्थापित किया जाता है।

देश और समाज विरोधी गतिविधियों को मूल कर्त्तव्यों के आधार पर नियंत्रित किया जा सकता है।

परन्तु फिर भी, कुछ ऐसे अवरोध विद्यमान हैं जो इनकी सर्वसम्मत स्वीकार्यता समक्ष बाधक बने हुए हैं। वे इस प्रकार हैं:

- प्राथमिक रूप से ये न्यायिक कार्रवाई से परे हैं, मूल अधिकारों की भांति इनके उल्लंघन पर कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती।
- ऐसा प्रतीत होता है कि, मूल कर्त्तव्यों की यथार्थ प्रकृति उनकी अस्पष्ट व्याख्या से धूमिल हो गई है, इसलिए इनका प्रभाव अति न्यून है।
- इनके महत्त्व के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने हेतु कोई ठोस प्रयास नहीं किये गए हैं, इसलिए नागरिकों में इनके बारे में मूल अधिकारों के समान समझ नहीं है।
- संविधान के भाग IV के एक उपांग मात्र होने के कारण, मूल अधिकारों जैसा महत्त्व, मूल कर्त्तव्यों का नहीं रहा है।

मूल कर्त्तव्यों के वास्तविक महत्त्व को कम कर देने वाले इन अवरोधों के बावजूद भी, भारत जैसे विकासशील देश में नागरिकों के अधिकारों और कर्त्तव्यों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने हेतु संयुक्त प्रयास किए जाने की आवश्कता है।

3. विगत वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) द्वारा पूछे गए प्रश्न (Past Year UPSC Questions)

1. भारतीय नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. हमारे संविधान में सम्मिलित मूल कर्त्तव्यों की प्रकृति को बताएं।
3. मूल कर्त्तव्य और उनके निहितार्थ क्या हैं।
4. भारत के संविधान में उल्लिखित किन्हीं चार मूल कर्त्तव्यों को लिखिए।
5. प्रमुख मूल कर्त्तव्यों की पहचान कीजिए।
6. 42वें संशोधन के बाद संविधान में सम्मिलित मूल कर्त्तव्यों का वर्णनं कीजिए।